

अखण्ड सौभाग्य/1

नानेशवाणी क्रमांक-44

अखण्ड सौभाग्य

आचार्यश्री नानेश

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज.)

2 / नानेशवाणी-44

❖ नानेशवाणी- क्रमांक 44
अखण्ड सौभाग्य

❖ आचार्य श्री नानेश

❖ प्रथम संस्करण : अक्षय तृतीया, मई 2002, 1100 प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण : मई 2006, 1100 प्रतियाँ

❖ मूल्य : 30/-

❖ अर्थ सहयोगी :
श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा

❖ प्रकाशक :
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर
दूरभाष 0151-2544867, 3092177, 2203150 (Fax)

❖ आवरण सज्जा :
नटराज इन्फॉसिस
बीकानेर

❖ मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष 3090838, 9351202622

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों में है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चल कर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती है। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानों में वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका यह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व में समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप में उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सांसारिक प्राणियों के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तम्भ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियाँ युगों-युगों तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिये यह आवश्यक है कि न तो उन साहित्य रश्मियों को क्षीण होने दिया जाये जो न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनों हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जायें। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को 'नानेशवाणी' पुस्तक श्रृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सन्दर्भ में बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपानीने अर्थ सम्बन्धी व्यवस्था में जो सदप्रयत्न किया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व में 'अखण्ड सौभाग्य' नाम से प्रकाशित पुस्तक की नई आवृत्ति है। जिसका यह द्वितीय संस्करण है। इसमें कुछ संशोधन परिष्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने हेतु श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हूँ।

यद्यपि सम्पादन-प्रकाशन में पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि आगामी संस्करणों में भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

शान्तिलाल सांड

संयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ. भा. सा. जैन संघ, समता भवन, बीकानेर

अर्थ सहयोगी परिचय

नानेश वाणी भाग 44 का प्रकाशन श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा के अर्थ सौजन्य से हो रहा है, जो एक महत्वपूर्ण व स्तुत्य प्रयास है। 23 अक्टूबर 1994 को मद्रास निवासी सुश्राविका श्रीमती उमरावबाई मूथा की अध्यक्षता में गठित समिति धार्मिक, सामाजिक, जनकल्याणकारी आदि कार्यों में निरन्तर प्रवृत्त है और इसकी पृथक् पहचान है।

प्रारम्भ में महिला समिति स्वधर्मी भाई-बहिनों की आर्थिक सहायता तथा असमर्थ बच्चों की स्कूल फीस देकर सामाजिक क्षेत्र में कार्य किया था तथा 1996 में बाढ़ पीड़ितों के लिए खाना व कपड़े उपलब्ध करवाये थे। समय-समय पर आर्थिक स्थिति से कमजोर मरीजों के लिए दवाईयों की व्यवस्था भी समिति द्वारा की जाती है।

नवम्बर 1998 से श्रीमती भंवरी देवी दुगड़ एवं पुष्पा देवी कांकरिया के योगदान से नागौर के 'वेलफेयर अनाथाश्रम' में बच्चों के लिए प्रातः नाश्ते की व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी, जो अधावधि चल रही है। इसमें स्वधर्मी भाई-बहिनों का सहयोग भी प्राप्त हो रहा है तदर्थ समिति आभारी है। इसी क्रम में उल्लेखनीय है सन् 2002 से रामेश सिलाई केन्द्र, नोखा का संचालन भी महिला समिति, नोखा कर रही है। अकाल विभीसिका को देखते हुए भी गौरक्षा हेतु 15 हजार रु. वार्षिक खर्च में आजीवन एक गाय गोद ली गई है इसी सन्दर्भ में 51 हजार रु. गंगा गौशाला नोखा व 10 हजार रु. अशोक गौशाला रामसर को चारे हेतु नकद सहायतार्थ प्रदान की गई। कि गुजरात भूकम्प-पीड़ितों की सहायतार्थ महिला समिति ने भगवान महावीर विकलांग समिति, बीकानेर तथा महावीर इन्टरनेशनल अहमदाबाद केन्द्र के माध्यम से 21000 रुपये की राशि भूकम्प प्रभावित इलाकों में भेजी।

शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त बहनों ने तप, संयम, स्वाध्याय, धर्माराधना में भी पूर्ण जागृति दिखाते हुए हैं। महिला समिति नोखा द्वारा स्वाध्याय हेतु "सिद्धिभगंग" नामक पुस्तक एवं ज्ञानवर्धक बोल संग्रह थोकड़े की केशर गुलदस्ता" नामक पुस्तक का प्रकाशन किया गया पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य 1997 में नोखा में तेले का जो क्रम प्रारम्भ हुआ उसे महाश्रमणी रत्ना श्री केशवकंवरजी म. सा. आदि ठाणा की प्रेरणा तथा महिला समिति के प्रयासों ने दो वर्ष तक निरन्तर प्रगतिशील रखा। प्रथम वर्ष तो प्रतिदिन तेले का पच्चक्खाण हुआ एवं द्वितीय वर्ष तेले उपरान्त तेले का पच्चक्खाण हुआ।

सम्प्रति महिला समिति की अध्यक्ष-श्रीमती अमरा देवी चोरड़िया एवं मंत्री श्रीमती सुनीता देवी पारख हैं। पदाधिकारियों एवं सदस्याओं की सक्रियता से महिला समिति विकास पथ पर अग्रसर है।

नानेश वाणी क्रमांक 44 के प्रकाशनार्थ प्रदत्त अर्थ सहयोग हेतु संघ श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा के प्रति आभार ज्ञापित करता है।

1

ऐतिहासिक चम्पा नगरी के राज्य वैभव का वर्णन इतिहास के पृष्ठों में अंकित है। महाराजा दधिवाहन इसी नगरी में हुए तो इसी नगरी में सती चन्दनबाला का जन्म भी हुआ। कई प्रकार के स्वभाव वाले राजा होते हैं, किन्तु चम्पा नगरी के राजा अधिकांशतः समता भाव वाले हुए तथा वे राज्य लिप्सा से दूर जनहित के प्रति निष्ठावान रहे। राजा दधिवाहन का स्वभाव भी समता से ओतप्रोत था। जब उनका शत्रु आक्रान्ता बन कर उनके राज्य पर चढ़ आया, उस समय उन्होंने ऐसा आदर्श प्रसंग उपस्थित किया कि सब कुछ सुखद बन गया।

इसी परम्परा में सम्राट् चन्द्रसेन हुए। वे राजनीति में निपुण थे किन्तु धर्मनीति में वांछित रूप से निपुण नहीं थे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य अपने मन में कई प्रकार की कामनाएँ करता है और उनकी पूर्ति की चिन्ता में लगा रहता है। चन्द्रसेन भी ऐसी ही एक कामना से ग्रसित थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी—इस कारण वे सोचते रहते थे कि जिस प्रकार मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंपा, उसी प्रकार मैं भी अपने पुत्र को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाऊँ, अतः सन्तान की नितान्त आवश्यकता है। यह चिन्ता चन्द्रसेन के मन में निरंतर लगी रहती थी, किन्तु चाह से ही सन्तान हो जाय—ऐसा नहीं है। जब विवाह किये काफी समय गुजर गया और संतान की प्राप्ति नहीं हुई तक चन्द्रसेन का मन अधिकतर खिन्न रहने लगा।

चन्द्रसेन तब यह सोचने लगे कि संतान प्राप्ति के लिए क्या किया जाय ? जिस व्यक्ति को जितना ज्ञान होता है, उसी के अनुरूप वह चिन्तन करता है। उनके मन में विचार उठा कि शायद मेरे ऊपर देवी—देवताओं का प्रकोप है जिसके कारण ही संतान लाभ नहीं हो रहा है। यह सोचकर वे देवी—देवताओं की मनौतियां मानने लगे।

यह सोचने की बात है कि क्या देवी-देवता किसी को कुछ दे सकते हैं ? यदि ऐसा हो सकता हो तो कर्म सिद्धान्त ही विफल हो जाय। व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है। ऐसा नहीं होता कि कर्म करे और कोई और फल भोगे कोई। अच्छे और बुरे कर्म करने वाले को ही उनका अच्छा या बुरा फल भोगना पड़ता है। तब तक चन्द्रसेन सन्तों की संगत में नहीं गये थे और न ही वीतराग वाणी सुनने का प्रसंग आया था, अतः वे इधर-उधर मिन्नतें करते हुए भटकने लगे।

कई बार बहिनों में पुरुषों की अपेक्षा भी अधिक जागृति होती है। महाराजा चन्द्रसेन की महारानी भी उनसे अधिक ज्ञानवती एवं समतावती थी। वह नियमित रूप से सत्संग में पहुँचा करती थी, सामायिक का विधि-विधान जानती थी एवं कर्म बंधन की प्रक्रिया में भी विश्वास रखती थी कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है।

इस रूप में महारानी का व्यवहार चन्द्रसेन के लिए हितकर था किन्तु चन्द्रसेन को धर्मनीति तथा सत्संग के विषय में समुचित ज्ञान नहीं था। इस कारण महारानी के सद्व्यवहार के बावजूद भी वे महारानी की भर्त्सना करते रहते कि तुम कैसी आई हो कि मेरे आंगन में संतान तक नहीं आ सकी। मेरे उत्तराधिकारी नहीं होगा तो मेरे राज्य का क्या होगा ? महारानी तो समता भाव लेकर चलती थी अतः वह उत्तर देती कि आप संतान न होने का जो दोषारोपण मुझ पर करते हैं, वह योग्य नहीं है। आप संतान की प्राप्ति के लिए देवी-देवताओं की मनौतियाँ करते हैं—वह रास्ता भी गलत है। इस तरह आप अपनी आत्मा को विषम बना रहे हैं। देवी-देवताओं की मनौतियों से संतान नहीं होगी।

ऐसी बात सुनकर चन्द्रसेन रुष्ट हो जाते और क्रोध पूर्वक पूछते कि तब संतान कैसे होगी ? महारानी फिर समझाती कि जैसे कर्म होते हैं, वैसा फल मिलता है। अतः समभाव में रहिये और वीतराग वाणी का श्रवण कीजिये। लेकिन महाराजा को महारानी के ऐसे उत्तर से संतोष नहीं होता। उस दशा में वे भाग्य को कोसने लगते।

अधिकांश मानव भाग्य को लेकर विक्षुब्ध होते हैं लेकिन वे नहीं जानते कि भाग्य आखिर होता क्या है ? भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले लोगों को पुरुषार्थी नहीं माना जाता है और हकीकत में भाग्य अपने ही

द्वारा पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के अलावा और कुछ नहीं होता जिनका फल इस जन्म में प्रकट होता है। इसी प्रकार इस जन्म में जैसे कर्म किये जाते हैं, वे ही फल की दृष्टि से अगले जन्म का भाग्य बन जाते हैं। संतान नहीं होती है तो इसे कर्म का फल मानिये अथवा यह भी हो सकता है कि पुरुष या स्त्री में किसी तरह की शारीरिक कमी हो। किन्तु इस प्रकार के विचारवान महाराजा चन्द्रसेन नहीं थे। वे अक्सर महारानी पर उत्तेजित हो जाया करते थे और जब महारानी धर्माचरण की बात कहती तो वे झिड़क देते कि मुझे धर्म नहीं, संतान चाहिए।

महाराजा के अधिक उत्तेजित हो जाने पर एक दिन महारानी ने कह दिया कि संतान प्राप्ति के सम्बन्ध में यदि उन्हें मुझ से संतोष नहीं है तो वे दूसरा विवाह कर सकते हैं, उसे कोई आपत्ति नहीं होगी। महारानी जैसी समभाव में रहने वाली महिला ही ऐसी अनुमति दे सकती थी और महाराजा को ज्योंही ऐसी अनुमति मिली तो उन्होंने दूसरा विवाह करने का निश्चय कर लिया।

संयोग की बात है कि महाराजा का दूसरा विवाह भी जल्दी ही हो गया, किन्तु दूसरे विवाह से भी उन्हें संतान की प्राप्ति नहीं हुई। महाराजा को तब तो यह स्थिति शूल की तरह चुभने लगी और वे नई महारानी को भी उलूल-जलूल बातें कहने लगे। आखिर नई महारानी भी क्या करती? वह रोज उदास रहने लगी। उस समय में बड़ी महारानी ने उसे स्नेह पूर्वक सांत्वना दी कि चूँकि महाराज को सत्य सिद्धांतों को ज्ञान नहीं है अतः ऐसी बातें करते हैं किन्तु तुम घबराओ मत और समभाव के साथ रहने की कला सीखों। जैसे मैंने महाराजा को दूसरा विवाह करने की अनुमति दे दी थी, वैसे ही तुम भी उन्हें तीसरा विवाह करने की अनुमति दे दो। फिर जिस समभाव से मैं आनन्दमय जीवन बिता रही हूँ, उसी तरह तुम भी आनन्दमय जीवन बिताओ। पहले तो भीतरी कमजोरी के कारण नई महारानी कुछ ऊँची-नीची हुई लेकिन गहराई से समझ पकड़ने के बाद उसे बड़ी महारानी की राय पसन्द आ गई।

जब चन्द्रसेन संतान न होने के कारण नई महारानी की भी उत्तेजनापूर्ण भर्त्सना करने लगे तो एक दिन उसने उन्हें तीसरा विवाह करने की अनुमति दे दी। महाराजा भी संतान के लिये पागल से हो रहे

थे, उन्होंने तब तीसरा विवाह भी कर लिया किन्तु दुर्योग की बात कि फिर भी उनके संतान नहीं हुई। इस प्रकार महाराजा चन्द्रसेन ने लगातार बारह विवाह किये, फिर भी उन्हें सन्तान प्राप्त नहीं हुई।

किन्तु बड़ी महारानी के समतामय जीवन एवं व्यवहार का ऐसा सुप्रभाव पड़ा कि आपस में सौतेले होते हुए भी बारहों महारानियाँ परस्पर पूर्ण प्रेमभाव से रहने लगीं। उनके आपस में कभी भी कोई क्लेशपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न नहीं होती थी।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि हमारे जो सन्तान होगी, उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे, किन्तु यह कल्पना मिथ्या है। राजा का बेटा ही राजा बने—यह कोई आवश्यक नहीं है। योग्य व्यक्ति जनता में से भी आकर उत्तराधिकारी बन सकता है। ऐसी कई ऐतिहासिक घटनाएँ भी हैं। किन्तु यह सिद्धान्त महाराजा चन्द्रसेन की समझ में नहीं आ रहा था। सांसारिक कामनाओं के माध्यम से विषमता में पड़ जाना तो आसान होता है लेकिन समभाव की साधना करके उस विषमता से निकल जाना आसान नहीं होता है। चन्द्रसेन की बड़ी महारानी समभाव साधना की विधि जानती थी। वह अपने जीवन को शल्य रहित बनाकर चल रही थी। उसकी ही समभाव साधना का असर था कि ग्यारहों छोटी महारानियाँ भी समभाव की साधना के कारण सुखमय जीवन व्यतीत कर रही थी।

जब अपने रनिवास की ऐसी सुखद स्थिति और ऐसा आनन्दमय वातावरण महाराजा चन्द्रसेन के ध्यान में आया तो वे विचार में पड़ गये। वे आश्चर्य करने लगे कि मैं एक राज्य का राजा कहलाकर और सिंहासन पर बैठ कर दंडादेश देते हुए भी जब राज्य की व्यवस्था करता हूँ तब भी कई प्रकार की अव्यवस्थाएँ तथा विषमताएँ पैदा हो जाती हैं परन्तु सौतेले कहलाकर भी बारहों महारानियाँ जिस सुख और आनन्द के साथ जीवन बिता रही हैं, उसके पीछे कौनसी शक्ति काम कर रही है ? राजा के पास तो सेना होती है, शस्त्र होते हैं और दंडशक्ति होती है फिर भी अशान्ति पैदा होती रहती है। इसी अपेक्षा भी बारह पत्नियों के परिवार को संभालना ज्यादा कठिन रहता है। किन्तु चन्द्रसेन के विस्मय का पार नहीं था कि उसके बिना सम्भाले ही उसका परिवार एकता और शान्ति के साथ कैसे चल रहा है ? तब उन्होंने इसकी बारीक छानबीन करनी शुरू की।

यह बड़ी महारानी के समभाव का जादू था कि उस राज-परिवार की महारानियाँ तो ठीक लेकिन नौकर चाकर भी सद्भाव के साथ चल रहे थे। सद्भाव से सद्भाव उत्पन्न होता है—यह बड़ी महारानी अपनी साधना के बल पर भलीभाँति जानती थी। वह नौकरों को भी तुच्छ भाषा से नहीं, बल्कि भाई कहकर पुकारती थी नौकरानियों को बहिन का सम्बोधन देती थी। सोचिये कि एक महारानी नौकर-नौकरानियों को भाई और बहिन कहकर पुकारे तो उनका सद्भाव क्यों नहीं उभर कर ऊपर आ जाए ? वे दौड़कर सेवा में निरत रहते थे और अपने सद्भाव का सद्भाव पूर्ण प्रतिफल पाते थे। इस प्रकार उस राज परिवार में बड़ी महारानी की प्रेरणा से स्वर्ग जैसा सुखद दृश्य बना हुआ था। वह महारानी चतुर थी। वह सोचती थी कि समभाव की सामायिक को छोटे घरे में बन्द नहीं रखना चाहिये, बल्कि उसे दूर-दूर तक बांटते रहना चाहिये। अतः वह परिवार के अलावा अन्य स्त्रियों को भी एकत्रित करती और समतामय जीवन की शिक्षा देती। वह उन्हें समझाती कि यह जीवन पत्ते पर पड़ी हुई ओस की बूँद के समान है जो तब तक ही चमकती है जब तक कि हवा का झोंका उसे नीचे नहीं गिरा देता है। इस कारण इस जीवन की चमक को नष्ट होने से पहले ही अधिक प्रकाशमान बना लेना चाहिये। इस प्रकार बड़ी महारानी अपनी समता का अधिकाधिक विस्तार कर रही थी और अधिकाधिक जीवनो में शान्ति तथा आनन्द का संचार कर रही थी।

महाराजा चन्द्रसेन ने इस सारी परिस्थिति की जानकारी ली तो वे भी इस सौम्य वातावरण से एवं बड़ी महारानी की समभाव साधना से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उनकी तब तुरन्त ही बड़ी महारानी का सत्संग करने की इच्छा हुई। वे वहाँ पहुँचे और पूछने लगे कि राज परिवार की ऐसी सुखद व्यवस्था का क्या रहस्य है ? तब बड़ी महारानी ने गीत-संगीत के माध्यम से राजा की जिज्ञासा का उत्तर दिया।

बड़ी महारानी ने महाराजा चन्द्रसेन को सामायिक के सही विधि विधान की जानकारी दी और बताया कि विधिपूर्वक की जाने वाली सामायिक से जीवन में समता रस उतर आता है और जिसका जीवन समता रस से ओत-प्रोत बन जाता है, वह जन-मन का प्रिय तथा मंगलकारी हो जाता है। सन्त व सतियों के दर्शन को प्रियकारी तथा मंगलकारी क्यों समझा जाता है ? इसीलिये कि सन्तजन मोह, माया एवं

तृष्णा का परित्याग करके समभाव की साधना में चल पड़ते हैं। इसीलिये भगवान् ने चार शरण बताये हैं—अरिहन्तों का शरण, सिद्धों का शरण, साधु का शरण एवं दयामय धर्म का शरण, जिनकी शरण में पहुँचने से जीवन के सद्गुणों का संरक्षण होता है।

महाराजा चन्द्रसेन की पटरानी भी ऐसा ही सद्गुणमय जीवन लेकर चल रही थी जिसने अपने दीपक की लौ से सारे राज-परिवार रूपी दीपकों को प्रज्वलित कर दिया था। बचा था तो एक दीपक—महाराजा स्वयं जो प्रज्वलित नहीं हुआ था लेकिन तब वे प्रज्वलित होने की दिशा में अवश्य अग्रसर होने लगे थे। वे अपनी ही पटरानी की साधना को समझने की चेष्टा कर रहे थे।

समता की साधना करने वाला व्यक्ति दुनिया को भी समता और साधना ही सिखाता है। जो व्यक्ति विषमता के दल-दल में फंसा हुआ होता है, वह दूसरों को भी ममत्व भाव की ओर ही मोड़ता है। पटरानी होते हुए भी वह धर्ममय महिला पूरी सादगी से रहती थी, स्नेह व आदर से बोलती थी और प्रत्येक को अपने मिष्ट व्यवहार से प्रसन्न कर देती थी। वह अपने जीवन में राजसी पद अथवा वैभव को कोई महत्त्व नहीं देती थी। वह स्वयं समता रस का पान करती थी और अपने सान्निध्य में आने वाले सभी को समता रस का पान कराती भी थी।

चारों ओर समतामय जीवन के विस्तार को देखकर ही महाराजा अपनी पटरानी के प्रति पुनः प्रभावित होने लगे थे। वे पटरानी से पूछना चाहते थे कि राज परिवार की व्यवस्था में इतनी सुखद निपुणता कैसे समा गई है ? वे पटरानी से इसका रहस्य समझ कर सत्संग में जाने का भी विचार करने लगे।

इसकी शिक्षा जनहितकारी, लेनी है हर बार।

कैसे आई इतनी निपुणता, पूछ रहे नर नार।।

जनमन प्यारी, मंगलकारी

समता जग में है सुखकार।

महाराजा सोचने लगे कि मैं किसी का स्वामी हूँ—यह अभिमान व्यर्थ है। मैं अपनी महारानियों का तो अपने आपको स्वामी मानता ही हूँ लेकिन क्या यह भी सच है ? असली स्वामिनी तो बड़ी महारानी है जिसने अपने

आदर्श जीवन से सबका आध्यात्मिक एवं मानसिक रूपान्तरण कर दिया है—ऐसा रूपान्तरण जो बड़ा कठिन होता है। स्त्रियां स्वभाव से ही राग—रंग की प्रेमी होती हैं तथा सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग को चाहती हैं किन्तु बड़ी महारानी ही पूरी सादगी से नहीं रहती, बल्कि उसने सभी पर सादगी का पवित्र रंग चढ़ा दिया है। वे गहरे विचार में डूब गये कि जब राज—परिवार में सभी बड़ी महारानी का अनुसरण कर रहे हैं तो भला मैं ही उससे वंचित क्यों रहूँ ? पहले मैं उससे यह तो पूछूँ कि सबके जीवन में यह मोड़ कैसे आया ?

एक दिन पुनः महाराजा अपनी बड़ी महारानी के कक्ष में पहुँचें। महारानी ने उनका यथोचित स्वागत किया तथा उन्हें एक आसन पर बिठा कर वह कुछ दूर बैठ गई। महाराजा आश्चर्य करने लगे कि वह उनसे दूर क्यों बैठी है ? कारण महारानी की नैतिकता से सम्बन्धित था। एक बार जब नाशवान पदार्थों का ममत्व छूट जाता है और ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया जाता है, तब संसर्गगत नियमों की अनुपालना भी अनिवार्य हो जाती है। महारानी भी उसी नैतिकता के पथ पर आगे बढ़ रही थी। महाराजा इस कारण को नहीं समझ पाये और विचार करने लगे कि जब वे महारानी को विवाह कर लाये थे तब उसकी मेरे प्रति दृष्टि और ही थी और आज वह दृष्टि और ही दिखाई दे रही है—ऐसा क्यों है ? इस महिला में इतना ज्ञान, इतनी चतुराई और इतनी आत्मशक्ति कहाँ से आ गई है ?

महाराजा ने विस्मय के साथ प्रश्न किया—“महारानी जी, मैं क्या कहूँ ? महारानी जी शब्द भी कहना मुझे अच्छा नहीं लगता है क्योंकि आज मुझे समझ में आया है कि आप मेरे साथ उस रूप में सम्बन्धित नहीं रही हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि नारी जाति की सदस्या होते हुए भी आपने अपने आपको विषय—विकारों से दूर करके समता रस में कैसे रंग लिया है ? क्या आप मुझे इसका रहस्य समझावेंगी ? मैं अब भी विषमता में झूल रहा हूँ और सन्तान प्राप्ति की लालसा में दुःखी हो रहा हूँ, लेकिन चाहता हूँ कि मैं भी समता की दिशा में आगे बढ़ूँ। आप सबको समता का उपदेश दे रही हैं तो क्या मुझे भी ऐसा उपदेश देकर कृतार्थ नहीं करोगी ?”

महारानी महाराजा का ऐसा कथन सुनकर मन ही मन गद्गद् हो

उठी और हर्षातिरेक में बोलने लगी—“स्वामी, आप यह क्या बोल रहे हैं ? मैं तो साधारण नारी हूँ। यह तो आपका बड़प्पन है जो आप आज मुझे इतना अधिक महत्त्व प्रदान कर रहे हैं। मैं सोचती हूँ कि इस मनुष्य तन में रहते हुए मुझे नाशवान पदार्थों के पीछे अभिमान करने की आवश्यकता नहीं है। आप मुझ से प्रश्न क्यों पूछते हैं ? आप तो राजाओं के भी स्वामी हैं और मैं आपको बताऊँ भी क्या ? आप तो राजाओं के भी स्वामी हैं और मैं आपको बताऊँ भी क्या ? यह समता मेरी देन नहीं, महात्माओं की देन है। इसलिये मैं आपसे नम्र अनुरोध करना चाहूँगी कि आप सन्तों का सत्संग करें तथा समता के रहस्यों का ज्ञान लें। मैं सन्तों के पास जाती रहती हूँ और वीतराग वाणी का श्रवण करती रहती हूँ और वीतराग देवों के उपदेशों पर आचरण करके ही मनुष्य तन में रहते हुए प्राणी सदा के लिये शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।”

महाराजा ने संकल्प प्रकट किया कि अब वे सन्तों के सत्संग में अवश्य पहुँचेंगे किन्तु उस समय उन्होंने महारानी से ही जीवन विकास के उपायों पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया।

महारानी ने नम्रता से उत्तर दिया—“राजन्, इस साधना का प्रारम्भिक उपाय है विधिवत सामायिक करना। मैं प्रतिदिन विधिवत सामायिक करती हूँ और आनन्द विभोर हो जाती हूँ। उसके बाद मेरा मन अपार शान्ति से भर उठता है, तब मैं उस शान्ति को दूसरों में भी बांटने का पावन कार्य आरम्भ कर देती हूँ।”

परम स्फूर्तिदायक उत्साह से परिपूरित होकर महारानी अपनी समभाव साधना का विस्तार से विश्लेषण करने लगी—“जब आन्तरिक शान्ति के प्रभाव से मस्तिष्क शान्त होता है, तभी मनुष्य प्रियकारी, मंगलकारी तथा लोक हितकारी बातें सोचता है और उन पर दृढ़तापूर्वक आचरण करने के लिये कटिबद्ध हो जाता है। उस समय उसका मस्तिष्क कषाय तथा विषय-विकार की ओछी एवं स्वार्थी बातों से ग्रस्त भी नहीं होता है। किन्तु जब भीतर में शान्ति नहीं होती तो बाहर भी शान्ति नहीं रहती है और अशान्त मस्तिष्क जल्दी ही कषाय तथा विषय-विकार के लपेटे में आ जाता है। रावण सरीखे तीन खण्ड के अधिपति का भी जब मस्तिष्क विकृत हो गया तो वह सीता जैसी पवित्र नारी को हर कर ले गया। अतः राजन्, भीतर में शान्ति की मौजूदगी बहुत जरूरी है और वह

सामायिक की साधना से ही प्राप्त हो सकती है। यही नहीं, मनुष्य के प्रत्येक कार्य तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में शान्ति की परम आवश्यकता होती है। आप सम्राट हैं और यदि आप अशान्त रहते हैं तो क्या राज्य व्यवस्था सुचारु रूप से संचालित की जा सकती है ? इसलिये आप प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर सामायिक की साधना आरम्भ कर दीजिये और सन्तों का सत्संग भी कीजिये, फिर देखिये कि आपके जीवन में कितनी परम शान्ति और कितना दिव्य आनन्द पैदा हो जाता है।”

महाराजा ने महारानी का उपदेश बहुत ही ध्यान से सुना और वे मन ही मन संकल्प लेने लगे कि वे अब सामायिक की साधना के लिये अवश्य समय निकालेंगे, सन्तों की संगत भी करेंगे तथा अपने जीवन का भी श्रेष्ठ रूपान्तरण होने देंगे। नये संकल्प के साथ गंभीर बनते हुए महाराजा ने महारानी से कहा कि ऐसा उपदेश पहले क्यों नहीं सुनाया ताकि वे अपने जीवन में पहले ही परिवर्तन ले आते। महारानी ने कहा कि अवसर आने पर ही कोई भी कार्य सम्पन्न होता है।

महाराजा के विचार बदले तो उनके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया। पहले वे सन्तान के अभाव में भाग्य को दोष देते अथवा देवी-देवताओं की मनौतियाँ मनाते या महारानियों पर अपनी उत्तेजना बरसाते। परन्तु अब वे सोचने लगे कि भाग्य तो मेरे अपने ही हाथ का खिलौना है—मैं अपने भाग्य को जैसा बनाऊंगा वैसा ही वह बनेगा। वास्तव में जब दृष्टि बदल जाती है तो उसके लिये सारी सृष्टि भी बदल जाती है। संसार में कोई भी व्यक्ति सभी को संतुष्ट नहीं कर सकता, किन्तु दृष्टि बदल कर अपने मन को तो शान्ति से ओतप्रोत बना ही सकता है। अशान्ति सर्वत्र दुःख पैदा करती है तो शान्ति सुख ही सुख।

महाराजा चन्द्रसेन ने तब निश्चय किया कि अब वे महारानी के उपदेश के अनुसार ही चलेंगे तथा उसके सम्बन्ध में कोई कुछ भी कहे तब भी उस पर वे कोई ध्यान नहीं देंगे। वे बार-बार चिंतन करने लगे—“मैं अजर अमर चैतन्य देव का ध्यान करूंगा। मैं अपने भाग्य का स्वयं निर्माता बनूंगा। अब मेरी दृष्टि बदल गई है तो अपनी सारी सृष्टि को भी समता रस का पान कराऊंगा। सत्संग करके अपने जीवन में श्रेष्ठ परिवर्तन लाऊंगा। ऐसा करके मैं अपनी प्रजा के समीप जाने का प्रयास करूंगा और उसके दुःख हरूंगा ताकि प्रजा का प्यार मुझे मिले। अपने आत्मीय भावों से समग्र जनता की सेवा करूंगा। अपने सम्पूर्ण राजसी अभिमान को त्याग

कर छोटे से छोटे प्रजाजन के साथ भी मैं एकमेक हो जाऊंगा। अपने जीवन को समर्पित कर दूँगा ..”

इस चिन्तन के साथ ही एक नया परिवर्तन महाराजा के अन्तर्मन में जाग उठा।

आज के युग में भी क्या राज चलाने वालों का मन कभी जागता है ? पुराने जमाने में जब राजा लोग थे तब तो यह कहा जाता था कि राजा लोग प्रजा के साथ अन्याय व अत्याचार कर रहे हैं, लेकिन आज क्या वस्तुस्थिति चल रही है ? इसके बारे में मैं क्या कहूँ ? क्या आज के शासक सम्राट् चन्द्रसेन की तरह परिवर्तित हो सकते हैं अथवा वे राजमद में चूर रह कर ही चल सकते हैं ? जनता जैसी है, वैसी ही रहे लेकिन हमारा सिंहासन सुरक्षित रहना चाहिये—क्या ऐसी भावना नेताओं की नहीं है ? क्या ये नेता दिखाने के लिए ही जनता के सुख—दुःख की बातें नहीं करते हैं अथवा क्या उनके दिल में सच्ची भावना भी रहती है ? किन्तु चन्द्रसेन महाराजा अब अपना सब सुख—दुःख भुलाकर जनता के सुख—दुःख का ही पूरा ध्यान रखने लगे।

महाराजा के इस जीवन—परिवर्तन से उनके राज्य की समग्र जनता भी प्रभावित होने लगी। जनता का विचार और जनता का चाल—चलन उसके साथ ही बदलने लगा लोग सोचने लगे कि महाराजा पहले कैसे थे और अब ऐसा शुभ परिवर्तन कैसे आ गया है ? जनता की रुचि भी जागने लगी कि राजा की तरह ही वे भी अपने—अपने जीवन में ऐसा सुखकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करें।

दृष्टि परिवर्तन के लिये आदर्श भी प्रकाश स्तंभ का कार्य करता है किन्तु उसके साथ—साथ तत्त्वों तथा सिद्धान्तों का ज्ञान भी आवश्यक हो जाता है जिनको आधार बना कर लाये गये परिवर्तन को स्थायित्व दिया जा सकता है। सोचिये कि मानव तन में रहते हुए आपकी दृष्टि कैसी बने ? यदि आपको दृष्टि शाश्वत तत्त्व की तरफ मुड़ जाती है तो वह नाशवान तत्त्वों की तरफ नहीं जाएगी। कारण तब सुख की अनुभूति की दिशा ही बदल जाती है। बड़ी महारानी ने अपनी दृष्टि बदली तो राज परिवार की दृष्टि बदली और उसने जब स्वयं महाराजा की दृष्टि बदली तो समग्र जनता की दृष्टि बदलने लगी।



2

दृष्टि बदलती है तो सृष्टि बदल जाती है और विचार बदलते हैं तो आचार भी बदलता है।

महाराजा चन्द्रसेन विषमता का रूप लेकर चल रहे थे। वे सोचते थे—यह राज्य मेरा है, इसका वैभव मेरा है तथा इसका अधिकार मेरा है। ममत्व भाव उन के माथे पर छाया हुआ था। इस तथ्य का भी उनके मन में बड़ा मोह था कि जैसे मैं सम्राट हूँ, वैसे ही मेरा पुत्र भी सम्राट बने और इसी कारण वे सन्तान की कामना से चिन्तित रहा करते थे। ये विचार उनके मन में उस समय नहीं उठा करते थे कि न यह राज्य मेरा है और न यह सत्ता और सम्पत्ति मेरी है। वे यह भी नहीं सोचते थे कि यदि मेरे सन्तान नहीं है तो न सही—जनता में से ही किसी योग्य व्यक्ति का चयन करके अपने राज्य की सत्ता उसी को सौंप दूंगा। उस समय तो उनकी अपने राज्य एवं अपने अधिकार के प्रति गहरी आसक्ति थी।

किन्तु पटरानी ने जब से उनका मानस बदल डाला है—वे और के और हो गये हैं। महाराजा ने सन्तों की समीपता भी प्राप्त की तथा सामायिक के स्वरूप को आन्तरिकता के साथ समझा। आज की मानसिकता में वे सोचते थे कि यदि ऐसा परिवर्तन पहले आ गया होता तो वे राज्य और सन्तान की आसक्ति में इतने लिप्त कभी नहीं होते। अब तो सामायिक की आराधना और समता भावना का पावन रस उनके इस अन्तःकरण में इतना घुल गया है कि उनके इस परिवर्तन की कीर्ति राजप्रासाद और राजपरिवार तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि समाज और राज्य की सीमाओं तक प्रसारित होने लगी।

चन्द्रसेन सोचते कि यह परिवर्तन कितना व्यापक रूप ले रहा है ? इस सब का श्रेय बड़ी महारानी को है, जिन्होंने मेरे कोप को भी सद्भावना के साथ सहन किया और जब मुझे प्रभावित करने का अवसर आया तो उस शुभ कार्य को भी बड़ी ही निपुणता के साथ पूरा किया। महाराजा के मन में यह विचार उठा कि दृष्टि-कोण के इस परिवर्तन को अधिकाधिक व्यापक रूप दिया जाना चाहिए।

तब उनकी भावना दो रूपों में बहने लगी। एक तो यह कि विचारों के परिवर्तन के साथ वे अपने आचार को भी परिवर्तित करें। दूसरे, इस नये दृष्टिकोण के अनुसार ही राज्य की नीति तथा व्यवस्था में भी परिवर्तन लाये जायें।

भावना प्रवाहित हुई तो उसके साथ ही महाराजा की कर्मण्यता भी जागृत हो गई। सबसे पहले आचरण की दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। उनके मन में तत्परता जागी कि परिवर्तन के इस योग का लाभ उठा कर अपनी शक्तियों को आत्म-शुद्धि के लिए जुटा देना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपनी धारणाओं के आधार को ही बदल डाला। अब वे यह मानने लगे कि राज्य उनका नहीं है और न ही उस पर अधिकार भी उनका ही है। वे राज्य के एक ट्रस्टी मात्र हैं तथा इस दृष्टि से राज्य के हित में वे जितना विवेक, सदाशय और श्रम लगा सकते हैं—लगा कर जनसेवा का उन्हें आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। उन्होंने संकल्प किया कि मुझे सारे कार्य नैतिकता के साथ करने चाहिए, किन्तु कोरी नैतिकता जिसके साथ लौकिकता जुड़ी रहती है हितावह नहीं हो सकती, अतः उसके साथ धार्मिकता का पुट होना चाहिये।

महाराजा ने राज्य व्यवस्था के प्रति इस तरह एक नये दृष्टिकोण का विकास किया कि नीति केवल लौकिकता के साथ जुड़ कर प्राण विहीन न हो जाय। इसलिये नीति धर्म के साथ जुड़ना चाहिये। नीति और धर्म के संयोग से ही प्राणवान् क्रियाशीलता का प्रसार हो सकेगा।

धर्म और नीति के पारस्परिक सम्बन्ध भी एक ऐसा विषय है जिस पर सभी को बारीकी से विचार करना चाहिये। नीति और धर्म को एक नहीं मान सकते हैं। नीति और है तो धर्म और है। सफलता के लिए दोनों का सहयोग अवश्य ही लाभकारी सिद्ध होता है।

नीति की विवेचना करें तो उसका बहुत कुछ अर्थ लौकिकता के रूप में लिया जाता है। इस दृष्टि से नीति का अर्थ माना जाता है लेन-देन का सम्बन्ध—इस हाथ से ले और उस हाथ से दे। आप समझते हैं कि मेरा पड़ोसी मेरे सुख-दुःख के समय में मेरे काम आवे तो उसके लिये आप भी पड़ोसी की आवश्यकता के समय सेवा करने की तत्परता दिखाते हैं। इसके साथ ही यदि आपने पड़ोसी की सेवा की और आपके वह काम नहीं आया तो आप शायद सोच लेते हैं कि मैं भी अब उसके काम नहीं आऊंगा। यह जो आदान-प्रदान का मामला है, उसे ही आप नीति कहते हैं। जब आदान-प्रदान का सम्बन्ध टूट जाता है तो दोनों पक्षों की पारस्परिक नीति भी टूट जाती है। इसका यही कारण होता है कि उस नीति के साथ धार्मिकता का पुट नहीं होता है। लोग जब मात्र नीति को ही धार्मिकता समझ लेते हैं, तब उसका परिणाम विपरीत आता है। यह कैसे होता है ?

आज दुनिया नीति और धर्म को अलग-अलग समझती है। किन्तु जहाँ-जहाँ नीति को ही धर्म समझ लिया गया है, वहाँ-वहाँ विपरीत परिणाम सामने आये हैं। बहिनें कभी-कभी धार्मिकता के कारण दान करती हैं और मुनियों को गोचरी बेहराने को भी ये दान का ही एक रूप मानती हैं। वे यह भी समझती हैं कि यदि वे सावधानी रख कर बेहराती हैं तो उसका शुभ फल उन्हें मिलेगा और यदि सावधानी टूटती है तो उससे हानि होती है। साधु तो परिपूर्ण अहिंसा के व्रतधारी होते हैं तथा सावद्य योग के परिपूर्ण त्यागी। अब सोचें कि यदि कोई बहिन साधु को शुद्ध आहार बेहराने की बजाय उनके निमित्त से तैयार करके आहार बनावे तो उसमें धार्मिकता नहीं मानी जाएगी। इसका एक उदाहरण समझ लें। एक सन्त के आयंबिल था सो वैसे आहार के निमित्त वे गोचरी को गये। महाराज को आता देख बहिन जल्दी रसोईघर में घुसी और उसने चट सारे फुलके घी से चुपड़ लिये। फिर वह महाराज को बेहराने लगी तो सन्त ने कहा कि उन्हें तो लूखा फूलका चाहिये। तब बहिन बोल उठी—मुझे लूखा फुलका भाता नहीं है और अगर मैं आपको लूखा फुलका बेहराऊँगी तो आगे मुझे भी लूखा फुलका ही मिलेगा। अब उस बहिन के ऐसे विश्वास को क्या कहेंगे—धर्म कहेंगे या नीति कहेंगे ?

सोचें कि कोई व्यापारी व्यापार करता है। उसको कहा जाय कि मैं तुम्हें इतने रुपये देता हूँ, तुम मुझे वापिस चुका देना ! यह नीति है। और यह कहा जाय कि मैं इतने रुपये दे रहा हूँ, तुम मुझे अगले जन्म में इतने ही रुपये वापिस दे देना। यह कैसा विचार है ? जहाँ धर्म नीति से जुड़ जाता है, वहाँ सोने में सुहागा हो जाता है। पड़ौसी दूसरे पड़ौसी की सेवा करता है और अगर यह सोचता है कि बिना किसी स्वार्थ के मैं सेवा कर रहा हूँ—वह मेरे दुःख—दर्द में काम आवे या नहीं, मैं तो अपना धर्म समझ कर उसकी सहायता कर रहा हूँ तो ऐसे स्थान पर समझिये कि नीति पर धर्म का पुट लग गया है—वहाँ मात्र लेन—देन की भावना नहीं रही है। वह बहिन सन्त को गोचरी बेहराते समय यदि इतना ही सोचती कि शुद्ध आहार बेहराकर मैं इनकी संयम—साधना में सहायता कर रही हूँ तो वहाँ नीति के साथ धर्म का जुड़ना माना जाता।

धर्म का प्राण मिल जाने से नीति जीवन्त हो जाती है। वैसी नीति आत्म—शुद्धि का कारण भी बन जाती है। मेरे कई भाई—बहिन कहना चाहते हैं कि नीति और धर्म दोनों को साथ लेकर चलें। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि साधु टंडा और बासी आहार भी ले सकते हैं। चन्दनबाला द्वारा बेहराये गये उड़द के बाकले वापिस किस जन्म में मिले ? वे तो उसी जन्म में मोक्ष पधार गईं। साधु के आचार में समझौते का सवाल कभी पैदा नहीं होता है।

महाराजा चन्द्रसेन की भी ऐसी ही परिस्थिति थी। जब तक उनको सही दृष्टिकोण नहीं मिला तब तक वे अपने अशुद्ध विचारों के साथ ही चल रहे थे किन्तु जब पटरानी ने उनकी दृष्टि बदल दी तो वे धर्म और नीति का सम्यक् रूप से ताल—मेल बिठाने लगे। सत् संगति से ही उनको यह दृष्टि मिली थी जिसकी उपमा चन्दन वृक्ष से दी जाती है। चन्दन का वृक्ष जो भी उसकी समीपता में आता है उसे अपनी सुगंध और शीतलता प्रदान करता है। सन्तों के सान्निध्य में जाना आरंभ करके अब महाराजा चन्द्रसेन भी सत्संगति के अनूठे लाभ लेने लगे। इन अनूठे लाभों से सबसे बड़ा लाभ था समता के समरस का स्वयं आस्वादन करना और उसका आस्वादन जो भी सम्पर्क में आवें अथवा अपने से सम्बन्धित हों, उन सबको कराना। महाराजा का मन समता के अनुभव से एकमेक होने लगा।

जिन पुरुषों ने समता की साधना में प्रवेश किया है, उन पुरुषों की दृष्टि भी पूर्ण रूप से समतामयी बनी और उस समता दृष्टि के अनुरूप ही उनका समग्र व्यवहार भी ढला है। यही चन्द्रसेन के साथ भी हुआ। जब उन्होंने समता का स्वरूप नहीं समझा था तब तक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न अवसरों पर उनका भिन्न-भिन्न व्यवहार होता था। उसके पीछे यह दृष्टि रहती थी कि जो मेरे मन के अनुकूल चलता है उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय, अन्यथा मेरे प्रतिकूल चलकर कोई भी मेरे से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा कैसे रख सकता है ? इस दृष्टि को प्रभावी बनाने के लिए उनके पास सत्ता का बल था, शक्ति और सेना का बल था। परन्तु उस दृष्टि के साथ राज्य व्यवस्था सुचारु रूप नहीं ले पा रही थी। इसका अनुभव उन्हें तब हुआ जब उनकी दृष्टि बदल गई—भेद की दृष्टि समता की दृष्टि बन गई। उनका व्यवहार जब समभाव पर आधारित होने लगा तो सारा वातावरण ही बदल गया।

समता दृष्टि ने चन्द्रसेन की सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था में एक सुखकारी परिवर्तन ला दिया। और यह परिवर्तन आया स्वयं अपनी पटरानी के समभावी जीवन को देखकर। पटरानी के पास सत्ता, शक्ति या सेना का कोई बल नहीं था, फिर भी वह सबसे आदर सम्मान पाती थी। यही नहीं, उसने राजपरिवार की व्यवस्था को जो सुचारु रूप दिया था वह अनुकरणीय था। चन्द्रसेन ने जब इस सुचारु रूप का रहस्य जान लिया तो वे भी समभाव का अभ्यास करने लगे और राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था तथा अपने समस्त व्यवहार को भी समता पर आधारित करने लगे। इसका वास्तव में उन्हें लाभ मिलने लगा। पहले जहां उनकी सैन्य बल के आधार पर दूसरों को अत्याचार और परतन्त्रता देकर अपने राज्य का विस्तार करने की दुरिच्छा रहती थी, वह अब अब नहीं रही। वे अब स्नेह, मित्रता और सद्भाव में विश्वास करने लगे। समता की दृष्टि ने ही उनकी समता को भी समाप्त कर दिया अतः अब वैभव संचय की उनकी लालसा नहीं रही। अब तो उनका यह चिन्तन चलने लगा कि वे अपने सद्भाव और सहयोग से कितना अधिकाधिक लोक कल्याण साध सकते हैं ? उनके जीवन ने एक नया मोड़ ले लिया।

महाराजा चन्द्रसेन ने निश्चय कर लिया कि उनके राज्य की नीति अब विस्तारवादी नहीं रहेगी और जितना राज्य वर्तमान में उनके अधीन है

उसके नागरिकों के साथ भी भय, आतंक और प्रताड़ना की नीति नहीं चलेगी।

विस्तारवादी नीति की प्रतिकृति प्राचीन काल में भी देखी जा सकती थी और वर्तमान काल में भी देखी जा सकती है। अधिकांश व्यक्ति विस्तारवादी नीति को मानने वाले हुआ करते हैं। ये अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन बना लेते हैं। उन्हें अधीन बना कर इतना अशक्त कर दिया जाता है कि वे उनके अधिकार से बाहर न निकल सकें। प्राचीनकाल में भी दोनों नीतियां प्रचलित थीं—जन हितकारी नीति भी और विस्तारवादी नीति भी। रामायण को देखें तो जहां राम जन-हितकारी नीति के संचालक थे, वहाँ रावण विस्तारवादी नीति का अनुसरण करता था। विस्तारवादी नीति के बल पर ही उसने अपना अपार वैभव जोड़ा तथा विषय-वासना के साधन इकट्ठे किये। इसी नीति का फल था कि उसके राज्य में चारों ओर विषमता थी। इस विषमता ने ही उसे राक्षस बनाया। जो सब कुछ अपने ही लिये रखे उसे ही तो राक्षस कहते हैं। ऐसे राक्षस कहा करते हैं—मेरा है सो मेरा है, तेरा भी मेरा है।

इस तरह विस्तारवादी नीति होती है विषमता की नीति, ममत्व की नीति जो मन के विकारों का तांडव मचा देती है। क्या आजकल भी इस तरह की नीति दिखाई देती है अथवा नहीं? सत्ता, पद और धन को प्राप्त करने के उपायों में आज भी विस्तारवादी नीति किस प्रकार खुल कर खेल रही है—यह आप लोगों के सीधे अनुभव का अधिक विषय है। सभी लेना ही लेना चाहते हैं, छोड़ने के नाम पर कोई कुछ भी छोड़ना नहीं चाहता। राम और रावण का अन्तर आज भी चल रहा है जिसे समतावाद के साथ ही मिटाया जा सकता है।

महाराजा चन्द्रसेन के जीवन में पहले जहाँ रावणपन की वृत्ति थी, वहाँ अब रामपन की झलक निखर आई थी। ऐसा रूपान्तरण कैसे संभव हुआ? यह पटरानी के पावन सहयोग तथा उनके अपने दृढ़ संकल्प से संभव हुआ। महाराजा ने सोच लिया कि वे भौतिक सम्पत्ति की तृष्णा के स्थान पर ऐसी आध्यात्मिक सम्पत्ति का विकास करेंगे जिसके कारण उनकी अपनी प्रजा भी उनको बड़े सम्मान से दीर्घकाल तक याद करती रहेगी।

चन्द्रसेन कितने रूपान्तरित हो गये, उन्होंने अपने जीवन में कितना परिवर्तन कर दिया ? वे क्या थे और क्या बन गये ? ऐसा सुपरिणाम किसका होता है ? निश्चय ही सुसंगति का, सांसारिकता का सम्पूर्णतः जो त्याग करके साधना मार्ग पर चलते हैं, उनकी छाया के संसर्ग का भी सुप्रभाव पड़ता है। ऐसे साधकों की संगत में आने वाले व्यक्ति के जीवन में शुभ परिवर्तन आये बिना नहीं रहते। पहले का निर्दयी जीवन भी तब दयावान और मधुर बन जाता है।

कोयल को तो आप जानते होंगे। क्या वह किसी को कोई आघात पहुंचाती है ? पक्षी होकर भी वह कितनी निर्लिप्त होती है ? वह समता का सिद्धान्त पढ़ी हुई नहीं होती, किन्तु इतनी चतुर होती है कि अपने अण्डे वह कौए के घोंसले में देती है। कौवी उसे अपने अण्डों के साथ सेती रहती है और जब पक्षी बाहर निकलते हैं तब वह पहिचानती है कि अमुक पक्षी उसके नहीं है। वह फिर उन्हें मारने की चेष्टा करती है तो कोयल उन्हें बचा लेती है। कोयल का स्वर मधुर होता है और उसको सब चाव से सुनते हैं, जबकि कौए के कर्कश स्वर को कोई बर्दाश्त नहीं करना चाहता है। एक बार कोयल स्वर्ग में चली गई तो वहाँ उसकी मधुर वाणी से सभी देव बहुत खुश हुए और उसे एक रत्नहार दे दिया। फिर पूछा कि तुम कहाँ से आई हो ? कोयल ने कहा कि वह पृथ्वी से आई है तो देवता पृथ्वी की सराहना करने लगे। कोयल वापिस लौट आई और कौए ने जब उसका वृत्तान्त सुना तो वह भी स्वर्ग में पहुँचा और कांव-कांव करने लगा। तब देवों ने उसका तिरस्कार किया। उसे भी पूछा कि वह कहाँ से आया है ? कौए ने कहा कि वह पृथ्वी से आया है। तब देवता आश्चर्य करने लगे कि कितनी सहनशीला है पृथ्वी जो कोयल को भी पालती है और कौए को भी ? यह एक रूपक है।

तो सोचिये कि वह पृथ्वी समभावी है या विषमभावी ? क्या पृथ्वी से शिक्षा लेकर अपने समभाव का विकास नहीं किया जा सकता है ? सामायिक की शुद्ध आराधना देव नहीं कर सकते, मनुष्य ही कर सकते हैं। इसी कारण देवता भी मनुष्य जीवन को प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं। महाराजा चन्द्रसेन समभाव का विकास करके अपने मनुष्य जीवन को सफल बना रहे थे। जब जीवन में जीवन का परिवर्तन होता है तो मनुष्य जिन विचारों में पला पोषा होता है, उनके स्थान पर नये विचारों का जन्म

होता है और उस दृष्टि से उसका वह नया जन्म हो जाता है। जब मनुष्य का लक्ष्य बदलता है तो उसकी श्रद्धा का केन्द्र भी बदल जाता है। सम्राट चन्द्रसेन जब अपने ही सुख की चिन्ता कर रहे थे तब उनके राज्य की स्थिति समीचीन नहीं थी। लेकिन उनमें जब परिवर्तन शुरू हुआ तो उनका सोच अपने से हटकर जनता की तरफ हो गया। उसके बाद उस सोच से जो जनहितकारी कार्य महाराजा ने प्रारंभ किए तो वे जनप्रिय हो गये। जनता तब उन पर अपने प्राण निछावर करने लगी। चन्द्रसेन का भी चूँकि विचार बदल गया था अतः जनता के प्रेम से वे भी आनन्दित होने लगे। जनप्रेम उनके लिये शान्ति का स्रोत बन गया।

कहा गया है कि यथा राजा तथा प्रजा। अतः जब राजा की नीति श्रेष्ठ बन जाती है तो नैतिकता की दिशा में प्रजा भी अग्रगामी हो जाती है। सन्त लोग इसके लिये एक रूपक देते हैं। एक राजा बड़ा ही दुष्ट था। उसकी नीति बहुत बुरी थी। वह निरपराध प्राणियों के जीवन से खेला करता था और हिंसक कार्यों में लगा रहता था। एक बार शिकार के निमित्त वह एक घनघोर जंगल में पहुँच गया। उसका घोड़ा इतनी तेजी से भाग रहा था कि उसे रूकने के लिए भी तरकीब सोचनी पड़ी। एक वृक्ष की झुकी हुई शाख को उसने जब पकड़ लिया तो वह भागते हुए अपने घोड़े से अपना पिंड छुड़ा सका। राजा शाखा से नीचे उतरा और इधर-उधर रास्ता ढूँढने लगा। वह एक किसान के खेत पर पहुँच गया। उसे जोर की प्यास लगी हुई थी। वह सोचने लगा कि कहीं से रस्सी और लोटा मिल जाय तो कुएँ से पानी खींच कर अपनी प्यास बुझा ले। तभी उसे एक अस्सी वर्ष की बुढ़िया दिखाई दी। उसने उससे कहा कि वह रस्सी-लोटा हो तो उसे दे—वह बहुत प्यासा है। बुढ़िया के पास रस्सी-लोटा तो नहीं थे। वह खेत में गई और एक गन्ना उखाड़ लाई। उसने उसका रस हाथ से निचोड़ कर राजा को पीने के लिये दिया। राजा उसे पीकर तृप्त हो गया। तब राजा के मन में यह दुष्ट विचार जागा कि किसान इतनी इच्छी फसल लेते हैं और उसे बहुत कम टैक्स देते हैं। उसने बुढ़िया से पूछ कर पता कर लिया कि वह खेत उसके ही राज्य का था। राजा ने राजधानी पहुँच कर पहला काम यह किया कि किसानों पर टैक्स बढ़ा दिया। अरसे बाद फिर ऐसा संयोग बैठा कि राजा जंगल में भटक कर फिर उसी खेत पर पहुँच गया। तब भी वह बहुत प्यासा था। वही बुढ़िया उसे मिली। तब

बुढ़िया चार गन्ने लाई फिर भी उतना रस नहीं निकला कि राजा पूरी तरह से तृप्त हो सके। राजा ने इस अन्तर का कारण जानना चाहा तो बुढ़िया ने बेबाक कहा कि राजा बदनीयत हो गया तो प्रकृति ने भी अपना फल बदल दिया, बाकी हमारा श्रम तो उतना ही लग रहा है। राजा ने यह सुना तो उसकी चेतना जागी और उसने यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति का सार समझा।

आज राजाओं का जमाना तो चला गया। अब जनता के चुने हुए प्रतिनिधि शासक हो गये हैं। यदि जनता के प्रतिनिधियों की भावना जनता के प्रति अच्छी होती है और जनता के दुःख-सुख में वे सहायक बनते हैं तो जनता भी उनके लिए पलक पांवड़े बिछाती है। लेकिन यदि नेता की भावना क्रूर और स्वार्थ भरी होती है तो जनता की श्रद्धा भी उसे नहीं मिलती है एवं न ही वह शान्ति की नींद ले सकता है। आप किसी भी नेता को पूछिये कि उनको शान्ति की नींद क्यों नहीं आती है और फिर उनके उत्तर को सुनिये।

चन्द्रसेन को जब तक पटरानी का शुभ सहयोग नहीं मिला तब तक उनके प्रति जनता के विचार कैसे थे और जब उनमें परिवर्तन आ गया तो वे जनप्रिय बन गये और शान्ति की नींद सोने लगे। अब उनकी विचार धारा चलने लगी कि मेरे पास धन है, वैभव है और सत्ता है तथा मैं अपनी शुभता में भी आगे बढ़ रहा हूँ। ऐसे समय में मुझे क्या करना चाहिये ? महारानी ने मुझे अच्छा मार्ग बताया है, वह मेरी परम उपकारी है। मुझे सन्तों का लाभ दिलाने का श्रेय भी उसी को है। कई बार बहिनों की प्रेरणा से भाइयों का जीवन बदलता है। बीकानेर में श्रीश्रीमालजी कभी सन्तों के समीप नहीं जाते थे किन्तु उनकी धर्मपत्नी ऐसी निष्ठावान आई कि उसकी प्रेरणा से वे सन्त समागम में रम गये। चन्द्रसेन भी न सिर्फ सन्तों की संगत में आने-जाने लगे बल्कि सत्संगति में सराबोर हो गये। परिणाम-स्वरूप उनकी साधना अति सुदृढ़ बनने लगी। उनके पास भौतिक सुखों की कमी नहीं थी—एक पुत्र ही नहीं था, किन्तु पुत्र के लिये भी अब उनकी आसक्ति बहुत कम हो गई थी। लेकिन इस अभाव के कारण उनकी प्रजा में अवश्य खिन्नता का वातावरण बना हुआ था।

यह जनता की खिन्नता महाराजा के लिए कष्टदायक हो रही थी,

किन्तु स्वयं की सन्तान—लालसा नहीं। उनके मन में यही आ रहा था कि मैं जनता के साथ समभाव से कैसे रहूँ ? मैं स्वयं दुःख सह सकता हूँ, किन्तु जनता को कष्ट में नहीं देख सकता हूँ। इस भावना के साथ उनकी जनता के प्रति आत्मीयता प्रगाढ़ हो जाती है और जनता उन्हें अपना हृदय—सम्राट् मानने लगती है।

समता की साधना करके चन्द्रसेन अब जनवत्सल और जन—वल्लभ हो गये थे। यह जनमत बन गया कि चन्द्रसेन जैसा समभावी नायक मिलना बहुत कठिन है।

विचार करें कि जो समता—भाव की साधना करता है, उसका वर्तमान जीवन भी कितनी गहराई से प्रभावित होता है। वहां कुछ लोग ऐसे थे जिन पर उस जीवन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कई व्यक्ति एक ही बात को भिन्न—भिन्न दृष्टियों से देखते हैं—चाहे वे प्रकट रूप में अपनी विरोधी दृष्टि को जाहिर न करें किन्तु उनके मन में वह बात उभरती अवश्य है कि अमुक व्यक्ति साधना कर रहा है, फिर भी दुःख पा रहा है। उसे पेट भर खाने को भी नहीं मिलता, जबकि अमुक पाप करने वाले मजे उड़ा रहा है। किसी अविचारी ने तो यह तुकबंदी भी करदी—करो पाप, खाओ धाप और करो धरम फूटे करम। ऐसा कहने वाले तो मिलते हैं, मगर इसका अर्थ करने वाले नहीं मिलते। समता एक धर्म है—सिर्फ मानव के लिये ही नहीं, बल्कि प्राणी मात्र के लिये। समता साधना करने वाला वर्तमान जीवन में दुःख पा रहा है तो यह उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है। इसी तरह पूर्व जन्म के पुण्य हैं तो उनका शुभ फल इस जन्म में पाप करने वाले को भी मिलता है। जब पुण्योदय समाप्त हो जायेगा तो उसके बाद उसकी दशा बिगड़ेगी ही। इसका आध्यात्मिक विधि से यही समाधान है कि समता की साधना करने वाले व्यक्ति के पूर्व जन्म के अशुभ कर्म टूटते हैं। कहा है—

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुनः आध।

तुलसी संगत साधु की, कटे कोटि अपराध।।

समता की ऐसी ही साधना के बल पर चन्द्रसेन जनता के वल्लभ बन गये थे। सत्संग से जब उन्हें ज्ञान मिला तो वे सोचने लगे कि सन्तान हो तो क्या और नहीं हो तो क्या—अपने अमूल्य जीवन को इस चिन्ता से विद्रूप

नहीं बनाना चाहिये। यह अमूल्य मानव जीवन चिन्तामणि रत्न के समान है। किसी को चिन्तामणि रत्न मिल जाय और वह उसका शिला पर चटनी बांटने में उपयोग करे तो उसे क्या कहा जाएगा ? उस चिन्तामणि रत्न का तो फिर भी मूल्य है, किन्तु यह मानव जीवन तो अमूल्य होता है, अतः उसका श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप सदुपयोग ही करना चाहिये—यह चन्द्रसेन ने मन ही मन निश्चय कर लिया था।

किन्तु जन समुदाय के मन में एक तरह की खिन्नता और जिज्ञासा उभर रही थी। लोग सोच रहे थे कि किसी दिन जब ये महाराजा नहीं रहेंगे तो चूंकि इनके कोई सन्तान नहीं है अतः पता नहीं कि किस स्वभाव वाला शासक इस राज्य व्यवस्था की बागडोर संभालेगा। कुछ समझदार लोगों ने अपना यह मत जाहिर किया कि अगर इन्हीं महाराजा के सन्तान हो जाये तो भविष्य में ऐसा ही शासक हमें मिल सकेगा। कारण, सन्तान में अपने माता—पिता तथा वंश—परम्परा के सदगुणों का अवश्य ही समावेश होता है। चन्द्रसेन जैसे समभावी एवं जन हितकारी महाराजा तथा समतामय जीवन की अनुगामिनी महारानी की सन्तान अवश्य ही उनके इन गुणों के अनुरूप होगी, बल्कि कभी पुत्र अपने पिता से भी आगे बढ़ जाता है। जनता के इस विचार के साथ निश्चय किया कि उनके प्रतिनिधियों का एक शिष्टमंडल महाराजा चन्द्रसेन की सेवा में पहुँचे तथा उनके सन्तान होने की शुभ कामना व्यक्त करे।

इस निश्चय के साथ विशिष्ट नागरिकों का एक शिष्टमंडल महाराजा की सेवा में पहुँचा। महाराजा ने भी शिष्टमंडल के सदस्यों को आदर सहित बिठाया और पूछा कि उन्होंने किस निमित्त से कष्ट किया है ? महाराजा ने यह भी कहा कि उन लोगों ने यह कष्ट क्यों किया ? अगर जनता का कोई कार्य होता तो आप मुझे वहीं बुला लेते—मेरा जीवन तो जनसेवा हेतु समर्पित है। महाराजा का यह कथन सुनते ही सबका हृदय गद्गद् हो गया। महाराजा ने फिर कहा—आप किस समस्या के समाधान हेतु यहाँ आये हैं ? किसी भी वस्तु की कमी हो या अन्य कोई अभाव हो तो मैं कष्ट उठाकर भी उसकी पूर्ति जनता के लिए करना चाहूँगा। आप अपना मत व्यक्त बतावें।

शिष्टमंडल के नेता ने उत्तर दिया—राजन्, आप जिस हार्दिकता से हमारी सेवा कर रहे हैं, वैसी अवस्था में जनता को किस अभाव का कष्ट

हो सकता है ? हम तो अपनी एक भावना आपके समक्ष व्यक्त करने के लिए आये हैं। वह भावना यह है कि आपके जैसा ही महान् समभावी शासक हमें भविष्य में भी मिले। हमारी इस भावना की सफलता के विषय में आपके विचार-विमर्श करने के लिये ही हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। हमारी अभिलाषा है कि आपका पुरुषार्थ सफल हो तथा आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हो जो हमारा आप जैसा ही महान् शासक भविष्य में हो सके।

महाराजा चन्द्रसेन ने समझाया—आप भद्रिक लोग हैं और आपकी भावना अच्छी है। मैं भी सन्तान की कामना रखता था अतः एक-एक करके मैंने बारह विवाह किये, फिर भी सन्तान नहीं मिली तो यह कर्म फल के अधीन है। आप लोग भी सन्तों के संसर्ग में जावें तो ज्ञात हो जायेगा कि कर्म फलानुसार ही ऐसी प्राप्तियाँ होती हैं। सन्तों के पास अगर आप एकाधिक बार जायेंगे तो आप को जीवन के कई रहस्य समझ में आ सकेंगे। सम्राट् की बात सुनकर शिष्टमंडल आशान्वित हुआ। तभी सम्राट् ने मन ही मन यह निर्णय लिया कि सन्तान प्राप्ति का कोई भी ऐसा प्रयास वे नहीं करेंगे जिससे उनकी सामायिक की साधना पर आंच आती हो या किसी प्रकार की मिथ्या-दृष्टि प्रकट होती हो। शिष्टमंडल अपनी भावना व्यक्त करके चला गया, और महाराजा भी अपनी साधना में सुखपूर्वक तन्मय रहने लगे।

प्रकृति प्रत्येक परिस्थिति में अपना प्रभाव दिखाती है। शीतकाल के बाद ग्रीष्मकाल की उष्णता प्रकट होती है, लेकिन वही जब तापतप्त कर देती है तो वर्षाकाल एक नवीन सुखमय आशा को जन्म देती है—मनुष्य के जीवन को शीतलता और धरती को धन की समृद्धि प्रदान करता है।



3

समय एक सा नहीं रहता। राजा और प्रजा की नीति एवं धर्म में जब उच्चता व शुद्धता का स्तर विकसित होता है तो उसका प्रभाव भी समय पर पड़ता है। यों परिवर्तन समय का धर्म होता है। महाराजा चन्द्रसेन यही सोच रहे थे कि उनके जीवन में जिस शुभ परिवर्तन का उदय हुआ है, उसका श्रेय धर्म को ही दिया जा सकता है। धर्म ने ही उनके विचार बदले और विचार बदले तो आचार बदला। जब उनके जीवन का आचार बदला तो समूची राज्य व्यवस्था की नीति और व्यवहार ही बदल गया। उनके हृदय में यह सत्य गहराई से पैठ गया कि दृष्टि बदली तो सृष्टि बदली।

महाराजा का जीवन सामायिक की साधना से ओतप्रोत हो चुका था। पहले सन्तान प्राप्त न होने के कारण उनका मन चिन्तित रहा करता था परन्तु समता की आराधना के साथ ही उनकी वह चिन्ता समाप्त हो गई। इस चिन्ता को समाप्त करने में सन्तों का निमित्त मिला। उन्होंने सन्तों से जीवन का वास्तविक स्वरूप समझा और तत्त्व दृष्टि का ज्ञान किया। फिर वे प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन किया करते। इसी चिन्तन धारा में उन्हें विदित हुआ कि इस नाशवान शरीर से शुभ या अशुभ जो भी कार्य किये जाते हैं उनसे कर्मों का संयोग जुटता है। जो कर्म निकाचित होते हैं, उनका तो फल भोगना ही पड़ता है; अन्यथा अन्य कर्मों से छुटकारा पाया जा सकता है। इस चिन्तन के साथ चन्द्रसेन ने विचार किया कि सन्तान प्राप्ति के लिये चिन्ता नहीं की जाय, किन्तु पुरुषार्थ भी करते रहें। कर्तव्य और पुरुषार्थ की दृष्टि से संलग्नता रखते हुए जो भी भविष्य हो उसे स्वीकार कर लें। ऐसे चिन्तन के साथ ही महाराजा ने जैसे अपने मन को आज्ञा दे दी कि उसे सन्तान प्राप्ति की चिन्ता में डूबे रहने की जरूरत

नहीं है—वह अपनी सारी सक्रियता प्रजा के हित में नियोजित कर दे। उनका मन साधना के प्रभाव से पक्का आज्ञाकारी बन चुका था इसलिये वह आज्ञानुसार मुड़कर कार्यरत हो गया।

जनता का शिष्टमण्डल तो महाराजा के समक्ष अपनी भावना रखकर गया ही था, मंत्री ने भी यही भावना महाराजा के समक्ष व्यक्त की—आपके सुप्रभाव से मुझे भी सच्चे दिल से जनता की सेवा करने का मौका मिला है तथा जन-सेवा की ऐसी शुद्ध परम्परा का निर्वाह तभी हो सकेगा जब भावी शासक भी आपके समान विचारों एवं सद्गुणों वाला पुरुष हो और वह आपका स्वयं का सुपुत्र ही हो सकता है जिसके द्वारा राज परिवार का यथावत् संरक्षण तथा राज्य व्यवस्था का सुचारुता से संचालन सम्भव हो सकेगा। मंत्री की बात सुनकर महाराजा ने आश्वासन दिया— मैं आपकी बात पर चिन्तन करूंगा लेकिन सांसारिकता युक्त विषय वासना की भावना के साथ नहीं, बल्कि तब जब निर्मल बुद्धि के साथ धर्म साधना में बैठूंगा। धर्मासाधना का प्रारम्भ सामायिक से होता है अतः उस समय ही व्यवस्थित मन से आपकी बात पर विचार करूंगा।

अगले दिन प्रातःकाल महाराजा को जनता और मंत्री की भावना का ख्याल आया और तभी सामायिक की साधना करने का भी। किन्तु पहले बहिर्भ्रमण करने की उनकी इच्छा हुई ताकि शुद्ध वायु का सेवन किया जा सके। वे अपने उद्यान की तरफ चले गये। वहां कुछ समय तक घूमते रहे और सामायिक करने की भावना से पुनः प्रासाद की ओर चल पड़े।

उसी रात्रि को अच्छी वर्षा हो गई थी, अतः राजभवन जाते हुए मार्ग में महाराजा को एक किसान दिखाई दिया जो हल-बैलों के साथ बीज बोने के लिए अपने खेतों की तरफ जा रहा था। किसान के साथ उसका पुत्र भी था, मानों वह अपने पिता से कृषि का व्यावहारिक शिक्षण लेने के लिये जा रहा हो। किसान ने जब राजा को देखा तो एक बार वह राज-दर्शन से प्रसन्न हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण उसका मन खिन्न हो उठा।

कृषक खिन्नता मन में आई, एक दुःस्वप्न के कार।

घर पर लौटा पुत्र साथ में, करता विचित्र विचार।।

जन मन प्यारी मंगलकारी,

समता है जग में सुखकार।

किसान के मन में आई खिन्नता का एक कारण था। वैसे तो राजा उसके लिये पिता तुल्य थे किन्तु उसका विश्वास था कि जब वह बीज बोने के लिये जा रहा है और सामने पृत्रहीन पुरुष मिल जाय तो वह शुभ फल का संकेत नहीं है। इस विचार से ही उसका मन खिन्नता से भर गया था। वह सोचने लगा कि वह बारहों महीनों के जीवन-निर्वाह के साधन रूप खेती की शुरुआत करने के लिये जा रहा है सो यह शकुन ठीक नहीं हुआ।

अज्ञानी लोग जो जीवन के वास्तविक महत्त्व को नहीं समझते हैं, शकुन-अपशकुन की बातों पर सोचते हैं। क्या आप लोग भी शकुन देखते हैं ? खुले में आप हां नहीं भरेंगे लेकिन शकुन देखने की बात अच्छी नहीं है। आप लोग कहीं शुभ कार्य के लिये बाहर जा रहे होंगे और बिल्ली रास्ता काट जाय तो उसे अपशकुन मान लेते हैं। इस तरह कल्पना का एक भूत खड़ा कर लेते हैं। कई बार इस तरह की विचारणा से मानसिक रोग तक हो जाते हैं। कहीं बिल्ली के रास्ता काट लेने से पुरुषों का पौरुष घट जाता है सो सोच लेते हैं कि काम नहीं होगा। कदाचित् सामने विधवा बहिन मिल जाय तब भी आप अपशकुन मानते हैं। क्या ऐसी धारणा भी अच्छी है ? विधवा बहिन तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती है और तपस्या करते हुए शुद्ध जीवन बिताती है भी उसके सामने आने को अपशकुन मानना अज्ञान नहीं तो और क्या है ? सामने चरित्रहीन सधवा मिल जाय सो तो शकुन अच्छा और सच्चरित्र विधवा मिल जाय सो शकुन खराब—कैसी विचित्र बात है ? यह अज्ञान का ही नमूना है।

शकुन खराब हुआ है— यह मानकर वह किसान अपने पुत्र तथा बैलों को लौटा कर खेत पर पहुँचने की बजाय वापिस अपने घर में चला गया। ज्यों ही किसान घर की ओर लौटा, महाराजा की दृष्टि उस ओर चली गई। महाराजा विचार में पड़ गये कि हर्षित मन से बीज बोने के लिए जा रहा यह किसान इस तरह खिन्न होकर वापिस घर को क्यों लौट पड़ा है, जबकि सामने से सिवाय उसके अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं आया है ? और यदि यह किसान मुझे ही देखकर वापिस लौट चला है तो इसका कुछ न कुछ रहस्य अवश्य होना चाहिए। महाराजा के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे।

महाराजा उद्यान से लौटकर राजभवन पहुँचे और सामायिक की साधना में बैठ गये। किन्तु हमेशा जिस विधि से उनके मन की एकाग्रता सधती थी, वैसी एकाग्रता उस दिन नहीं सध रही थी। मन स्थिर नहीं हो रहा था और बार-बार यही बात उठ रही थी कि वह किसान बीज बोने के शुभ कार्य हेतु जाते हुए उसे देखकर वापिस क्यों लौट पड़ा ? हार थक कर महाराजा ने अपनी बुद्धि को आज्ञा दी कि वह इस घटना के रहस्य का पता लगावे। तब बुद्धि ने उन्हें परामर्श दिया कि इसका रहस्य जानने के लिए किसी गुप्तचर को किसान के पास भेजना चाहिए। सामायिक पूर्ण करके महाराजा ने इस बात का पता करने के लिए और किसान को बुला कर लाने के लिए एक गुप्तचर को किसान के पास भेज दिया।

गुप्तचर किसान के पास पहुँचा और उससे बोला—तुम्हें महाराज बुला रहे हैं। सो मेरे साथ चलो। महाराजा के बुलाने की बात सुन कर किसान का मन आशंकित हो उठा। उसके मन में सुबह वाली बात ही घूम गई और यह शंका जागी कि शायद उसके इस तरह से लौटने को महाराज ने अपना अपमान समझ लिया हो ! अब महाराजा के सामने यदि मैं सच्ची बात कह दूंगा तो मेरा क्या हाल होगा ? अब उसे शकुन की बात सोचकर अफसोस होने लगा। उसका मन अशांत हो गया।

किसान के मन में भय और कायरता का एक साथ प्रवेश हुआ कि न जाने महाराजा उसे कैसा दंड देंगे ? मनुष्य का मन जैसा कातरता से आतंकित होता है वैसे वीरता से उत्साहित भी। जब मन में वीरता के भाव आते हैं तो मनुष्य सच्चाई के साथ आगे बढ़ता है और कायरता के आतंक से उसका मन बुझ जाता है। यही नहीं, शारीरिक शक्ति तक टंडी पड़ जाती है। सुना होगा कि यकायक चोर को घर में घुसा हुआ देखकर नींद से जगा व्यक्ति इतना घबरा जाता है कि उसकी जीभ हकला जाती है और बोली तक नहीं निकलती। शरीर का ऐसा हाल मन की स्थिति के अनुसार बनता है। किसान धर्म संकट में पड़ गया कि सच बोले तो बुरा और सच नहीं बोले तो क्या बोले ? मन की कायरता से वह किसान हतप्रभ सा हो गया।

जब गुप्तचर ने किसान को महाराजा के सामने उपस्थित किया तो वह थर-थर कांप रहा था। महाराजा ने उसे देखा और बड़े प्रेम से

पूछा—भाई, आज सुबह जब खेत पर बीज बोने के लिये जाते हुए तुम्हें मैं सामने मिला तो तुम अपने घर को वापिस क्यों लौट पड़े—इसका कारण मुझे समझ में नहीं आया, इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है। इसमें डरने की कोई बात नहीं है। जिस प्रश्न से किसान बुरी तरह से डर रहा था, वही प्रश्न जब उसके सामने खड़ा हो गया तो वह दिग्भ्रमित सा खड़ा ही रहा। कई लोग ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती है तो झूठ बोलकर गलत उत्तर देने की चेष्टा करते हैं यह सोचकर कि सामने आये हुए संकट को टाल लें। कई बार गलत उत्तर देने का तय करने के पहले पुनः भय सताता है कि एक झूठ बोलकर न जाने उन्हें कितनी बार झूठ बोलना पड़ेगा और इस झूठबाजी में कहीं न कहीं फंसने का फंदा तैयार हो ही जाएगा। तब यही मन बनता है कि सच बोले बिना छुटकारा नहीं है। महाराजा के वचनों की मधुरता ने भी किसान को प्रभावित किया और इस तरह उसने सच बात ही कह देने का निश्चय किया। फिर भी मन बहका और उसने बहाना बनाया।

महाराजा के प्रश्न को सुनकर किसान कांपता ही रहा, अपने मन को मजबूत नहीं बना सका। इस कारण कम्पित स्वर में ही वह बोला—राजन्, मैं खेत जोतने के लिए जा रहा था तब आपके दर्शन हुए—यह मेरा सौभाग्य था। किन्तु उसी समय मुझे याद आया कि एक आवश्यक वस्तु मैं घर पर ही भूल आया हूँ अतः उसे लेने के लिये मैं वापिस घर की तरफ लौटा। किसान का यह उत्तर सुन कर महाराज मन्द—मन्द मुस्कुराने लगे।

चन्द्रसेन महाराजा का मन सामायिक की साधना के कारण रौद्रता त्याग चुका था। कोई अपराध भी होता तब तक भी उन्हें क्रोध नहीं आता। यहाँ तो अपराध जैसी कोई बात भी नहीं थी, फिर भी किसान को झूठ बोलते देखकर उन्हें हंसी आ गई। वे मन में समझ रहे थे कि किसान भयवश ही सच बात को छिपा रहा है। झूठी बात सुनकर भी महाराजा की मधुरता कम नहीं हुई, बल्कि उन्होंने कोमल शब्दों में फिर किसान से पूछा—भाई, तुम निर्भय रहो और सत्य बात कहो। तुम सत्य तथ्य को झुठलाओ मत। आवश्यक वस्तु लेना भूल गये थे, तो वह वस्तु तुम पुनः घर से खेत जोतने क्यों नहीं गये ? फिर आवश्यक वस्तु तुम अपने पुत्र को भेजकर भी तो मंगवा सकते थे। इसलिये जिस कारण से तुम मुझे देखकर वापिस लौटे, उसका स्पष्ट विवरण बताओ। किसी तरह का संकोच मत

करो। लगता है कि वहाँ से घर लौटने के पीछे तुम्हारे मन में कोई और बात थी जिसको तुम मेरे सामने प्रकट करने से सहम रहे हो।

महाराजा अधिक मधुरतापूर्वक कहते गये—भाई, तुम मुझे आत्मा के समान ही लग रहे हो। तुम स्वयं सोचो कि घर से आवश्यक वस्तु लाने का क्या तुम बहाना मात्र नहीं बना रहे हो ? तुम अपने भीतर की बात को मुझ से छिपाओ मत। तुम्हारे मन में शायद दंड का भय होगा लेकिन तुम यह नहीं सोचते कि एक झूठ बोलकर सत्य को छिपाने के लिए कितने झूठ बोलने पड़ते हैं फिर भी सत्य नहीं छिपता है। झूठ बोलने से जीवन ही बरबाद होता है।

चन्द्रसेन ने किसान को सत्य भाषण के लिये पूरी तरह आश्वस्त किया और समझाया—तुम तो धरती पर अपना पसीना बहा कर धान पैदा करते हो और सबका पालन करते हो। तुम्हारे तो मन में झूठ का ख्याल भी नहीं आना चाहिए। किसान के मुँह से तो सदा सत्य ही निकलना चाहिये। राजनेता ही अधिकतर ऐसा असत्य भाषण करते हैं। इसी कारण उनकी कथनी और करणी में एकरूपता मुश्किल से ही मिलती है। क्या तुम नहीं जानते कि जब जीवन में सत्य के टुकड़े किये जाते हैं तो सारा जीवन ही असत्य में डूब कर कलंकित हो जाता है। इसके सिवाय भी यदि तुम्हारे मन में राजदंड का भय होतो में उसे दूर कर देना चाहता हूँ। तुम सच—सच बात बता दो—चाहे वह कैसी भी होगी, तुम्हें किसी तरह का दंड नहीं दिया जायेगा।

किसान ने महाराजा की सारी बात बड़े ध्यान से सुनी। उसकी आत्मा भी जागृत थी। जब वह राजदण्ड के सम्बन्ध में आश्वस्त हो गया तो उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह महाराजा को सत्य बात ही बता देगा क्योंकि ऐसे दयावान राजा के सामने व्यर्थ ही झूठ बोलना उचित नहीं है।

किसान पढ़ा—लिखा नहीं था, किन्तु बुद्धिशाली था और शुद्ध हृदय वाला भी था।

कितना ही पढ़ा—लिखा विद्वान्, होशियार और चतुर व्यक्ति क्यों न हो, उसकी चतुराई काम नहीं आती, किन्तु बिना पढ़े लिखे, पर सहृदय व्यक्ति से अन्तर की बात खुलवा लेना ज्यादा मुश्किल नहीं होता है।

किसान सोचने लगा कि मैं सच्ची बात नहीं बताऊँगा तब भी महाराजा अपने गुप्तचरों से सच्ची बात का पता करा लेंगे इसलिये सच्ची बात का अब छिपाने में सार नहीं है।

महाराजा चन्द्रसेन के सामने भी एक समस्या पैदा हो गई—उनके मन के किसी कोने में छिपा बैठा चोर जैसे उचक—उचक कर मुंह निकाल रहा हो। किसान ने उनकी उलझन को बहुत बढ़ा दी थी और वे उसको सुलझा लेना चाहते थे बशर्ते कि उसका कारण स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया जाय।

किसान ने तब स्पष्ट रूप से सही बात कह देना ही उचित समझा। उसने कहा—राजन्, आप बुरा नहीं मानें तो मैं सत्य—सत्य निवेदन कर दूँ। राजा ने पुनः आश्वासन दिया, तब वह बोला—मैं अपने पुत्र व बैलों को लेकर खेत जोतने के लिये जा रहा था—वह मेरे परिवार के लिये पूरे वर्ष भर के निर्वाह का प्रश्न था और तभी आप सामने से पधार रहे थे। तब तक मुझे कोई भी अपने सामने नहीं मिला था अतः पहला पहला आपका सामना होने से मेरे मन में शकुन का विचार आ गया। आप यद्यपि प्रजापालक महाराजा हैं और आपका दर्शन देवदर्शन के समान माना गया है फिर भी शकुन के सम्बन्ध में एक विश्वास है कि यदि कोई पुत्रहीन सामने मिल जाय तो उसे अपशकुन के रूप में लिया जाता है। इसी विश्वास के कारण ही मैं भी उस समय वापिस घर लौट गया तथा उस दिन को व्यर्थ मानकर पुनः खेत जोत लूँगा तो अच्छी पैदावार संशय—पूर्ण ही रहेगी। महाराजा, आप तो जानते हैं कि खेती हमारे लिये प्राणों के समान है क्योंकि इसी के आधार पर सभी के जीवन का निर्वाह चलता है।

किसान कहता गया—महाराज, जैसे कोई व्यापारी कमाने के लिये परदेश जाता है तो प्रस्थान के समय शुभ शकुन देखता है, वैसे ही हम किसान भी वर्ष भर की पैदावार के निमित्त से जब खेत जोतने जाते हैं तो शुभ शकुन की प्रतीक्षा करते हैं। शकुन अच्छा होने पर हम कल्पना करते हैं कि पैदावार बहुत अच्छी होगी तथा हमारे परिवार का जीवन सुखी रहेगा। इसके विरुद्ध यदि उस समय अपशकुन हो जाय तो उसे हम इष्टकारी नहीं समझते और वैसी दशा में उस दिन को बेकार करके वापिस घर को लौट जाना ही उचित समझते हैं।

अग्रिम रूप से क्षमा याचना करते हुए किसान ने नम्रतापूर्वक कहा—मैं उस समय शकुन का विचार ही मेरे मस्तिष्क में यह उठा कि आप निःसन्तान हैं याने कि फलहीन। अतः फलहीन को सामने पाकर फल की आशा कैसे रखी जा सकती है ? फल से निराश होकर फल के लिये श्रम का श्रीगणेश करने के लिये फिर जाना निरर्थक ही था।

महाराजा द्वारा अभयदान देने के फलस्वरूप ही किसान उनके सामने अपने भीतर की बात स्पष्ट रूप से रख गया। महाराजा ने अपने ही विषय की अपितु निन्दात्मक पक्ष की बात भी ध्यान से सुनी। पहली बार यह मान्यता उनकी जानकारी में आई कि सन्तानहीन व्यक्ति का शुभ काम के लिये जाते हुए किसी के सामने पड़ जाना अपशकुन माना जाता है। इतनी कड़वी बात सुनकर भी वे रूष्ट नहीं हुए।

महाराजा की यह कैसी सहनशीलता थी ? आपके सामने यदि इस प्रकार का कोई प्रसंग आ जाय तो शायद उत्तेजना आए बिना न रहे। कहा जाता है कि काने को भी काना कहकर नहीं पुकारना चाहिए क्योंकि काने को भी काना पुकारा जाना अच्छा नहीं लगता है। किन्तु जो साधक सामायिक का अभ्यासी बन जाता है, वह सहनशीलता का भी धनी हो जाता है। जब तक समता का समरस महाराजा ने नहीं पिया था, तब तक वे ऐसी बात को—बात को तो क्या विचार तक को अपना अपमान समझते थे, लेकिन समभावी बनने के बाद किसान की ऐसी स्पष्ट बात मुख पर ही कही जाने के उपरान्त भी महाराजा शान्तचित्ती ही बने रहे। इस रूप में उनकी सामायिक का व्यावहारिक प्रभाव झलक रहा था।

समता से दूर मनुष्य जब तक ममता में ही उलझा रहता है तो उसे अपनी भौतिक कामनाओं के सम्बन्ध में प्रफुल्लता या खिन्नता का अनुभव होता है तथा मानापमान की भावना के साथ राग—द्वेष की प्रबलता प्रकट होती है। किन्तु जब सामायिक की नियमित साधना के साथ मन पर नियन्त्रण साधा जाता है तो भौतिक कामनाओं के सम्बन्ध का सम्पूर्ण व्यवहार ही तुच्छ लगने लगता है, बल्कि स्वयं उन कामनाओं के परित्याग का संकल्प बन जाता है। वैसी मनःस्थिति में न किसी का सम्मान मन को लुभाता है और न ही किसी के अपमान से विक्षुब्धता उत्पन्न होती है। चन्द्रसेन भी ऐसी समतामयी मनःस्थिति में विचरण कर रहे थे। आप भी

जरा सा अपने-अपने मन में ध्यान लें कि आप कितने वर्षों से बराबर सामायिक की साधना करते हुए चले आ रहे हैं ? किन्हीं को 40 तो किन्हीं को 50-60 वर्ष तक भी व्यतीत हो गये होंगे तो क्या कोई यह बतावेंगे कि मन में समता का समरस कितनी गहराई तक उतर गया है ? समभाव की स्थिति कितनी परिपुष्ट हुई है ? यह आपके ही चिन्तन का विषय है। आपका क्रम ऐसा समझ में आता है कि सामायिक करके आप उठे और दुकान पर पहुँचे। वहाँ आपको किसी मुनीम की भूल दिखाई दी तो उस समय में एक तरफ तो आपका मन कहेगा कि सामायिक करने के बाद क्रोध करना उचित नहीं है, किन्तु दूसरी ओर धन की हानि आपको असह्य लगती है और आप मुनीम को डाँटना-फटकारना शुरू कर देते हैं। इस बात से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आपकी सामायिक की साधना नष्ट हो-यह आपको सह्य हो जाता है लेकिन धन की छोटी सी हानि भी सही नहीं जाती, तो सोचिये की समता का समरस आपके अन्तःकरण में कितना उतरा है ? सामायिक का वास्तविक स्वरूप जब तक भीतर नहीं उतरेगा तब तक सांसारिकता के प्रति ममत्व भी कम नहीं होगा।

समझें कि कोई व्यक्ति गलती करता है, तो उसकी गलती का याने कि उससे बंधे कर्मों का फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा। फिर भी एक बात समझने लायक है। अगर वह व्यक्ति अपनी गलती को समझकर गलती के रूप में मंजूर करले और उसके लिये हार्दिक खेद प्रकट कर दे तो क्या उसके इस प्रायश्चित के पश्चात् भी गलती गलती के रूप में खड़ी रहेगी ? सामायिक की साधना का यह प्रभाव होता है कि व्यक्ति विवेक रखे और गलती नहीं करे। तदुपरान्त गलती हो भी जाय तो उसका प्रायश्चित कर ले। मानसिकता हर हालत में स्वस्थ रहे-यह सामायिक का साधक समझता है। महाराजा चन्द्रसेन भी सामायिक के साधक थे अतः किसान की स्पष्ट बात सुनकर भी उत्तेजित नहीं हुए और न ही उन्होंने किसी प्रकार से अपना अपमान महसूस किया। उनकी स्वस्थ मानसिकता तब भी स्वस्थ ही बनी रही।

महाराजा ने किसान से कहा-भाई, कैसी भी हो लेकिन आखिर तुमने सच्ची बात कह दी जिससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह अच्छा किया कि इस बात को तुमने जगह-जगह नहीं कही और मेरे ही मुंह पर

कहदी। पुत्रहीन होना तो मेरे हाथ की बात नहीं है—यह तो कर्मों के अधीन है। जब तक निकाचित कर्मों का क्षय नहीं होता है तब तक मनुष्य को इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है। किन्तु तुम मेरे कारण उस दिन खेत जोतने और बीज बोने के लिए नहीं जा सके, इस कारण उतना अन्न तुम मेरे भण्डार से प्राप्त कर लो जितनी तुम्हारी वर्ष भर की पैदावार होती।

किसान तो महाराजा के सद्व्यवहार को देखकर दंग रह गया। वह तो उस समय नहीं समझ पाया किन्तु ऐसा सद्व्यवहार महाराजा की सामायिक की साधना का सुफल था।

महाराजा के आदेश से किसान को वांछित अन्न की मात्रा भण्डार से दिला दी गई। किसान महाराजा की भूरि-भूरि प्रशंस करता हुआ तथा प्रसन्न होता हुआ अपने घर चला गया।

चन्द्रसेन जब एकान्त में पहुँचे तो किसान की कही हुई बात ही उनके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगी। वे समझ चुके थे कि सन्तान प्राप्ति कर्मों के अधीन है अतः ममत्त्वपूर्ण चिन्ता भी वे छोड़ चुके थे। परन्तु जनता में उनके निःसन्तान होने से सम्बन्धित जो भ्रान्ति फैली हुई थी उसकी जानकारी उन्हें उस किसान के माध्यम से हुई थी। उनके दिल को यह समझ कर चोट भी पहुँची थी कि राजा तो दर्शनीय होता है लेकिन वही पुत्रहीन होने के कारण अदर्शनीय हो जाता है। महाराजा ने किसान की बात पर बड़ी गहराई से विचार किया और इस निर्णय पर पहुँचे कि मेरे विषय में जनता में ऐसी भ्रान्ति का फैली रहना और तब भी मेरा उसी जनता के बीच में रहना—ये दोनों बातें एक साथ नहीं चलेगी।

अपने लिये अपशकुनता की भ्रान्ति से महाराजा का चित्त दुःखी होने लगा। वे सोचने लगे कि यों जनता में उनकी सेवाओं का बहुत ही प्रेम और सम्मान है लेकिन यह भ्रान्ति ऐसी है जो सोने की थाली में तांबे की मेख के समान महसूस होती है। मेरे पुत्र क्यों नहीं है—इसका कारण तो ज्ञानीजन ही सोच सकते हैं किन्तु निःसन्तान होने से यह अपमानपूर्ण जो स्थिति है, वह असह्य है। महाराजा को ऐसा लगा कि इस स्थिति के साथ जीवित रहना ही श्रेयस्कर नहीं है।

ऐसे खेदकारी विचारों के बीच में ही सामायिक से सधा हुआ उनका मन आन्तरिक चेतना की दृष्टि को समक्ष प्रस्तुत करते हुए बोल पड़ा—अहो,

तुम ऐसी क्या विचारणा कर रहे हो ? तुमने सामायिक का रस पाया है—ऐसे निराशाजनक भाव तुम्हारे अन्तःकरण में उठने ही नहीं चाहिये। मन ने तभी महाराजा के खेदकारी विचारों की लगाम खींच ली। महाराजा पुनः अपने भीतर स्थित हुए और सोचने लगे कि जनता के मन में मेरे प्रति कैसी भी भावना हो—किन्तु मेरा तो कर्त्तव्य यही है कि मैं उसे शान्तिपूर्वक सहन करूँ और जनहित के कार्यों में अपने उत्साह को किसी प्रकार से घटाऊँ नहीं।

तभी जैसे महाराजा के अन्तःकरण में एक प्रकाश रेखा सी चमकी और उनके मन में एक नये पुरुषार्थ का संचार होने लगा, जिसने उनके विचारों की सारी खिन्नता धो डाली। उन्हें अपनी उत्साहप्रद भावनाओं की एक ताजगी सी महसूस हुई और वे वहाँ से उठ खड़े हुए। किसान के कथन ने उनके दिल पर जो एक चोट लगाई थी, वह पलभर में ही मिट गई। उनका हृदय हल्का ही नहीं हुआ, बल्कि एक नये पुरुषार्थ की उमंग से आह्लादित हो उठा। समता की सहृदयता एवं मधुरता उनकी मुखाकृति पर उभर आई।

समभावी साधक पुरुषार्थ में रत रहता है किन्तु पुरुषार्थ की फल प्राप्ति को लेकर अपने मन को उद्विग्न नहीं बनाता है। ऐसा पुरुषार्थ भी अन्ततः निष्फल नहीं रहता, किन्तु जब तक सूर्य का आतप धरती के कण—कण को तपा नहीं देता है, तब तक वर्षा काल की बौछारें भी शीतलता प्रदान नहीं करती हैं।



4

समता की साधना में जिस शक्ति-नियोजन से जीवन सुस्थिर होता है, वही शक्ति सच्चा पुरुषार्थ है। कामना पूर्ति की दौड़ में जो शक्ति चिन्तातुरता पैदा करे-वह सत्पुरुषार्थ नहीं कहलाता। सत्पुरुषार्थी सदैव इसी सत्य का चिन्तन करता है कि उसका धर्माधार सुदृढ़ बना रहे और इसी तथ्य की सतर्कता बरतता है कि उसका वह आधार उसकी किसी भी वृत्ति अथवा प्रवृत्ति से हिले नहीं। सन्तानहीन होने के कारण अपशकुन होने की बात ने महाराजा चन्द्रसेन के मन को कुछ समय के लिये कष्ट पहुँचाया किन्तु उन्होंने शीघ्र ही उस मनः स्थिति को नियन्त्रण में ले लिया। उन्होंने निश्चय किया कि वे चिन्ता कभी नहीं करेंगे लेकिन उनका वह पुरुषार्थ भी सत्पुरुषार्थ की सीमा में ही होगा।

वस्तुतः जो अपने जीवन को समता पर आधारित करके धर्ममय बना लेता है, उसका चिन्तन भी सदा ही शुभ होता है। जैसे विचार बनते हैं, वैसी ही मुंह से वाणी निकलती है तथा वाणी के अनुसार ही आचरण का स्वरूप ढलता है। मन, वाणी और कर्म की एकरूपता मनुष्य के सबसे बड़े सत्पुरुषार्थ के रूप में प्रकट होती है। जीवन की जब ये तीनों शक्तियाँ एकाकार हो जाती हैं, तब वैसे जीवन में न तो बाह्य पदार्थों की कामना ही ठहरती है और न ही वैसी कामनाओं के लिये चिन्ता करने का प्रश्न उत्पन्न होता है। वास्तव में तब बाह्य पदार्थों के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। तब वे बाह्य पदार्थ स्वतः ही उस जीवन के चरणों में लोटपोट हो जाते हैं। कामनाओं के साथ जो उन बाह्य पदार्थों को पकड़ना चाहता है, उससे वे दूर भाग जाते हैं किन्तु निष्काम बनकर जो उनसे अपनी आसक्ति हटा लेता है, वे सभी बाह्य पदार्थ उसके पीछे-पीछे

चलने लगते हैं। महाराजा चन्द्रसेन भी इसी जीवन शैली में ढल रहे थे कि कामनाओं के पीछे अपनी जीवनी शक्ति विनष्ट नहीं की जानी चाहिये। वे यह धार चुके थे कि सत्पुरुषार्थ की लीक पर चलने से ही जीवन का विकास अविरल गति से आगे बढ़ता जाता है।

उनकी आन्तरात्मा ने चन्द्रसेन महाराजा को प्रबुद्ध बनाया क्योंकि उन्होंने अपने जीवन की आन्तरिक वृत्तियों में सम-भावना का समुचित विकास कर लिया था। समता जब विकसित हो जाती है तो वह जीवन की गति के लिये प्रमुख सम्बल भी बन जाती है। एक समता के साधक का मन जब भी थोड़ा ऊपर-नीचे होता है तो वह अपनी आन्तरिकता में तन्मय हो जाता है जिससे आई हुई सामान्य सी दुर्बलता भी तत्काल दूर हो जाती है। यह स्वरूप-तन्मयता कहलाती है जिस अवस्था में साधक अपने ध्यान को अपने भीतर में केन्द्रस्थ कर लेता है। तन्मयता के अभ्यास के साथ सम्पूर्ण जीवन का संचरण ही स्वरूपाभिमुखी होकर चलता है। इस प्रकार की उच्च कोटि की साधना की सफलता के समम देवता भी उस साधक के समक्ष आकर नत मस्तक हो जाते हैं। उस साधक को तब किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती है। चन्द्रसेन भी ऐसी ही साधना के पथ पर अग्रगामी हो रहे थे और अपने स्वरूप बोध के साथ सांसारिकता की चिन्ताओं से अलग हट रहे थे।

संसार में ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अपने जीवन में धर्म को कोई स्थान नहीं देते हैं—यहाँ तक कि समता-साधना के लिये वैचारिक पुरुषार्थ भी नहीं करते हैं, उनका सारा पुरुषार्थ मात्र सांसारिक कामनाओं की पूर्ति में ही लगता है जिसे कुपुरुषार्थ के सिवाय और क्या कह सकते हैं? ऐसे व्यक्ति धर्म में तन्मय तो होते ही नहीं हैं। वे सदा भांति-भांति की चिन्ताओं से घिरे रहते हैं। चाहे शारीरिक हो या मानसिक पुरुषार्थ का क्रम तो अबाध गति से चलता रहता है। जो प्रबुद्ध बनकर उस पुरुषार्थ के क्रम को सत् श्रेणी का बना लेते हैं, वे तो अपने जीवन में समता की सफलता दिखा देते हैं किन्तु जो अपने पुरुषार्थ पर नियन्त्रण स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं, कुपुरुषार्थ उन्हें नियन्त्रित करता रहता है और जैसे कुपुरुषार्थी व्यक्ति अपने दुर्लभ जीवन को निरर्थक बना लेते हैं। जैसे दिल की धड़कन बन्द नहीं होती, वैसे ही पुरुषार्थ की गति भी निरन्तर चलती रहती है। व्यक्ति का धर्ममय विवेक ही उस गतिमान पुरुषार्थ को जीवन-विकास की

दिशा में मोड़ कर अपनी लक्ष्य सिद्ध कर सकता है। चन्द्रसेन का पुरुषार्थ भी तब तक सत्पुषार्थ का रूप ले चुका था और जरा सा भटकने की दशा में ही उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें पुनः मार्गस्थ कर दिया।

अन्तर्चेतना ने महाराजा को परामर्श दिया कि समता धर्म से रंगे हुए जीवन में किसी भी प्रकार की चिन्ता का कोई स्थान नहीं होता है और कभी कोई चिन्ता बलात् भीतर घुस आई हो तो वह विवेकधारी जीवन उसके निवारण के उपाय भी खोज ही लेता है। इसके साथ ही महाराजा के मन में उनकी वर्तमान चिन्ता के निवारण का एक उपाय भी सूझ आया। हकीकत में वह चिन्ता भी महाराजा की अपनी चिन्ता नहीं थी, वे तो अपने साधक जीवन में सभी चिन्ताओं को समाप्त कर चुके थे किन्तु वे जनता तथा मंत्री की चिन्ता की ओर ध्यान दे रहे थे कि राज्य का भावी शासक भी उनकी तरह ही प्रजाहितकारी तथा जनप्रिय हो। जनता इस रूप में सोचती है और अपनी भावना को महाराजा के सामने व्यक्त करती है तो जनता की ओर से महाराजा का भी सत्पुरुषार्थ करने का अवश्य ही कर्तव्य बनता है। इसी दृष्टि से उन्हें उपाय सूझा कि वे देव को याद करें और उससे इस चिन्ता-निवारण के सम्बन्ध में मार्गदर्शन प्राप्त करें।

महाराजा ने विचार किया कि देव अवधिज्ञान के धारक होते हैं अतः यह तथ्य बता सकते हैं कि उनके यहाँ पुत्र का जन्म होगा अथवा नहीं और होगा तो कब तक ? यदि देव अपने ज्ञान में इस भावी बात को देखकर बता देगा तो उस सूचना को वे प्रामाणिकता के तौर पर अपनी जनता को बताकर सन्तुष्ट कर सकेंगे।

देवता को आह्वान करने का निश्चय बनते ही महाराजा उठ खड़े हुए। वे जानते थे कि इसके लिये तेले की तपस्या करनी होगी, क्योंकि इस तपस्या से देवता को उधर आने का संकेत मिलता है। अतः महाराजा अपने राजभवन के उस भाग में गये जिसे उन्होंने पौषधशाला का रूप दे रखा था। यह स्थान एकान्त, शान्त तथा धर्म साधना के अनुकूल था। उस पौषधशाला में जाकर वे तीन दिन के तेले में बैठ गये। वह तपस्या आध्यात्मिक शुद्धि हेतु नहीं की जा रही थी, बल्कि वांछित देवता को आमंत्रित करने के लिये थी।

किसी के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या शास्त्रकारों की

व्याख्या की कसौटी पर यह तपस्या खरी उतरती है ? शास्त्रकारों ने कहा है कि तपस्या इस लोक के लिये नहीं करनी चाहिये, परलोक के लिये नहीं करनी चाहिये तथा यश कीर्ति के लिये नहीं करनी चाहिये अपितु केवल अपनी आत्मशुद्धि के लिये करनी चाहिये। जब वीतराग देवों की तपस्या के सम्बन्ध में ऐसी आज्ञा है तो देवता का आह्वान करने के लिये तेले की तपस्या क्यों की जाती है ? और देवता का आह्वान भी यह तथ्य जानने के लिये कि पुत्र होगा या नहीं ? इस लौकिक कामना के साथ यह की जाने वाली तेले की तपस्या क्या इस लोक के लिये हुई या नहीं ? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है जो तपस्या के स्वरूप का चिन्तन करने के समय उठ सकता है, किन्तु इसका समाधान भी गहराई से समझना चाहिये।

ऐसी सम्यक् दृष्टि वाली आत्माएँ, जिन्होंने अपना अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का निर्धारित कर लिया है किन्तु जो अभी गृहस्थाश्रम में स्थित हैं, उन आत्माओं के लिये गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का पालन करना भी आवश्यक होता है। ऐसे सदगृस्थाश्रम के समक्ष जब कोई विपत्ति आ जाती है तो उस दशा में उसे अपने से किसी अधिक शक्तिशाली का सहारा भी लेना पड़ता है। वर्तमान की परिपाटी में यों समझिये कि कोई सम्यक्दृष्टि सदगृस्थ किसी कायदे-कानून के चक्कर में फंस जाय तो उसे वकील का सहारा जिस रूप में लेना पड़ता है, उसी रूप में महाराजा चन्द्रसेन ने राज्यगत उस विपत्ति में अपने से अधिक शक्तिशाली देवता का सहारा पाने के लिये उसका आह्वान किया तो वैसा करके उन्होंने अपने गृहस्थाश्रम एवं राज्य के उत्तरदायित्व के प्रति अपने एक कर्तव्य का ही निर्वाह किया।

महाराजा चन्द्रसेन एक सदगृस्थ तथा एक उत्तरदायी शासक का कार्यभार भी निबाहते थे तो एक साधक के रूप में धर्म साधना भी तन्मयतापूर्वक करते थे। यह तेले की तपस्या उनकी पहली हैसियत में की गई थी, साधक की हैसियत में नहीं। उस तेले को उन्होंने धर्म का कार्य नहीं समझा, अतः उनकी सम्यक्दृष्टि में कोई दोष नहीं आया।

यह भी पूछा जा सकता है कि जब महाराजा सांसारिक कार्य हेतु देवता का आह्वान करने का तेला कर रहे थे तो वे धर्मासाधना की जगह पौषधशाला में क्यों बैठे ? इसका समाधान इस तरह लिया जा सकता है

कि सम्यक्दृष्टि सद्गृस्थ भी जब लौकिक व्यवहार के लिये किसी शक्ति से सहायता लेना चाहता है तो जो वीतरागी आत्माओं में श्रद्धा और आस्था रखने वाले देवता होते हैं, उनका सम्बल लिया जा सकता है तथा उनके आह्वान हेतु किया जाने वाला तेल का तप भी धर्माराधना के स्थान पर किया जा सकता है। उस सद्गृस्थ की आन्तरिक भावना मोक्षप्राप्ति के लक्ष्य की ओर ही लगी हुई होती है और इस कारण वह ऐसे किसी देवता का आह्वान नहीं करता जो पड़ती हो। जहाँ धूप, लोबान, अगरबत्ती आदि तक जलाकर हिंसात्मक कार्य किया जाता हो, वैसे देवता का वह सम्यक्दृष्टि सद्गृस्थ कभी आह्वान नहीं करेगा।

कई लोग कहते हैं कि हमारे पूर्वज मर कर देवता बने हैं और वे उनको पूजते हैं या उनकी रात जागते हैं। किन्तु क्या वे वास्तविकता का पता लगाते हैं? जब तक कोई देवता आपकी परीक्षा या आपके आह्वान के बाद पूछताछ पर खरा नहीं उतरे तब तक यह नहीं समझना चाहिये कि वे पूर्वज देव योनि में गये हैं। देवता का आह्वान करना है तो उसमें किसी हिंसाभरी अर्चना का कोई स्थान नहीं होना चाहिये। देव को बुलाने के लिये तेल की तपस्या हो तो तीन दिन के लिये मन की एकाग्रता भी आवश्यक होती है।

महाराजा पौषधशाला में जाकर बैठे और तेल की तपस्या के साथ तीन दिन तक मन की एकाग्रता भी साधते रहे। उनके उस प्रकार के श्रेष्ठ आह्वान का परिणाम भी सामने आ गया।

तेल की तपस्या की पूर्ति के साथ ही महाराजा ने जिस देवता का आह्वान किया था, वह देवता उनके समक्ष उपस्थित हुआ। उसने पूछा कि उसको किस प्रयोजन से बुलाया गया है? तब महाराजा ने शालीनता के साथ उत्तर दिया— हे देव, मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहता था किन्तु जनता मुझे बार बार कहती और अपने राज्य का भविष्य पूछती रही है, इस कारण आपका आह्वान अनिवार्य हो गया। स्थिति यह है कि मेरे कोई पुत्र नहीं है और जनता इस तथ्य से आशंकित है कि मेरे बाद उनको इस राज्य का न जाने कौन और कैसा शासक प्राप्त होगा? जनता मेरी सेवाओं से प्रसन्न है तथा चाहती है कि उसका भावी शासक भी मेरे जैसा ही हो और ऐसा चूंकि मेरा अपना पुत्र ही हो सकता है, आपसे यह जानकारी लेने की

नितान्त आवश्यकता हो गई कि भविष्य में मेरे पुत्र होगा अथवा नहीं और होगा तो कब तक होगा ?

महाराजा देवता को कहते रहे—मैं तो सम्यक् दृष्टि होकर समता की साधना में निरत हूँ अतः पुत्र की कामना भी मेरे लिये चिन्ता का कोई कारण नहीं है। यह जानकारी भी मैं प्रजा की भावना के अनुसार तथा प्रजा के हित की दृष्टि से ही लेना चाहता हूँ। अतः आपको कष्ट देने का यही अभिप्राय है कि प्रजा की भावना पूर्ण होगी अथवा नहीं ? आप इस तथ्य को अपने अवधि ज्ञान में देखकर कृपया खुलासा कीजिये जिसमें यह भी बताइये कि मेरा होने वाला पुत्र क्या मेरे आत्मीय गुणों के अनुरूप ही होगा ?

तब देवता उत्तर देने लगा—राजन्, मैं देव-शक्ति रखता हूँ फिर भी यह सामर्थ्य देवों में नहीं होता कि जिसके कर्म फलानुसार पुत्र होने ही वाला नहीं हो, उस को भी देवता पुत्र दे दे। अन्य देवताओं के समान मैं भी अपने अवधि ज्ञान की सहायता से केवल इतना ही बता सकता हूँ कि पुत्र होने के सम्बन्ध में आपके कर्मों की भावी स्थिति क्या है ? एक बात और कह दूँ कि ये कर्म भी धर्मारोधना से क्षय होते हैं, कारण धर्म एक कल्पवृक्ष के समान होता है। कर्मों के क्षय के साथ भी नवीन प्राप्ति की सम्भावना का योग बनता है। शुभ योगों की प्राप्ति को रोकने वाले कर्मों के टूटने से ही शुभ परिणाम सामने आते हैं।

देवता ने आगे कहा—महाराज, आप पुत्र प्राप्ति के लिये चिन्ता नहीं करते हैं— यही एक धर्मारोधक के लिये उचित मनः स्थिति है। यदि चिन्ता आती है तो समझना चाहिये कि उसकी धर्मारोधना में कहीं न कहीं कमी है। शुद्ध मन से तन्मयतापूर्वक धर्म की आराधना की जाती है तो विविध प्रकार के कर्म बन्धन भी टूटते हैं। अन्तराय कर्मों की स्थिति भी इससे अनुकूल बनती है। आपने अच्छा मार्ग अपनाया है और यह मार्ग आपके लिये अवश्य ही श्रेयकारी सिद्ध होगा।

देवता कहता गया—हे राजन्, आप इसी प्रकार धर्म की आराधना करते रहिये और मन को चिन्तित मत बनाइये जिससे अन्तराय कर्म अवश्य ही क्षय होंगे और वांछित फल की प्राप्ति होगी। आवश्यक है कि आप श्रेष्ठ मत का निरन्तर अनुसरण करते रहें, कहीं भी मिथ्यात्व को बीच में न आने दें तथा धर्म पर सुदृढ़ आस्था रखकर चलते रहें।

अन्त में देवता ने अपनी ज्ञानपूर्ण भविष्यवाणी कर ही दी। उसने कहा— हे राजन्, मैंने अपने अवधि ज्ञान में स्पष्ट रूप से देख लिया है कि आपको अवश्य ही सन्तान—पुत्र प्राप्ति होगी। पुत्र नहीं होने की तो कोई स्थिति है ही नहीं। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिये कौनसे शुभ कार्य करने हैं, कौनसा पुरुषार्थ आजमाना है तथा किस प्रकार की साधना साधनी है— इसका स्पष्टीकरण मैं आपको कर देना चाहता हूँ।

देवता ने भलामण दी—हे राजा, आपने अपना जीवन ऊँचा उठा लिया है किन्तु एक शासक की दृष्टि से यह भी आपका ही कर्तव्य बनता है कि आप सारी जनता के जीवन को भी ऊपर उठावें। जनता के स्वस्थ जीवन का आधार तोड़ने वाले होते हैं कुव्यसन, अतः आप ध्यान देकर जन जीवन में फैलने वाले कुव्यसनों को समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान करें। इन कुव्यवसनों के माध्यम से ही जन जीवन में विकारों की वृद्धि होती है तथा धीरे—धीरे जनता का जीवन अपार दुःखों से भर जाता है।

एक नौका में कई लोग सवार हों और उनमें से केवल कुछ ही अगर नशे में धुत हो जायें तथा उत्पात मचाने लगें तो क्या वे सारी नौका को खतरे में डालेंगे अथवा नहीं ? आज उन्नत समाज के सदस्य कहलाने के बावजूद क्या कई लोगों में शराब, गांजा, बीड़ी, सिगरेट आदि की बुरी लतें बढ़ नहीं रही हैं ? यदि ऐसा है तो क्या ऐसे कुछ लोगों के दुष्कृत्यों से भी सारा समाज प्रतिष्ठा नहीं खोयेगा ? यह सभी का कर्तव्य है कि अपने बीच कहीं भी बढ़ने वाली बुरी लतों को रोका जाना चाहिये तथा संस्कारहीन लोगों में नये उन्नत संस्कारों का बीजारोपण करना चाहिये। श्रेष्ठ संस्कारों से ही मानव जीवन का विकास होता है तथा नई आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ प्राप्त की जा सकती है आध्यात्मिक महापुरुषों के चरणों में देवयोनि के देवता तक अपना मस्तक झुकाते हैं। उनका यह वन्दन मात्र शरीर पिंड को नहीं होता है, बल्कि शरीर पिंड में उद्भूत होने वाली आध्यात्मिक साधना को होता है। देव भी मानव शरीर की अर्चना करें उसके लिये शरीर की सुन्दरता नहीं, आत्मा की सुन्दरता प्रकट होनी चाहिये। आन्तरिकता जब शुद्ध, सशक्त तथा स्वरूपवान् बन जाती है तब उसकी सेवा और सहायता के लिये देवता भी हाथ बांधे खड़े रहते हैं।

तब देव ने राजा को यह कहकर प्रेरणा दी है कि हे राजन्, आप

सबके साथ अपनी आत्मीय भावना को परिपुष्ट बनाते रहें और अपने आन्तरिक सद्गुणों में वृद्धि करते रहें। क्योंकि पिता के जीवन में विकसित हो रहे सद्गुणों का प्रवेश और पोषण भी उसके पुत्र के उभरते हुए जीवन में होता है। पुत्र को पिता अपनी आत्मा के तुल्य समझता है तो पुत्र भी पिता को सम्मान की दृष्टि से देखता है। यदि पिता पुत्र को नीची भावना से देखे तो पुत्र का उत्थाद कठिन हो जाता है। पारस्परिक उच्च भावनाओं के रहने से पिता की जीवन विकास की विरासत समुचित रूप से पुत्र को प्राप्त होती है तथा पुत्र का जीवन विकास भी पिता के विकास के अनुरूप बनता है। राजा के लिये उसकी जनता भी पुत्र के ही समान होती है अतः जनता के सार्वजनिक जीवन में भी सुसंस्कारों का विकास हो, इस दिशा में भी आप सदैव सतर्क एवं प्रयत्नशील रहें।

देवता तो चन्द्रसेन महाराजा को गुणशील बनने की प्रेरणा दे रहा था किन्तु क्या वर्तमान में सभी लोगों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे अपनी पूरी समाज के क्रियाकलापों पर अपनी नजर दौड़ावें तथा उनमें ऊँची-नीची परिस्थितियाँ पैदा हो रही हों तो उनको सुधारने की प्राणपण से चेष्टा करें ? किस तरह की बातें स्वस्थ सामाजिक धरातल के अनुकूल हैं और कौनसी प्रतिकूल बातें लोगों के आचरण में स्थान पा रही हैं— इस पर सभी को गहरा चिन्तन करना चाहिये और प्रतिकूल बातों को मिटाकर अपने सामाजिक दायित्व की पूर्ति करनी चाहिये। आज वृद्ध जन समझते हैं कि युवकों में आवश्यक सत् चेतना का विकास नहीं हो रहा है तो क्या वृद्ध जन यह भी सोचते हैं कि ऐसा किन कारणों से नहीं हो रहा है तथा युवा चेतना के सच्चे विकास के लिये क्या कार्य किये जाने चाहिये ? केवल आलोचना से कार्य नहीं होता है— अपने स्नेह और सहयोग से कमियाँ दूर की जानी चाहिये तथा पूरे समाज में श्रेष्ठ संस्कारों का उन्नतिकारक वातावरण बनाना चाहिये।

गांधीजी के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी बात मनवाने की कला जानते थे। वे नवयुवकों पर अपनी बात थोपते नहीं थे, बल्कि समस्या का विवरण बताकर वे पूछते थे कि उनका क्या समाधान है ? जब नवयुवक कह चुकते और अपने समाधान से उन्हें भी सन्तोष नहीं होता, तब गांधीजी अपना समाधान बताते, जिसे नवयुवक प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते। गांधीजी अन्दर की दृष्टि से देखते थे तथा सबको साथ लेकर चलने का

उपक्रम करते थे। उनकी इस कला का ऐसा अच्छा असर पड़ा कि बाद के दिनों में जब वे कोई राय देते तो बिना नून नच किये उसे बड़े से बड़ा नेता भी मान लेता था। पं. नेहरू भी कहा करते थे कि विरोध की कई बातें वे सोच कर गांधीजी के पास जाते थे मगर उनके सामने जाने के बाद विरोध करने की उनकी इच्छा ही नहीं होती थी और वे गांधीजी के सुझावों को यथावत् मान लिया करते थे। सामने वाले को शान्ति से सुनने तथा उसका विचार-भण्डार खाली हो तब तक प्रतीक्षा करने के बाद उसे बड़े लोग अपने सुझाव बतावें तो वे प्रभावशाली ढंग से उनके लिये ग्राह्य बन जाते हैं। ऐसी कला धार्मिक, सामाजिक या राष्ट्रीय क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों में आनी चाहिये क्योंकि इसके आधार पर अधिक से अधिक लोगों को अपने साथ लेकर चला जा सकता है और इस तरह संगठन को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

जिन भाई-बहिनों ने अभी ही रतलाम में सम्पन्न हुए पच्चीस भागवती दीक्षाओं के प्रसंग को देखा होगा, उनका ध्यान वहाँ की व्यवस्था की तरफ गया होगा। किस प्रकार बुजुर्गों तथा युवकों ने मिलकर अवसर को सफल बनाया—वह एक सराहनीय बात थी, किन्तु दूसरी बात और भी अधिक सराहनीय रही कि सभी मान्यताओं वाले हिन्दुओं तथा मुसलमानों तक ने जी जान से सहयोग दिया। यह पी.सी. चौपड़ा साहब का कुशल किन्तु लचीला व्यक्तित्व था कि वे इतने बड़े समाज को अपने साथ लेकर उस प्रसंग को प्रभावशाली बना सके। जनता और नेता के बीच ऐसा ही सौहार्दमय सम्बन्ध हो तभी संगठनात्मक कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

महाराजा चन्द्रसेन को भी देवता ने यही मुख्य भलामण दी कि वे जनता के साथ इस तरह प्रगाढ़ सम्बन्ध बनावें कि जनता भी कुव्यसनों से मुक्त होकर आदर्श जीवन जीने की कला सीखने लगे। राजा और प्रजा जब आत्मीयता की तरलता में डूब कर साथ-साथ चलते हैं तो उस राज्य का उत्थान भी आसान हो जाता है। केवल मृत्यु के मुंह से किसी को कोई बचा लेता है तो वह उसके प्रति जीवन भर के लिये आभारी बन जाता है। किन्तु कोई यदि किसी के जीवन को विकारों में बरबाद हो जाने से बचाकर उसे आध्यात्मिक आदर्शों की तरफ मोड़ देता है तो वह आभार कितना

अमूल्य होता है ? इसी तरह जो अभयदान देता है तो वह उसके जीवन को सुख शान्ति से परिपूरित बना देता है और उसका वह ऋण भी अपूर्व होता है ।

देव ने महाराजा चन्द्रसेन से इसी रूप में जनता के जीवन को उन्नत बनाने की सीख दी । यही नहीं, देव ने आगे महाराजा को अपने सत्पुरुषार्थ की क्या विधि अपनानी चाहिये, उसका भी विस्तार से विवरण दिया ।

सत्पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता, क्योंकि उसमें विस्तृत हित साधना का भाव रहता है जो अपनी स्वार्थभरी कामनाओं की पूर्ति के लिये सारा पुरुषार्थ जुटाना चाहते हैं, वे सत्पुरुषार्थी नहीं होते । चन्द्रसेन का वह सत्पुरुषार्थ अब फलीभूत होने जा रहा था ।



1

महाराजा चन्द्रसेन का सत्पुरुषार्थ अब प्रतिफलित होने जा रहा था। महाराजा का उत्तराधिकारी उतना ही सद्गुणी, जन-हितकारी एवं लोकप्रिय हो-ऐसी जनता की भावना साकार स्वरूप ग्रहण करने की ओर उन्मुख हो रही थी। देव वह विधि बता रहा था जिसका अनुपालन करने के पश्चात् चन्द्रसेन की झोली पुत्ररत्न से भरने वाली थी। अध्यवसाय शुद्ध लक्ष्य को लेकर चले तो वह कभी भी विफल नहीं होता है। ये राजा सामायिक की साधना कर रहे थे जिसमें उनकी अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। पटरानी की प्रेरणा और सन्तों की समीपता ने इनके जीवन में जो आमूलचूल परिवर्तन कर दिया था, उस का यह सुफल था कि उनका लक्ष्य शुद्ध था तो मार्ग भी शुद्ध और समतापूर्ण। इस मार्ग पर जो उनका अध्यवसाय आरम्भ हुआ तो उसकी सफलता के लिये देवता का सहयोग भी उन्हें प्राप्त हो गया।

देवता ने आश्वस्त करते हुए महाराजा को कहा कि उनको पुत्ररत्न की अवश्य ही प्राप्ति होगी तो उनके मन में सात्विक हर्ष की लहर दौड़ गई। क्योंकि उन्हें अब जनता को उसकी भावना की सम्पूर्ति का संवाद सुनाने का शुभ अवसर प्राप्त हो जायगा। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका राज्य उनके बाद भी सुव्यवस्थित रीति से चले और उनकी प्रजा श्रेष्ठ संस्कारों से मण्डित होकर सुखी एवं समृद्ध रहे।

तब देवता ने महाराजा के सामने उस अनुष्ठान का उल्लेख करना आरम्भ किया जिसे पुत्र प्राप्ति के पहले उन्हें सम्पन्न करना था। देवता कहने लगा-महाराज, मैं जो आपको अनुष्ठान बता रहा हूँ आपको एकाग्रता एवं निष्ठा के साथ सम्पन्न करना होगा। इस अवधि में किसी भी

क्षण आपके मन में धर्म के प्रति विमुखता नहीं आनी चाहिये—चाहे आपके सामने उपस्थित भीषण संकट आपके के चित्त को चलायमान करने लगे। इस अनुष्ठान की सम्यक् सम्पूर्ति के बाद आपको सम्पूर्ण जीवन में मंगल ही मंगल बरतेगा। अनुष्ठान की इस अवधि में भी आपके सामने कष्ट और संकट आवेंगे किन्तु यदि आप समभाव के साथ सुदृढ़ता अपनाये हुए रहेंगे तो निश्चय ही सफलता आपके चरण चूमेंगी। उस विजयश्री के बाद चहुं ओर आनन्द ही आनन्द होगा।

देवता कहता रहा—राजन्, आप अब दक्षिण दिशा में प्रयाण करें। इस दिशा में करीब पांच सौ मील चलने के बाद आपको चम्पा नाम का एक बगीचा मिलेगा। अपनी इस यात्रा में आप पूर्ण निर्भीकता रखें। जहाँ भी किसी कारण मन डाँवाडोल होने लगे तो सामायिक की आराधना आरम्भ कर दें, ताकि समता के साथ आपको धैर्य और गांभीर्य प्राप्त हो जाय। सामायिक के सार को धारणा करते हुए चलेंगे तो आपको किसी तरह की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

देवता का निर्देश चल रहा था, वह बोला—हे राजन्, आप नवकार मंत्र की शरण लेकर आगे बढ़ें। आपका इतने घने जंगलों में जाने का पहले काम नहीं पड़ा होगा लेकिन आपको यह चम्पा नाम का जो बगीचा मिलेगा, वह बहुत ही रमणीय है। झूमते हुए हरे भरे वृक्ष, खिलते हुए रंग—बिरंगे फूल और प्रकृति के मनोहारी दृश्य किसी के भी मन को सहज ही में उलझाने वाले हैं। उस बगीचे में आपको शतदल नामक एक पुष्प मिलेगा। उसकी सुन्दरता को देखकर किसी का भी उस पर मोहित हो जाना आसान है। इस मोह में सांसारिक वृत्तियों वाले मनुष्य तो तुरन्त फंस जाते हैं क्योंकि रंगों का आकर्षण उन्हें उलझा देता है। किन्तु आपके मन में उन दृश्यों को देखकर भी समता—भाव बना रहना चाहिये। आपके लिये ऐसी दृढ़ता को बनाये रखना कठिन भी नहीं होगा, क्योंकि आप तो सामायिक के स्थिर साधक हैं। कहीं भी आकर्षण में कतई नहीं फंसे, क्योंकि जरा सी भी कमजोरी आई तो आगे बढ़ना रुक जायगा।

“राजन्, उन सुन्दर पुष्पों के चारों ओर भंवरे मंडराते हुए आपको दिखाई देंगे जो उन पुष्पों से रस ग्रहण करते हुए मिलेंगे। शतदल कमल का रस भंवरो को बहुत प्रिय होता है। भंवरे उससे विलग नहीं होना चाहते

हैं। वहाँ पर आपको सूर्यमुखी पुष्प भी दिखाई देगा जो सूर्य की ओर ही अभिमुख रहता है तथा सूर्य के अस्त हो जाने पर कुम्हला जाता है। भंवरा बहुत ही रस लोलुप होता है—इतना रस लोलुप कि अपने प्राणों की रक्षा का भाव भी भूल जाता है। इसीलिये कवि ने संकेत करते हुए कहा है—हे भंवरे, तू रस के लालच में अभी तक कमल के फूल पर क्यों बैठा हुआ है क्योंकि सूर्य अस्त होगा तो बमल मुरझा जायगा और तू उसके भीतर बन्द हो जायगा। रात्रि पर्यन्त बन्द रहने के बाद सुबह हाथियों का दल आयेगा जो कमल को उखाड़ कर फेंक देगा जिसके साथ ही तुझे भी अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ जायगा। कवि ने यह बात भंवरे को क्या, मोह में फंसे हुए मनुष्य को ही कही है जो विषय-वासनाओं के मोह में इस तरह भान भूला हुआ है कि न तो उसे इस दुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग करने का ध्यान है और न ही काल द्वारा कभी भी ग्रसित हो जाने का भान।

देव ने चन्द्रसेन को चेतावनी दी—आप फूलों की सुन्दरता में अपना भान न भूल जावें। बगीचे में ही उन फूलों की क्यारियों से जब आप आगे बढ़ेंगे तो आपको एक सुन्दर वापी (बावड़ी) दिखाई देगी। वहाँ पर भी आपको आकर्षक दृश्य दिखाई देंगे किन्तु उनमें भी आप अपने मन को प्रलुब्ध न बनने दें।

देवता बताता रहा—महाराज, उस बावड़ी के पास आपको बहुत ऊंचा और सुन्दर एक वृक्ष मिलेगा। उस बावड़ी के पास आप रुकें नहीं, क्योंकि वह बड़े-बड़े खतरों भरी बावड़ी है। आधी रात के समय उस बावड़ी में से एक मणिधारी सर्प निकलता है जो बहुत ही विशाल और विकराल है। वह सर्प अब तक कई लोगों को डस कर अपने विष से मार चुका है। आप बावड़ी पर पहुँचते ही उस ऊंचे वृक्ष पर चढ़ जावें और सबसे ऊंची शाखा पर बैठ जावें। शाखा पर बैठकर नवकार मंत्र का जाप करते हुए आधी रात होने की इन्तजार करें ताकि बावड़ी से निकलते हुए उस मणिधारी सर्प को आप भली प्रकार देख सकें।

चन्द्रसेन को जिज्ञासा हुई कि उस बावड़ी में से सर्प कहाँ से और किस प्रकार निकलता है और क्या वह पानी में रहने वाला सर्प है? देव ने उनकी शंका का समाधान किया कि उस सर्प के माथे पर एक बहुत बड़ी मणि है और मणि के प्रभाव से जब वह चलता है तो पानी दो भागों में

फटता रहता है और उस सर्प को खुला मार्ग मिलता रहता है। इस तरह वह सर्प बावड़ी के पानी से बाहर आ जाता है।

देवता ने समझाया—आप उस मणिधारी सर्प को देखकर भी घबरावें नहीं और उस ऊंची शाखा पर बैठ रहकर उस सर्प की करतूतें देखते रहें। जब वह सर्प बावड़ी के भीतर से निकल कर बाहर आ जायगा, तभी उसका प्रभाव आपको दिखाई देगा। उस सर्प की मणि में ऐसी शक्ति है कि उसका आभामय प्रकाश चौबीस मील की दूरी तक फैल जाता है। उस समय सामान्य व्यक्ति तो बेहद डर जाता है। लेकिन राजन्, जो भयभीत हो जाता है, वह अपना लक्ष्य भी खो देता है और अपने जीवन को भी नष्ट कर देता है। उसका प्रकाश इतना तीव्र होता है कि साधारणतया आंखें चकाचौंध हो जाती हैं। जैसे दीपक की लौ या कि बल्ब का प्रकाश पतंगों को अपनी तरफ खींचता है और पतंगा उस पर झंपापात करता हुआ अपने प्राणों को होम देता है उसी प्रकार उस मणि का प्रकाश भी मनुष्य को अपनी तरफ खींचता है। जो उस आकर्षण में मुग्ध बन कर खिंचा चला जाता है, वह अपने प्राणों बचा नहीं पाता है, किन्तु आपके मन में तो समता साधना का दिव्य प्रकाश फैला हुआ है अतः मणि का वह प्रकाश आपको आकर्षित नहीं करेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। इसी तरह आपका आत्मबल भी इतना मजबूत है कि आप उस सांप की विकरालता से भी भयभीत नहीं होंगे। निर्भय अवस्था में आप उस मणि के विस्तृत प्रकाश में चारों ओर की वस्तुएँ तथा गतिविधियाँ स्पष्ट रूप से देख सकेंगे। सर्प सदा अपनी मणि को किसी ऊंचे स्थान पर रखकर उसके प्रकाश में अपना खाद्य ढूँढ़ने के लिये इधर उधर जाता है। लेकिन इस सर्प में आप एक विशेषता देखेंगे जो दूसरे सर्पों में नहीं मिलती है। मणि के उस प्रकाश में उसको जो खाद्य मिलता है, उसे लेकर वह वापिस अपनी मणि के पास आ जाता है।

महाराजा को विशेष ध्यान दिलाते हुए तब देवता ने आगे कहा—हे राजन्, अब आप ध्यान से सुनिये कि आपको उस समय में क्या करना है ? उस बावड़ी के पास वाले वृक्ष की ऊंची शाखा पर बैठकर आधी रात में आपको सर्प के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करनी होगी। ज्योंही सर्प बाहर निकले और अपने सिर से मणि को उतार कर ऊंचे स्थान पर रखे तब आप सावधान हो जावें।

देवता कह रहा था—आप उस सर्प को देखकर तनिक भी नहीं डरें और न ही उसे मारने का उपक्रम करें, क्योंकि आप सम्यक्-दृष्टि साधक हैं और आपको निरपराध प्राणी पर प्रहार करना कतई उचित नहीं है। आप तो ध्यानपूर्वक उस सर्प की चर्या को देखते रहें। वह सर्प आपकी कार्य-सिद्धि में कतई बाधक नहीं होगा। आपको अहिंसक रीति से उस सर्प को वश में करना होगा। उसको वश में कर लिया तो फिर सफलता निश्चित है।

चन्द्रसेन ने जानना चाहा—हे देव, उस सर्प को वश में करने का मेरी कार्य-सिद्धि से भला क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

चन्द्रसेन की जिज्ञासा के उत्तर में देव ने इतना ही कहा कि उस सर्प से मणि प्राप्त कर लें और इतना कह वह वहाँ से चला गया। देव इस दृष्टि से वहाँ से चला गया कि अपने सत्पुरुषार्थ का मार्ग स्वयं राजा को ही खोजना चाहिये—इस बारे में कोई निर्देश नहीं देना चाहिये। इस कारण उसने इतना ही कहा—बस आप तो मणि प्राप्त कर लें और उसके बाद सारे प्रसंग हितकारी ही बनेंगे तथा आपका मनोरथ भी पूर्ण होगा। महाराजा मन में विचार करने लगे कि देवता के इस संक्षिप्त कथन का क्या रहस्य है ? वे यह भी सोचने लगे कि सर्प विकराल है, फिर भी उसको अहिंसक रीति से वश में करना है—यह कैसे सम्भव हो सकेगा ? राजा ने अन्ततोगत्वा सोचा कि देवता तो संकेत करके चला गया है, अब तदनुसार निर्देशों को कार्य रूप तो उसे ही देना होगा। यह सोचकर वे आगे के कार्यक्रम पर विचार करने लगे। उनके सामने उस अपरिचित स्थान तक पहुँचने तथा मणि प्राप्त करने के कार्य में सफलता प्राप्त करने के प्रश्न तो थे ही, यह भी समस्या उसके सामने थी कि अपनी अनुपस्थिति में राज्य व्यवस्था के संचालन का क्या होगा ?

फिर भी महाराजा चन्द्रसेन ने अपनी कार्यसिद्धि का पहला चरण तो पूरा कर ही लिया था कि तेले की तपस्या के प्रभाव से देवता उपस्थित हो गया, उसने पुत्र प्राप्ति का निश्चित संयोग भी बता दिया तथा आवश्यक निर्देशों से कार्य सम्पन्न करने की भलामण भी उसने दे दी। श्री कृष्ण महाराज ने भी इसी तरह तेले की तपस्या करके देवता को बुलाया था और उससे पूछा था कि मेरी माता देवकी की कुक्षि से मेरे छोटा भाई उत्पन्न

होगा या नहीं, क्योंकि माता की छोटे बच्चे को रमाने की बड़ी उग्र भावना हो गई थी। तब भी देव ने प्रकट होकर श्री कृष्ण को बता दिया था कि उनके छोटा भाई अवश्य होगा। इस प्रकार पहला चरण पूरा हो जाने के बाद महाराजा चन्द्रसेन ने आगे की योजना पर विचार करने के लिये अपने दीवानजी एवं निकटस्थ पदाधिकारियों को बुलाया।

धर्म को कल्पतरु की उपमा दी गई है। जैसे कल्पतरु मनवांछित फल देता है, वैसे ही धर्म की शुद्ध आराधना से मनुष्य के मनोरथ पूरे होते हैं। धर्म की आराधना की पहली सीढ़ी यह मानी गई है कि कम से कम व्यर्थ के पाप कार्य न किये जाय। व्यर्थ के पाप कार्य वे, जिनके करने का वर्तमान जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जैसे कोई आपसे यह कहे कि सोने के तख्त पर बैठना छोड़ दीजिये तो क्या आप यह त्याग नहीं ले सकते? यह आप जानते हैं कि आपके घर में सोने का तख्त है नहीं और न होने की उम्मीद है, फिर बिना कष्ट का यह त्याग कर लेने से क्या आपत्ति हो सकती है? किन्तु ऐसा त्याग भी धर्म का कारण होता है। ऐसे पदार्थों का त्याग कर लेने से भी इच्छागत पाप रुक जाता है और इच्छापूर्वक उनका त्याग कर लेने से उनसे सम्बन्धित क्रिया जीवन में नहीं लगती। अतः ऐसे व्यर्थ के पाप को रोकने को प्रयास करना भी धर्म रूपी कल्पतरु की छाया में बैठना ही होगा।

ऐसा ही महात्मा बुद्ध के पूर्व जीवन का एक प्रसंग है। एक जन्म में वे चन्दन गोह के रूप में थे। गोह की पकड़ बहुत मजबूत होती है। यहाँ तक कि रस्सी से बांध कर इसको ऊँची दीवार पर फँकते हैं तो वह वहाँ मजबूती से चिपक जाती है। फिर रस्सी को पकड़ कर सीधी दीवार पर भी ऊपर चढ़ा जा सकता है। तो वह चन्दन गोह जंगल में रहती थी। उसी जंगल में एक ढोंगी साधु कुटिया बनाकर रहने लगा। उसका इस तरह अकेले रहने का मकसद लोगों की नजरों से बचकर मनमाने काम करना था। अधिकांशतः अकेले रहने वाले साधु का लोग विश्वास नहीं करते हैं और यह सही भी है, क्योंकि अकेला साधु दिन रात क्या करता है, कैसे रहता है उसे देखने-जांचने वाला भी कोई नहीं होता है और एकान्त व गोपनीयता पाप तथा प्रपञ्च का कारण बन जाती है। आज भी जो एकाकी साधु चलते हैं, वे दावा करते हैं कि वे उत्कृष्ट साधुता का पालन करते हैं किन्तु प्रश्न उठता है कि यदि वह वास्तविक साधु है तो दूसरों के साथ

हिल मिल कर क्यों नहीं चल सकता है ? उसके अकेले रहने का अधिकतर कारण तो दम्भ या मान ही होता है कि वही अकेला सच्चा साधु और बाकी सभी साधु खोटे। इसलिये गृहस्थों में भी यह विवेक होना चाहिये कि किसी को साधु वेश में देखकर ही भक्ति न करने लग जायें, बल्कि पहले यह परीक्षा करें कि वह साधु वेश के अलावा साधुता की कसौटी पर भी खरा उतरता है या नहीं ? इसी दृष्टि से भगवान् महावीर की आज्ञा है कि साधु कम से कम दो तथा साध्वियाँ कम से कम तीन विहार करें—एकलविहार उचित नहीं बताया गया है। खैर ! उस जंगल में वह अकेला साधु रहता था। साधु को देखकर चन्दन गोह के मन में शुभ भावना जागी कि मेरे समीप ही इनके रहने से मुझे हमेशा इनके पवित्र दर्शन होते रहेंगे। वह चन्दन गोह रोज सुबह साधु की कुटिया के बाहर जाकर साधु को नमस्कार करती और चली जाती। यह उसका नित्य क्रम हो गया। एक दिन साधु के पास उसको कोई भक्त मांस का भोजन लेकर आया। साधु ने मांस खाया और पूछा कि यह मांस इतना स्वादिष्ट कैसे है ? भक्त ने कहा कि यह मांस चन्दन गोह का है। इसलिए स्वादिष्ट है। यह सुनकर उस साधु के मन में विचार आया कि एक चन्दन गोह रोज उसके दर्शन करने के लिए आती है सो यदि वह उसे पकड़ले और मारकर खावे तो वैसा ही स्वाद वह फिर ले सकेगा। यह सोचकर वह लोहे का चिमटा हाथ में लेकर बैठ गया ताकि चन्दन गोह के आते ही उसे मार सके। लेकिन उस चन्दन गोह ने दूर से ही उस साधु का वह रूप देखा तो वह चौंक उठी। उसने सोचा कि यह साधु तो नकली और हिंसक लगता है। इस कारण वह दूर में ही वापिस जंगल में चली गई। साधु गोह को मारने की क्रूर भावना के साथ वहां बैठा ही रहा। कहने का अभिप्राय यह है कि साधु का आचार—विचार बड़ा ऊंचा होना चाहिये तभी वह श्रद्धा का पात्र बनता है।

महाराजा चन्द्रसेन के मन में विचार जागा कि मैं ऐसे ऊंचे आचार—विचार वाला साधु नहीं बना हूँ। अभी तो मैं श्रावक ही हूँ। फिर भी इस स्तर से मुझे कल्पतरु के समान धर्म की आराधना करनी है क्योंकि जब तक अन्तराय कर्म बने रहते हैं तब तक मनोवांछित प्राप्ति नहीं होती है किन्तु धर्मा राधना करते—करते वे कर्म जब टूट जाते हैं तो फिर वह प्राप्ति भी दूर नहीं रहती है। इस संकल्प के साथ महाराजा के निर्देशानुसार

यात्रा प्रारम्भ करने का निश्चय किया।

जनता की भावना सफल बनेगी और उसे उसके समान ही भावी शासक प्राप्त हो सकेगा— इस विचार से महाराजा चन्द्रसेन का हृदय अतीव उत्साह से हर्षित होने लगा। देवता ने कहा था कि यात्रा राजा को अकेले ही करनी होगी अतः उन्होंने घोड़े पर बैठकर वह यात्रा अकेले ही पूरी करने का निर्णय लिया।

अतीव प्रफुल्ल मन से महाराजा अपने राजभवन में पहुंचे तथा नित्य कार्य से निवृत्त होकर पहले उन्होंने सामायिक की साधना की, ताकि शान्ति और समभाव के साथ वे अपने कार्यक्रम पर विचार कर सकें। तदनन्तर वे अपने परिवारजनों के बीच में पहुंचे तथा उन्होंने उन्हें शुभ संवाद का संकेत दिया। इतने में मंत्रीगण वगैरा भी पहुंच गये।

चन्द्रसेन, धर्मारत्मा, नीतिवान और प्रजा का सदा ही भला चाहने वाले राजा थे। जैसे वे सद्गुणी राजा थे, वैसी ही उनके मंत्री आदि भी विनम्र और आज्ञाकारी थे तथा वैसी ही हितकारी उनकी प्रजा थी। मंत्रियों आदि ने महाराजा के कक्ष के बाहर पहुंचकर विचार किया कि वे तीन दिन की तेले की तपस्या में विराजे थे सो उसने परिणामस्वरूप कोई न कोई नया शुभ संवाद अवश्य होगा किन्तु सभी एक साथ जाकर महाराजा की शान्ति भंग करें— यह उचित नहीं रहेगा। वह एक शिष्ट अनुशासन की बात थी।

आज देखा जाता है कि कोई सन्त बीमार हो जाय तो लोग उनकी सुखसाता पूछने के लिए आते हैं। लेकिन वे सुखसाता पूछने के शुभ कार्य में भी आवश्यक विवेक नहीं रखते हैं, जिसके कारण सन्त को विश्राम मिलने की बजाय अधिक कष्ट महसूस होने लगता है। कई बार मांगलिक पाठ को सुनाने के समय में भी आवश्यक अनुशासन नहीं निभाया जाता है। हमेशा की छोटी-छोटी बातों में भी विवेकपूर्ण अनुशासन रखा जाना चाहिये।

चम्पा नगरी में शिष्ट और विवेकपूर्ण अनुशासन का भाव सभी में समाया हुआ था। इस दृष्टि से सभी लोग कक्ष के बाहर ही ठहर गये। अकेले दीवानजी ही महाराजा के कक्ष में प्रविष्ट हुए। उन्होंने महाराजा के सम्मुख जाकर नम्र भाव से पूछा—राजन्, आप तेले की तपस्या करके

पौषधशाला में विराज रहे थे, इसलिये हम लोग आपकी सेवा में नहीं पहुंच सके जिस हेतु क्षमाप्रार्थी हैं। कृपा करके फरमाइये कि आपकी उस साधना का क्या शुभ परिणाम रहा ?

महाराजा ने कहा—आप लोगों की शुभ भावना से मैं परिचित हूं और उसी दृष्टि से आपने यह जिज्ञासा प्रकट की है किन्तु इस समय मैं आपकी जिज्ञासा का समाधान बतलाने की स्थिति में नहीं हूं। दीवानजी ने फिर कोई आग्रह नहीं किया और यही पूछा—आप यह फरमाइये कि हमारे लिये क्या आज्ञा है ?

फिर सभी मंत्रियों तथा प्रमुख अधिकारियों को भीतर बुला लिया गया, जिन्हें संबंधित करते हुए महाराजा ने भलामण दी—मैं समग्र जनता की मनोकामना पूरी करने की भावना से तीन दिन की साधना में बैठा था और देव का आह्वान किया था। तब देव ने प्रकट होकर जो कुछ बताया, वह आपके, मेरे और पूरे राज्य के लिये शुभ है। आगे के लिये जो कार्यक्रम मुझे बताया गया है, उसको पूरा करने के लिये मुझे कुछ समय तक बाहर जाना पड़ेगा। सबसे पहले मुझे यहां से दक्षिण दिशा में जाना होगा। यह सारा कार्य मैं जनता की इच्छा पूरी करने के लिये कर रहा हूं।

यह पूछा जा सकता है कि उस समय के जैन नायक कैसे थे और आज के नेताओं का व्यवहार कैसा है ? आज का युग कई दृष्टियों से विचित्र है। किन्तु बुद्धिमान व्यक्तियों को हमेशा एकत्व भावना से रहना चाहिये। एक विचार और एक आचार के अनुसार सभी चल रहे हों तो क्या किसी भी शक्ति की यह हिम्मत हो सकती है कि वह ऐसे अनुशासित लोगों पर कोई अत्याचार कर सके ?

चन्द्रसेन ने सभी लोगों को कहा—इस कार्य को पूरा करने के लिये मुझे कुछ समय तक आप लोगों से दूर रहना होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे पीछे आप लोग राज्य की सुन्दर व्यवस्था करेंगे तथा प्रजा को किसी तरह से कोई कष्ट नहीं देंगे। आप सब लोगों की खुशी की मैं शुभ कामना करता हूं कि भावनाओं की दृष्टि से सारी प्रजा मेरे साथ रहेगी।

यह भलामण देकर महाराजा ने आज्ञा दी कि उनकी यात्रा के लिये उनका चपल अश्व तैयार करा दिया जाय। वे किसी को भी अपने साथ नहीं ले जायेंगे। घोड़े पर सवार होकर वे अकेले ही दक्षिण दिशा में प्रस्थान करेंगे।

महाराजा भोजन आदि से निवृत्त होकर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगे। तैयारी पूरी हो जाने पर प्रस्थान से पूर्व उन्होंने मंगलाचरण किया ताकि आगे के कार्य में बाधाएं न आवें और वह यथायोग्य रीति से सफल हो।

यह पूछा जाय कि आप लोग भी किसी कार्य के आरम्भ में अथवा कहीं भी प्रस्थान से पूर्व मंगलाचरण करते हैं या नहीं—तो पता नहीं आप लोगों में से कितनों के उत्तर हां में होंगे। किन्तु ध्यान रखें कि मन की मजबूती और विश्वास की स्थिरता के लिये ऐसे अवसरों पर अवश्य ही मंगलाचरण कर लेना चाहिये। जो इस महामंत्र पर पूर्ण श्रद्धा नहीं रखते हैं, वे अज्ञानवश इधर—उधर भटकते हैं परन्तु पाते कुछ भी नहीं है।

महाराजा चन्द्रसेन ने एकाग्रता से मंगलाचरण किया तथा घोड़े पर सवार होकर दक्षिण दिशा में चल पड़े। कुछ दूरी तक प्रजा जन उन्हें पहुंचाने गये और फिर उस ओर टकटकी लगाकर देखते रहे जिस ओर महाराजा का अश्व आगे और आगे बढ़ता जा रहा था।



6

बाह्य दृश्यों अथवा पदार्थों का सभी व्यक्तियों पर समान प्रभाव नहीं होता है। कौन व्यक्ति अपनी किस प्रकार की आन्तरिकता के साथ उस दृश्य अथवा पदार्थ को ग्रहण करता है, उसी रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव परिलक्षित होता है। यों समझें कि एक भयानक दृश्य एक साथ पचास व्यक्ति देखते हैं। उनमें से कोई ऐसा होगा जिसका हार्ट फेल हो सकता है, किसी की उसे देखकर घिघियां बंध जाय तो कोई उससे भयभीत ही न हो। कोई ऐसा भी निकल सकता है जो इस भयानकता का विरोध करने के लिये भी उठ खड़ा हो। यह भिन्नता प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिकता की सबलता अथवा दुर्बलता पर आधारित होती है। जिसका आत्म बल सुदृढ़ होता है, वह भयानक से भयानक दृश्य को देखकर भी न तो भयभीत होता है और न ही अस्थिर। वह पूरे स्वस्थ चित्त से उसे देख-परख सकता है तथा स्वयं आगे बढ़कर सबको साथ लेकर निर्भयता का प्रदर्शन भी कर सकता है। जिसके आत्म-बल का सामान्य सा विकास भी न हो अथवा जिसकी दृष्टि ही अपनी आन्तरिकता को पहिचानने की तरफ नहीं मुड़ी हो, उसका उस समय हार्ट फेल भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

महाराजा चन्द्रसेन सामायिक साधना से अपनी आन्तरिकता को स्थिर एवं निर्भय बना चुके थे। उनके मन में न कोई व्यामोह था न किसी प्रकार का भय। दक्षिण दिशा में ज्यों-ज्यों उनका द्रुत गति अश्व आगे बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों उनका मन भी अधिक निर्भय, साहसी होता जा रहा था।

महाराजा दक्षिण दिशा में एकाकी ही जंगलों, पर्वतों और गुफाओं को लांघते हुए आगे से आगे बढ़े जा रहे थे। भयजनक दृश्य भी सामने उपस्थित हो रहे थे किन्तु उनके मन में भय का लवलेश भी पैदा नहीं हो रहा था। देव द्वारा बताई हुई दूरी को पार करने की एक लगन से वे चले जा रहे थे। उनके सामने उद्देश्य को पूरा कर लेने की ही एकाग्रता थी। जब किसी सत्पुरुषार्थ को पूरा करके लक्ष्य सिद्ध करने का संकल्प एक साहसी व्यक्ति का बन जाता है तब वहां पर किसी तरह की कमजोरी नहीं रहती है। “कार्य साधयामि वा देहं पातिष्यामि वा” का दृढ़ संकल्प मात्र सामने घूमता रहता है। चन्द्रसेन भी भययुक्त होकर उद्देश्यपूर्ति की एकनिष्ठा से सबल बनकर आगे बढ़े जा रहे थे। निर्भयता जैसे समग्र प्राण वायु में संचरित हो रही थी।

महाराजा विचारमग्न थे। वे सोच रहे थे कि मैंने अपना अन्तिम लक्ष्य तो आत्मशुद्धि का बना रखा है, उसे प्राप्त करने के लिए तो एक दिन इस सांसारिकता का भी परित्याग करना होगा, किन्तु जब तक परिपूर्ण साधना का मार्ग नहीं अपना पा रहा हूं तब तक जन कल्याण के लक्ष्य भी पूरे करने होते हैं। मैं अभी सामायिक की समता साधना करता हूं तथा श्रावक के बारह व्रतों को पालता हूं तो इस समय मेरे आचरण की मर्यादाएं इस साधना से सीमित रहती हैं। जब तक मैं एक गृहस्थ और शासक हूं तब तक परिवार हित एवं जन हित के लक्ष्य भी मेरे सामने रहेंगे और उनकी पूर्ति में भी मेरे पुरुषार्थ का सदुपयोग करना होगा। इस समय मैं व्यापक जनकल्याण के उद्देश्य हेतु ही आगे बढ़ रहा हूं।

इन विचारों के साथ जब चन्द्रसेन महाराजा ने एक भयानक जंगल पार कर लिया तो उन्हें अपनी लक्ष्य सिद्धि की ओर अग्रसर होने का हर्ष अनुभव हुआ। उनकी निर्भयता ने उन्हें किसी भी जंगली जन्तु से चौंकने नहीं दिया तो उतार-चढ़ाव की दुर्गमता में भी कहीं बाधित नहीं होने दिया—इस बात का भी उन्हें हर्ष हुआ। उस भयानक जंगल को सफलतापूर्वक पार कर लेने के बाद उनकी निर्भयता अधिक तेजस्वी बन गई।

स्वर्गीय आचार्य श्रीमद् गणेशीलालजी म.सा. की दिनचर्या आपने कभी सुनी होगी। एक बार वे राजस्थान की ओर पधार रहे थे। उस समय में वे आचार्य पद पर नहीं थे। नवदीक्षित सन्त भी उनके साथ थे। उस वन प्रान्तर में आगे बढ़ते हुए ज्योंही उनकी नजर सामने दूर तक गिरी तो

उन्होंने देखा कि एक विशालकाय सिंह सामने से आ रहा था। उस वक्त नवदीक्षित मुनि का ध्यान आया कि कहीं वे डर न जाय अतः उनको अपनी बगल में लेकर सिंह की आंखों में झांकते हुए वे निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ते रहे। हुआ यह कि वह सिंह भी शान्त भाव से निकल गया। यह उनकी पवित्र जीवन साधना का अमित प्रभाव था।

इसी तरह वे स्वर्गीय आचार्य एक बार मारवाड़ प्रदेश में विहार कर रहे थे। साधु रात्रिकाल में विहार नहीं करते हैं ताकि किसी भी प्रकार से हिंसा का आचरण न हो जाय। विहार करते-करते सूर्य अस्त होने आ गया, किन्तु किसी गांव आदि की स्थिति समीप नहीं दिखाई दे रही थी। सूर्य अस्त होते ही वे महापुरुष एक वृक्ष के नीचे निर्वद्य स्थान देखकर विराज गये। प्रतिक्रमण, ध्यान आदि से निवृत्त होकर वहीं निर्भयता पूर्वक पौढ़ गये। शीतकाल का समय था चदर पूरे शरीर पर ओढ़ ली। रात्रिकाल में उन्हें उस चदर पर काफी वजन जैसा महसूस हुआ किन्तु उन्होंने समझा कि कोई चूहा वगैरा होगा सो चदर को धीरे से हिलाई ताकि वह जन्तु धीरे से नीचे हो जाय। फिर जल्दी उठकर प्रतिक्रमण आदि से वे निवृत्त हुए और कुछ-कुछ हो रहे उजाले में जब उनकी दृष्टि पास में मुड़ी तो देखा कि एक नागराज गोला डालकर बैठे हुए हैं। तब भी वे निर्भय रहे तो नागराज भी शान्त कि ये साधु उसका कुछ भी बिगाड़ेंगे नहीं। अभिप्राय कि जब आत्म-बल विकसित होता है तथा आन्तरिकता में सुदृढ़ता एवं निर्भयता होती है तो वैसा ही आत्मबली किसी भी परिस्थिति से भयभीत नहीं होता है। वस्तुतः उसकी निर्भयता सामने वाले को भी शान्त और निर्भय बना देती है।

ऐसी तो साधु जीवन की निर्भीकता होती है, किन्तु वे गृहस्थ भी निर्भयता के ऊंचे उदाहरण उपस्थित करते हैं जो अपनी अन्तरात्मा को सामायिक की समभावी साधना से दृढ़ीभूत बना लेते हैं। आज भी कोई शुद्ध मन से सामायिक करे, अपनी दृष्टि में समता का तेज भरे और समीक्षण ध्यान का अभ्यास बढ़ावे तो वह भी अद्भुत निर्भीकता का धनी बन सकता है। महाराजा चन्द्रसेन भी समता-साधक थे। उनके मन में सभी प्राणियों के प्रति समान आत्मीयभाव समाया हुआ था। इसी आधार पर वे सोचते थे कि एक आत्मीय को दूसरे आत्मीय से भला भय कैसे हो सकता है ?

महाराजा उस भयानक अटवी को लांघकर जब आग बढ़े तो उन्हें दूर से एक अति रमणीय स्थान दिखाई दिया। उस समय शाम ढलने वाली थी अतः एक स्वच्छ स्थान देखकर महाराजा सामायिक की साधना करने के लिये घोड़े से नीचे उतरे। नियम का पालन करने में उनकी पूरी सतर्कता थी। आज कई भाई-बहिन जो सामायिक नित्य करने का नियम लेते हैं, वे भी छूट की मांग करते हैं कि यात्रा वगैरा में वे नियम का पालन नहीं कर सकेंगे। छूट मांगने का अर्थ यही है कि अभी आत्मबल इतना नहीं बढ़ा है जो किसी भी स्थिति में नियम पालन करने की सक्षमता पैदा हो जाय। नियम की कठोर पालना तभी हो सकती है जब संकल्प शक्ति पूरी तरह से मजबूत हो। यात्रा में आपको सामायिक करने में बाधा महसूस होती है, ऐसा क्यों ? जब शरीर को खुराक देना नहीं रोकते तो आत्मा की खुराक क्यों बन्द कर देते हो ? इसे संकल्प की दुर्बलता ही कहेंगे और क्या ? इसके सिवाय कई भाई व्यर्थ की गपशप या ठाले कामों में समय गुजार देते हैं। सन्त उनको सामायिक करने की बात कहते हैं तो वे झट से बोल पड़ते हैं कि समय नहीं मिलता। उनकी ऐसी वृत्ति इसी कारण सामने आती है कि वे विवेकपूर्वक अपने जीवन का मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। चन्द्रसेन के नियम ढीले नहीं थे। उन्होंने अपनी दिनचर्या को कठोर नियमबद्धता से बांध रखी थी। वे एक शिला पर बैठकर सामायिक साधना में संलग्न हो गये। आनन्द भाव से उन्होंने अपनी समभावना को पुष्ट बनाई, अपने अहर्निश के पापों की आलोचना की और अपने आत्मबल को अधिक सुदृढ़ बनाया।

रात्रि विश्राम के लिये अन्य कोई अधिक सुरक्षित स्थान न देखकर सामायिक पूर्ण करके महाराजा ने वहीं एक तरफ सावधानी से घोड़े को बांध दिया ताकि वह जंगली जन्तुओं की दृष्टि से सुरक्षित रहकर हरी घास चरता रहे और स्वयं एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर उसकी ऊँची शाखा पर विश्राम करने लगे। नवकार मंत्र का जाप करते रहे और जब नींद आंखों को घेरने लगी तो सागारी संधारा लेकर शाखाओं के बीच शरीर को भलीभाँति टिकाकर आराम करने लगे।

रात्रि का समय व्यतीत हुआ और प्रातःकाल में सूर्य का उदय हुआ तो महाराजा का मन भी नई ताजगी तथा स्फूर्ति से भर उठा। नित्य कर्म से निवृत्त होकर सबसे पहले उन्होंने सामायिक की साधना की। आत्मा को

खुराक दे देने के बाद उन्होंने शरीर को भी खुराक देने का विचार किया। आस-पास में प्राप्त फल तोड़कर उन्होंने खाये और तृप्ति पाई। फिर घोड़े पर सवार होकर वे निर्देशित दिशा में आगे बढ़ने लगे।

लगातार तीव्र गति से चलते-चलते वे चम्पा नाम के उस बगीचे के पास पहुँच गये जिसका उल्लेख देवता ने किया था। उन्होंने देखा कि वह उतना ही रमणीय एवं आकर्षक स्थान है जैसा कि देव ने बताया था। फूलों की क्यारियों के पास होते हुए वे आगे बढ़े तो उस वापी (बावड़ी) के समीप भी पहुँच गये। सारे सुरभ्य दृश्य को उन्होंने समता भाव से ही देखा। बावड़ी पर पहुँच कर उन्होंने देवता द्वारा दिये गये सभी निर्देशों को भलीभाँति याद किये। तदनुसार सूर्यास्त के पहले-पहले सभी कार्यों से निवृत्त हो जाने की उन्होंने तैयारी कर ली। घोड़े को भी सुरक्षित स्थान पर बांध दिया, अपनी आवश्यकताएं भी पूरी कीं तथा सामायिक-प्रतिक्रमण भी सविधि सम्पन्न करके अपनी मानसिकता को शान्त, सुस्थिर एवं निर्भय बना ली। सूर्यास्त होने के साथ ही वे देव द्वारा बताये वहाँ के सबसे ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये और ऊपर की शाखा पर सावधान होकर बैठ गये, क्योंकि उन्हें आधी रात का इन्तजार करके मणिधारी सर्प की करतूतें देखनी थीं ताकि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति करने वाले कार्यक्रम की सफल क्रियान्विति का भलीभाँति निर्धारण कर सकें।

ज्यों-ज्यों रात गहरी होती गई, महाराजा चन्द्रसेन की सतर्क सावधानी बढ़ती गई। वे नवकार मंत्र का जाप करते रहे। उनके मन में विचार आया कि वे सोवें या नहीं। उस विचार के साथ ही उनका निश्चिन्त विश्वास और साहस जाग उठा। उन्होंने अपने मन को जैसे कि कड़ा आदेश दिया कि वह उन्हें आधी रात से कुछ पहले जगादे और शाखाओं के बीच के सुरक्षित स्थान पर सो गये। मन की इतनी मजबूती हो तभी निःशंक होकर ऐसा किया जा सकता है।

मन पर इतना कुशल नियन्त्रण कि आधी रात से पहले ही चन्द्रसेन की नींद खुल गई और वे सावधान होकर बैठ गये। वे सोच रहे थे कि एक साधक का जीवन सदा जागृति का जीवन होता है तभी तो उसके लिये कहा जाता है कि वह जागते हुए भी जागता है और सोते हुए भी जागता है। सामायिक की साधना आत्म विकास के रूप में जिसके जीवन में प्रवेश

पा जाती है, वह फिर सार्वजनिक हित की दृष्टि से जिस कार्य को पूरा करना चाहता है उसका मार्ग सरल बन जाता है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि समता की साधना से जो आत्म बल बढ़ता है उसी की सहायता से अद्भुत निर्भयता प्राप्त हो सकती है अतः मनुष्य के सत्पुरुषार्थ का मूल माना जाना चाहिये कि आत्मा को बलवती बनाओ।

आत्म-बल अभिवृद्ध होता है आत्म-समीक्षण से। अपने भीतर झांकों और देखो कि अपनी आन्तरिकता में शुभता और अशुभता की कैसी दशा है? भीतर में विकार अधिक हैं अथवा सद्भाव? विकारों पर सद्भावों की विजय के लिये कैसा पुरुषार्थ किया जाना चाहिये? यह पुरुषार्थ जितने अंशों में सफलता प्राप्त करता जाता है, उतने अंशों में आत्मा का बल भी बढ़ता जाता है और वही आत्मबल सुदृढ़ आत्म-विश्वास के रूप में ढलता जाता है। जो आत्म विश्वासी होता है, वही निर्भय भी होता है क्योंकि उसे अपने अन्तःकरण की शक्ति पर पूरा-पूरा विश्वास होता है कि हर तरह की परिस्थिति से सफलतापूर्वक जूझ सकेगा। महाराजा चन्द्रसेन का आत्म-विश्वास भी उच्च कोटि का था और इसी कारण वे अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा रखते हुए निर्भय थे। वे निःशंक होकर वृक्ष की ऊँची शाखा पर बैठे थे कि अब जो भी परिस्थिति सामने आती है, उसको सावधानी पूर्वक देखें तथा अपने कर्तव्य का सुनिश्चय करें।

महाराजा की दृष्टि उस बावड़ी के भीतरी भाग पर लगी हुई थी। उन्हें देवता के कथन पर अब भी आश्चर्य था कि पानी में न रहने वाला सांप भी पानी में कैसे रहता है और कैसे मणि की सहायता से पानी में मार्ग बनाकर बाहर निकलता है? उन्होंने सोचा कि सर्प का निवास शायद बावड़ी की गहराई में हो। आधी रात का समय हो रहा था अतः वे टकटकी लगाकर एक ही दिशा में देखे जा रहे थे।

तभी उन्हें दिखाई दिया कि बावड़ी में से प्रकाश की किरण धीरे-धीरे बाहर प्रकट हो रही है। उस प्रकाश में तीक्ष्णता की चकाचौंध भी दिखाई देती थी तो सौम्यता का आभास भी होता था। पानी के बाहर जब वह मणिधारी सर्प प्रकट हुआ तो महाराजा को ऐसा लगा कि जैसे पानी के भीतर तक खुला मार्ग बना हुआ हो, किन्तु वही मार्ग सर्प के पूरी तरह बाहर निकल जाने पर जैसे अदृश्य हो गया और पानी समतल रूप से फैल गया। चन्द्रसेन ने मणि के प्रकाश में देखा कि हकीकत में सर्प बहुत ही

विशाल भी है और विकराल भी। वह धीरे-धीरे बावड़ी की सीढ़ियों पर होता हुआ ऊपर चढ़ने लगा। उस प्रकाश में सर्प का गहरा काला रंग चमचमा रहा था। देव की वाचा का स्मरण करके महाराजा ध्यानपूर्वक सर्प की गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगे।

वह मणिधारी सर्प जब बावड़ी में से निकल कर बाहर आया तो चारों ओर उस मणि का तरल प्रकाश इस तरह फैल गया जैसे कि प्रकाश के सागर में लहरें हिलोरें ले रही हों। तब सर्प सरकता हुआ एक ऊँचे स्थान तक पहुँचा जिसका उल्लेख देव ने किया था। उस ऊँचे स्थान पर पहुँचकर सर्प ने अपने माथे पर से मणि को उतारा जैसे कि कोई अपनी पगड़ी को उतारता है और उस मणि को उस ऊँचाई पर रख दी जिससे उसका प्रकाश सुदूर क्षेत्र तक विस्तृत हो गया। दूर दूर तक सारा जंगल जगमगा उठा। मणि को रखकर वह सर्प निश्चिन्ततापूर्वक वहाँ से अपने खाद्य की खोज में रवाना हुआ। जब वह उस वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था जिस पर चन्द्रसेन बैठे हुए थे तो उस समय वे चौकन्ने हो गये कि अब यह सर्प क्या हरकत करता है ? देखने में कोई दुविधा नहीं थी क्योंकि विपुल मात्रा में प्रकाश फैला हुआ था।

वृक्ष के नीचे से वह सर्प धीरे-धीरे सरक रहा था। महाराजा ने देखा कि उसके पास में से फुदकते हुए मेंढक निकले और दूसरे जन्तु भी गये किन्तु सांप ने किसी को भी पकड़ने की चेष्टा नहीं की। मेंढकों को सर्प अपना खास खाद्य मानता है फिर भी उस सांप ने उन्हें छोड़ दिया—यह देखकर महाराजा को आश्चर्य होने लगा। वे सोचने लगे कि उन्होंने ऐसे सर्प के बारे में न तो अब तक सुना है और न ही ऐसे सर्प को देखा है जो छोटे-छोटे प्राणियों का भक्षण न करता हो। सर्प तो छोटे-छोटे प्राणियों को क्या, बड़े-बड़े महात्माओं तथा महापुरुषों को भी काटने से नहीं चूकता। स्वयं भगवान् महावीर को चण्डकौशिक सर्प ने डसा था। फिर यह सर्प किस किस का है— यह राजा को समझ में नहीं आया। उनकी दृष्टि सर्प की गति के साथ-साथ चल रही थी।

शामा नाम का एक प्रकार का घास होता है, जो जंगल में बिना बीज के ही उगता है। उस घास के डोड़ों में छोटे-छोटे दाने होते हैं। ये दाने ऐसे होते हैं जिन्हें अन्न के स्थान पर उपयोग में ले सकते हैं। मारवाड़

आदि प्रान्तों में जहाँ अधिकतर अकाल पड़ता रहता है, लोग ऐसे दानों की रोटियाँ बनाकर भी खाते हैं। वह सर्प भी सभी प्राणियों को छोड़कर आगे उगी हुई शामा घास के बीच में पहुँचा तथा उसके दानें चुन-चुनकर खाने लगा।

अब तो चन्द्रसेन के आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि क्या ऐसा विकराल सर्प भी शाकाहारी हो सकता है ? फिर विचार आया कि शाकाहारी और शुद्धाचारी होने के कारण ही शायद यह सर्प मणिधारी बन सका हो। ऐसी वृत्ति के कारण ही इसके पास मणि सुरक्षित होगी। यदि वह हिंसक और अशुभ परिणामों वाला सर्प होता तो मणि को अपने पास टिकाकर रखने में सफल नहीं होता, क्योंकि वैसी दशा में कोई भी इस सर्प का संहार करके मणि को ले गया होता। फिर राजा को विचार आया कि हो सकता है—यह सर्प अपने पूर्व जन्म में कोई श्रावक रहा हो और इसके उस जन्म के शुभ संस्कार अभी भी सक्रिय बने हुए हों। इस तरह चन्द्रसेन उस सर्प को देखते हुए विविध प्रकार के विचारों में गोते लगा रहे थे और सर्प अपना खाद्य खोज खोज कर खा रहा था।

सर्प जब तृप्त हो गया तो वह पुनः अपनी गति से लौटने लगा। जहाँ मणि को उसने रखा था वहाँ पहुँचकर पुनः उस मणि को धारण करता है और उसी बावड़ी में प्रवेश कर जाता है। सर्प के बावड़ी में प्रवेश पा जाने पर अटवी में अन्धकार व्याप्त हो गया। महाराज चन्द्रसेन इतने समय तक सर्प की गतिविधियों को देख रहे थे पर अब जब नागराज उनकी दृष्टि से ओझल हो गया तो महाराज को लगा कि वे स्वप्न लोक से लौटे हों। वे विचार करने लगे, कुलदेवी द्वारा निर्दिष्ट स्थान तक मैं सकुशल पहुँच गया हूँ। यहाँ नागराज के दर्शन भी हो गये हैं। उसकी वृत्ति का भी मैंने समीक्षण कर लिया है। उसकी सात्विक वृत्ति से यह स्पष्ट है कि वह स्वयं हिंसक नहीं है। सम्भव है किसी के द्वारा त्रास देने पर सर्पराज उसका प्रतिकार करता हो और उसी के कारण यह विषधर कहलाता हो अथवा अपनी जातीय सदृशता के कारण भी विषधर कहला सकता है। कुछ भी हो मुझे इनसे साक्षात्कार करना है। इनके साथ मुझे किस विधि से साक्षात्कार करना, इस पर महाराज चिन्तन करने लगे।

महाराज चन्द्रसेन को अपनी कुलदेवी के वचन स्मरण होने लगे।

महाराज ने कुल देवी के वचनों पर गहराई से मनन करना प्रारम्भ किया। वे सोचने लगे— कुल देवी ने यहाँ तक पहुँचने के लिए मेरा मार्ग दर्शन समीचीन प्रकार से कर दिया है। किन्तु सर्पराज पर कैसे विजय प्राप्त करना, इसके लिए देवी ने केवल संक्षिप्त में यही कहा कि उसे स्नेह—सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार से वश में करना। अतः अब मुझे ही इसके लिए कुछ रूपरेखा तैयार करनी होगी।

महाराज का चिन्तन चलता रहा। वे अभी पूर्ण निष्कर्ष की स्थिति में नहीं पहुँच पा रहे थे कि नागराज के साथ कैसे सद्व्यवहार से पेश आया जाय ? उनके मन में कई तरह की योजनाएं विचारों में आ जा रही थीं। अन्ततोगत्वा एक योजना पर उनका चिन्तन स्थिर हुआ। दो, तीन बार उस योजना पर सिंहावलोकन कर उस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सर्व प्रथम वे इसी योजनानुसार कार्य करेंगे क्योंकि इस योजना से नागराज के प्रति अत्यन्त स्नेह एवं सद्व्यवहार के साथ बहुमान के भाव भी रहे हुए हैं। अतः योजना को अपने मस्तिष्क में निश्चित कर वे वृक्ष से नीचे उतरे और आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो अपनी आत्मा को खुराक देने की दृष्टि से सामायिक की, साधना में संलग्न हुए।

सामायिक साधना के माध्यम से वे आत्म—समीक्षण करने लगे; सामायिक की साधना आत्म—समीक्षण के लिए सर्वोपरि है। सामायिक में आत्म—समीक्षण करते हुए वे अपने भूतकालीन 24 घंटों का विचार करने लगे कि गत 24 घंटों में मेरा आत्मा कितना स्वभाव में रहा और कितना विभाव में गया। यदि विभाव में गया तो किस परिस्थिति से गया ? और क्यों गया ? इस प्रकार आत्मा की वृत्तियों का समीक्षण करते हुए यदि क्वचित् आत्मा विभाव में भटक गया हो तो उसे स्वभाव में प्रस्थापित करने का प्रयास करने लगे।

बन्धुओ ! आप भी सामायिक कर रहे हैं। मुंहपति मुंह पर बांध रखी है। आसन भी बिछा रखा है। शरीर पर से सिलाई किये हुए वस्त्र भी आपने उतार रखे हैं। शरीर को चद्दर से आवृत कर लिया है। कई मेरे भाई सामायिक में सिलाई के वस्त्र उतारने में भी हिचकिचाते हैं, तो कई मुंहपति मुंह पर लगाने में संकोच करते हैं। पर याद रखिये यद्यपि यह द्रव्य सामायिक कही जाती है, पर भाव सामायिक के लिए द्रव्य सामायिक भी

एक आवश्यक अंग है। इसका भी मन पर बड़ा मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है। इसलिए यदि कोई ऐसा सोचता हो कि यह द्रव्य सामायिक है इससे क्या फायदा, हम तो भाव से सामायिक करना चाहते हैं उसका यह सोचना उचित नहीं है। उसको ऐसा नहीं सोचना चाहिये। जैसे स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी (Student) के लिए स्कूल का युनिफार्म आवश्यक होता है उसी तरह आध्यात्मिक साधना में आरूढ़ होने वाले को भी तदनु रूप युनिफार्म / परिधान का अवश्य विवेक रखना चाहिये। भरत चक्रवर्ती को अरिसा भवन में केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया था। उनकी मोक्ष भी निश्चित थी। उनके लिए घर और जंगल, निर्वस्त्र और सवस्त्र कोई महत्व नहीं रखता था फिर भी आध्यात्मिक अनुशासन में कहीं अविधि न हो एतदर्थ देव दुष्य परिधान को स्वीकार कर वे राजमहलों से चल पड़े थे।

उस महान् धर्म साधना का छोटा सा रूप ही सामायिक है। इस सामायिक मात्र से आप सब प्राणियों में ऐसा अनूठा सद्भाव जगा सकेंगे कि जिसके सुन्दर रूप से आकर्षित होकर देवता भी आपको नमस्कार करने लगेंगे। आपने सुना ही होगा कि कुण्डकौलिक श्रावक की सामायिक बड़ी अद्भुत होती थी। वह अपने शरीर के सारे वस्त्राभूषण को उतार कर अलग रख देता था और चिन्तन करता था कि इन सब सांसारिक चीजों के प्रति मेरा कोई ममत्व भाव नहीं, क्योंकि मैं तो साधु-अवस्था के समान सामायिक व्रत में बैठ रहा हूँ। जैसे साधु सभी अट्टारह पापों का तथा सम्पूर्ण परिग्रह का परित्याग करता है, इसी तरह सामायिक काल में साधक का मूर्च्छा भाव भी समाप्त हो जाना चाहिये। आप सोचिये कि जब आप सामायिक में बैठते हैं तो क्या मूर्च्छा भाव का परित्याग कर लेते हैं। सामायिक में बैठे हैं तो गहने, कपड़ों की बात छोड़िये आपकी नजर में पड़ जाय कि कोई आपकी पुरानी चप्पलों को चुराये हुए चला जा रहा है— उस पर भी क्या आप मानसिक स्थिरता बनाये रख सकते हैं ? यह आप ही के चिन्तन का विषय है। कुण्डकौलिक श्रावक जब सामायिक में बैठा हुआ था तो देवता ने उसके मूर्च्छा भाव की परीक्षा ली। उसके बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों को देवता ने देव माया से हस्तगत करके आकाश में से उन्हें दिखा-दिखाकर उस श्रावक का ध्यान भंग करने लगा, किन्तु उसकी सारी कोशिश व्यर्थ गयी। श्रावक का तो रोम-रोम सामायिक के रस में भिदा हुआ था, उसका ध्यान ही नहीं गया कि कब देव आया और कैसे वह

उसके वस्त्राभूषण छीनकर उसमें ध्यान भंग की चेष्ट कर रहा था ? फिर उस देव ने उस श्रावक के सामने उपस्थित होकर कहा कि गोशालक का मत सही है और महावीर का मत गलत है। फिर भी श्रावक के मुख पर क्रोध का लेश मात्र भी अंश नहीं आया। उसके मुख पर तो तब भी समत्व की आभा ही खेलती रही। अन्त में देव ने अपनी पराजय स्वीकार की तथा श्रावक के चरणों में अपना माथा टेक दिया।

देव दर्शन की ऐसी ही साधना पद्धति के अनुसरण करने वाले थे महाराज चन्द्रसेन।

महाराज चन्द्रसेन भी द्रव्य सामायिक का उपहास करते थे। पर जब से उन्होंने यह जान लिया कि द्रव्य सामायिक भाव सामायिक की पूरक है, तब से वे स्वयं द्रव्य सामायिक यानी सामायिक के योग्य परिधान स्वीकार कर सामायिक साधना करने लगे थे।



7

कोई भी कार्य करने की दो पद्धतियां हो सकती है। एक तो यह कि सामने वाले के ज्ञान—अज्ञान अथवा स्वीकृति—अस्वीकृति का कोई ध्यान रखे बगैर मनमाने ढंग से अपने काम को करवा लेना, चाहे उसमें सामने वाले के साथ अन्याय या अत्याचार ही क्यों न करना पड़े ? दूसरी पद्धति यह हो सकती है कि पहले तो आप स्वयं अपने कार्य की समीक्षा करें और उसकी सार्वजनिक उपयोगिता को जांचें। उस कसौटी पर खरे उतरने के बाद आप अपने कार्य का अभिप्राय सामने वाले को समझावें तथा उसे सहमत करें। उसके बाद आपसी समझ एवं शान्ति के साथ ही काम को पूरा करें। दोनों पक्षों की समझपूर्ण सहमति से किया गया काम जहां किसी प्रकार की दुर्भावना अथवा कटुता पैदा नहीं करता तो वहां एक कार्य को पूरा करने के लिए एक की बजाय दोनों पक्षों का सुन्दर सहयोग मिल जाता है। दूसरी पद्धति की सफलता समत्व योग की सही साधना पर निर्भर करती है। महारजा चन्द्रसेन ने अपनी समता एवं सौम्यता के कारण दूसरी प्रकार की पद्धति ही अपनाई।

सामायिक साधना के पूर्ण हो जाने पर वे अपनी योजनानुसार अश्वारूढ़ हो निकटवर्ती किसी नगर में पहुंचे। वहां से सुगन्धित पुष्पों की टोकरियां, इत्र, गोरस, केशर, मिश्री, अगरबत्तियां एवं अन्य सुगन्धित पदार्थ लेकर वे पुनः चम्पा वाटिका के पास पहुंचे। उन्होंने वाटिका के निकटवर्ती सारे भू-भाग को साफ किया। पानी छिड़ककर उस भू-भाग को शीतल किया। इसके पश्चात् सर्प आने के कुछ समय पूर्व व्यवस्थित ढंग से फूलों को बिछाया। फिर वहां इत्र का भी छिड़काव किया और स्थान—स्थान पर सुगन्धित पदार्थ बिखेर दिये। जिससे आस—पास का सारा वन प्रतर

सुरभित हो उठा। अगरबतियां लगा देने पर वह सौरभ और महक उठी।

सर्पराज के निकलने का समय नजदीक आ रहा था, उन्होंने स्फूर्ति के साथ केशर और मिश्री को शीतल गोरस से घोलकर गोरस के कई कटोरे बिछाये गये फूलों पर भिन्न-भिन्न स्थान पर रख दिये और स्वयं वृक्ष पर चढ़ कर नागराज का इन्तार करने लगे।

कुछ ही समय में नागराज कल की भांति आज भी वापी से बाहर निकला। बाहर के सौरभमय वातावरण से नागराज निर्लिप्त नहीं रह सका। वह उस भीनी-भीनी सुगन्ध पर मुग्ध हो गया और उन फूलों पर इधर से उधर लौटने लगा। कभी वह फूलों पर लौटता तो कभी दूध के कटोरों से सुगन्धित मधुर पेय पीने लगता। इस क्रिया में वह इतना मुग्ध हो गया कि वह अपने आपको भूल गया। महाराज चन्द्रसेन नागराज की इस प्रसन्नता का अनुमान लगा रहे थे। जब उन्होंने देखा नागराज अब पूर्णतया प्रसन्नता की मुद्रा में हैं तो वे धीरे से वृक्ष से नीचे उतरे और मणिधर को नमस्कार कर निवेदन करने लगे— आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपके दर्शन हुए। मैं आज अपने आपको कृत पुण्य एवं धन्य-धन्य मान रहा हूँ।

महाराज को अपने सामने खड़ा देखकर नागराज अपलक उन्हें निहारने लगा, इससे महाराज ने अनुमान लगाया कि शायद यह मेरा परिचय जानना चाहता हो। तब महाराज कहने लगे—हे महामहिम नागराज ! आप यदि मेरा परिचय जानना चाहते हों तो वह यह है कि इस भारत की सुप्रसिद्ध चम्पा नामक नगरी की जनता का मैं सेवक हूँ, यद्यपि जनता ने मुझे अपना शीरस्थ मान रखा है तथापि मैं तो अपने आपको उसका सेवक ही मानकर चल रहा हूँ। आपके दर्शनों का भी सौभाग्य उस जनता की भावना से ही मिला है। जनता की भावना थी कि मेरे पीछे भी उनकी सेवा करने वाला कोई मेरे जैसा व्यक्ति उनको मिले। उनके इस आग्रह के कारण कुलदेवी द्वारा प्रेरणा पाकर मैं आपके दर्शनों को उपस्थित हो गया। इस सेवक को चन्द्रसेन नाम से पहचाना जाता है।

बन्धुओं, विचार कीजिए एक राजनपति राजा चन्द्रसेन अपना परिचय किस रूप में दे रहे हैं। वे अपने को जनता का सेवक मान कर चल रहे हैं। आज के मेरे भाई यदि छोटी सी कोई सरकारी पोस्ट पा लेते हैं तो आसमान में उड़ने लगते हैं। अपने आपको बहुत बड़ा आफिसर अथवा नेता

मानकर चलने लगते हैं। यह क्या स्थिति है ? पर दोष उनका नहीं है। वे क्या करें ? उनको वैसा ही आदर्श मिला और वैसी ही शिक्षा। मुझे एक रूपक याद आ रहा है। उसे आपके समक्ष रख दूँ, आप स्वयं आज की शिक्षा पद्धति को पहचान सकेंगे।

एक पटेल ने अपने पुत्र को खूब अध्ययन करवाया। पटेल विचार करता था कि मैं तो निरक्षर रह गया पर मेरा बच्चा अनपढ़ नहीं रहे, जितना पढ़ना चाहे उसे पढ़ाऊंगा। इसी भावना से वह उसके पढ़ने की व्यवस्था का भी पूरा खयाल रखता था। उससे सम्बन्धित हर आवश्यकता को पूर्ण करता था। इसके साथ-साथ वह अपने पुत्र से समय-समय पर पूछता भी रहता था कि आज स्कूल में क्या पढ़ाया ? इस तरह उस पुत्र की पढ़ाई चलती रही, उसने कॉलेज की सारी डिग्रियां प्राप्त कर लीं। जिससे सरकारी अच्छी पोस्ट भी मिल गई। उसने कुछ ही समय में नया बंगला भी बना लिया, शादी भी हो गई, शादी के प्रसंग से उसने पिता से स्वीकृति लेकर नये बंगले में अपने साथियों को प्रीतिभोज-जिसे आप लोग टीपार्टी कहते हैं, देने की तैयारी की। आमन्त्रित सज्जन भी अच्छी पोस्टों पर कार्यरत थे। कोई प्रोफेसर था, तो कोई राजकीय अधिकारी, न्यायाधीश आदि। यथासमय सब निर्देशित स्थान पर पहुंच गये। उस पटेल ने विचार किया आज मेरे पुत्र ने बड़े-बड़े व्यक्तियों को बुलाया है। इसलिए मुझे भी वहां उपस्थित रहना चाहिए। जिससे उन सबसे मेरा परिचय करवायेगा। इस मनसूबों के साथ वह भी अपनी पटेललाई पोशाक सजाकर बंगले में पहुंचा। नई फैशन के अनुसार मेज (डाइनिंग टेबल Dinning Table) के चारों तरफ कुर्सियां पड़ी थीं। उनमें से एक-दो कुर्सी खाली पड़ी थीं। वह पटेल एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया। उसका बैठना ही था कि एक बड़े ऑफीसर ने उस पटेल के पुत्र से उसका परिचय पूछा। वह पटेल का पुत्र विचारने लगा, इनका क्या परिचय दूँ ? यदि इनको मेरा पिता बताऊंगा तो मेरी हंसी होगी। यदि अन्य परिचय दूंगा तो पिताजी कूपित हो सकते हैं। अतः उसने अंग्रेजी में परिचय दिया—**He is my servant**, पटेल ने जैसे ही यह परिचय सुना तो वह आग बबूला हो उठा, यद्यपि वह अंग्रेजी का विशेष जानकार नहीं था, पर अपने पुत्र से ही जब वह स्कूल के अध्ययन के विषय में पूछता था, तो उस समय वह बतलाता था कि आज हिन्दी में यह बतलाया, इतिहास में यह बतलाया, अंग्रेजी में यह बतलाया

आदि। उस समय वह अंग्रेजी के कुछ शब्दों को बोल कर भी बताता था कि आज अंग्रेजी में बतलाया कि पिता को फादर (Father) कहते हैं, माता को मदर (Mother) कहते हैं, नौकर को सरवेन्ट (Servant) कहते हैं आदि। उनमें से कुछ शब्द उसके पिताजी को याद रह गये थे, जिससे उसने जान लिया कि मेरा वास्तविक परिचय नहीं दिया जा रहा है बल्कि मुझे नौकर ठहराया जा रहा है। क्या मैंने इस दिन के लिए ही इसे पढ़ाया था ? वह कुर्सी से उठा और अपने पैर की जूती खोलकर पुत्र के सिर पर दे मारी। यह अनहोनी घटना थी। इस घटना ने सबको स्तम्भित कर दिया। एक व्यक्ति के मुंह से सहसा यह शब्द निकले, अरे ! यह क्या ? पटेल ने निर्भयता के साथ कहा—साहब यह क्या ? यह मैं बताता हूँ। मैंने इसको इसलिए नहीं पढ़ाया था कि सभ्य व्यक्तियों के समक्ष मेरा इस प्रकार परिचय दे। साहब, मैं इसकी माँ का खसम हूँ।

यह सुनते ही सारे अतिथि पटेल के पुत्र की तरफ मुंह करके कहने लगे—आपने ऐसा क्यों किया ? आप यदि इनका सही परिचय देते तो इसमें क्या हर्ज था ?

बन्धुओ, विचार करिए, यह कैसी शिक्षा है ? इसलिए नीतिकारों ने कहा है—

“द्विसप्तति कलाज्ञानं, तदप्यज्ञो जनोभवेत्
सर्वकलाप्रधाना या, धर्मकला न धारिता”

यानी पुरुषों के योग्य बहत्तर कलाओं का ज्ञान हो जाने पर भी सर्वकला में प्रधान धर्मकला का जिसने ज्ञान नहीं किया हो तो वह पुरुष अज्ञ ही रहता है। वह वस्तुतः विज्ञ नहीं हो सकता।

महाराज चन्द्रसेन अन्य कलाओं के साथ—साथ धर्मकला में भी प्रवीण थे, समभाव की आराधना में तत्पर रहते थे। अतः वे महाराज होते हुए भी अपने आपको जनता का सेवक बतला रहे हैं।

सर्पराज महाराज चन्द्रसेन का परिचय पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने तत्काल सर्प से मानव का रूप बनाया और कहा— महाराज, मैं आपका स्वागत करता हूँ। आपका परिचय पाकर मैं आपके यहां आने के उद्देश्य को जान गया हूँ। मेरे पास वाली मणि प्राप्त करने से आपकी एवं आपकी प्रजा की मनोकामना फलीभूत होगी। कुलदेवी द्वारा इस प्रकार का

आपको निर्देश दिये जाने से आपका यहां पर्दापण हुआ है। इस मणि को प्राप्त करने के लिए अनेक दुष्ट व्यक्ति यहां पर आये और उन्होंने हिंसात्मक तरीका अपनाकर मणि हथियाने के कई प्रयास भी किये, पर वे सफल नहीं हो सके। किन्तु आपने अपने सद्व्यवहार से मेरा अन्तर्मानस जीत लिया है। इतना कह नागराज ने पास वाली मणि को चन्द्रसेन के हाथ में थमाते हुए कहा—यह लीजिये, यह मणि आपकी मनोकामना की सफलता में सहयोगी होगी। महाराजा चन्द्रसेन कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि कुछ क्षण पहले यह सर्प के रूप में थे, अब यह मानव के रूप हैं। यह मणि भी सहसा मेरे हाथ में सौंप रहे हैं। कहीं यह सब मायाजाल तो नहीं है। चन्द्रसेन को गंभीर मुद्रा में देखकर नागराज पुनः कहने लगा। महाराज ! मैं जन्मजात सर्प नहीं हूं। मैं विद्याधर श्रेणी में रहने वाला विद्याधर हूं। मैंने अन्यान्य विद्याओं के साथ नाग विद्या भी सिद्ध कर रखी है। मेरा सर्प रूप बना कर रहने के पीछे भी रहस्य है। वह यह है कि मेरे एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्री है। उसने जैसे ही यौवनावस्था में पैर रखा, अनेक विद्याधर राजा एवं राजकुमार उसे प्राप्त करने के प्रयास करने लगे। संयोगवश एक बार विशिष्ट ज्ञानी जंघाचरण मुनि के दर्शनों का लाभ मिला। तब मैंने उनसे मेरी पुत्री का भविष्य जानना चाहा, तब उन्होंने अपने ज्ञान का उपयोग लगा कर बतलाया कि मेरी पुत्री का विवाह चम्पा देश के महाराजा चन्द्रसेन के साथ होगा। किन्तु इसके लिए मेरे को चम्पा वाटिका पर आपका इन्तजार करते हुए रहना पड़ेगा। जिससे मेरी पुत्री विश्वसुन्दरी की भी सुरक्षा हो सकेगी। इस पर मैंने यह भी जानना चाहा कि चम्पावापी पर उनके आगमन की सूचना में कैसे जान पाऊंगा। तब मुनिश्री ने मुझे बतलाया कि चन्द्रसेन विलक्षण प्रतिभा का धनी है। उनका आगमन उनके सद्व्यवहार से ही आपको ज्ञान हो जायेगा। इसके लिए आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। तदनुसार मैं तब से अपनी पुत्री विश्वसुन्दरी के साथ यहाँ रह रहा हूं। इतना कह नागराज चुप हो गये।

नागराज ने कुछ क्षणों के पश्चात् पुनः बोलना प्रारम्भ किया— आपने यहाँ आकर मेरे पर बड़ा उपकार किया है। जब से मैंने उन विशिष्ट ज्ञानी महात्मा के दर्शन किये हैं तब से मेरा मन संसार से उचट गया है। मैं सर्व विरति चारित्र स्वीकार करना चाहता था पर पुत्री का उत्तरदायित्व होने से इतने समय तक रूका रहना पड़ा है। मैंने अपने मन में दृढ़ संकल्प कर

रखा था कि पुत्री के अनुरूप योग्य वर मिलते ही पुत्री का उत्तरदायित्व उस पर सौंपकर मैं संयम स्वीकार कर लूंगा। तदनुसार आप मेरी पुत्री के लिए सब तरह से सुयोग्य वर हैं। अतः अब आप इस मणि के माध्यम से इस जलाशय (वापी) में प्रवेश कर मेरी पुत्री विश्वसुन्दरी के साथ पाणिग्रहण करें। यह मणि मैं आपको दहेज रूप में ही दे रहा हूँ। क्योंकि मैं अब यहीं से अकिंचन होकर आत्म साधना के लिए रवाना होना चाहता हूँ, पर हां, एक बात और आपको बता देना चाहता हूँ कि मेरी पुत्री बड़ी बुद्धिमती है। वह जो कुछ कहेगी अथवा करेगी आपके हित के लिए कहेगी, करेगी। इसलिए उसकी किसी बात को न मानने से कभी आप दोनों पर भयंकर विपत्ति के बादल भी मंडरा सकते हैं।

चन्द्रसेन ने सारी बात ध्यान से सुनी और विचार किया कि शायद कुलदेवी द्वारा आगे का रहस्य प्रकट न करने का यही आशय हो कि मैं इस मणि और कन्या को स्वीकार करके ही जनता की भावना की पूर्ति कर सकूँगा। चन्द्रसेन ने भी तब भाव विह्वल होकर उत्तर दिया—आप साधना के क्षेत्र में तुरन्त ही अग्रगामी होना चाहते हैं। अतः मेरे अग्रज हो ही गये हैं। ऐसी अवस्था में मैं आपकी आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ। इतना कह नरराज विद्याधर राजा के सन्मुख नत मस्तक हो गया।

राजा की स्वीकृति से वह नागराज गद्गद् हो गया था कि अब अपने उद्देश्य पूर्ति की दिशा में तत्क्षण प्रस्थान कर सकता है। उसने आभार पूर्वक चन्द्रसेन को गले लगाया और कहा—मैं आपकी स्वीकृति से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। क्योंकि इससे मुझे तुरन्त ही आत्म-कल्याण की साधना आरम्भ करने का अवसर मिल गया है। मैं हृदय से आपका कृतज्ञ रहूँगा। अब आप मेरे निर्देश को ध्यान पूर्वक सुन लीजिये। आप अभी ही इस मणि को अपने हाथ में रख लीजिये और बावड़ी की सीढ़ियाँ उतर कर निर्भयतापूर्वक पानी में घुस जाइये। मणि आगे से आगे मार्ग बनाती रहेगी और आपको सीधे मेरे भव्य भवन में पहुँचा देगी। उस भवन में अकेली मेरी कन्या विश्वसुन्दरी आपको मिल जायेगी। बस, उसके बाद आगे का सारा मार्गदर्शन वह आपको करा देगी। अब आप मुझे अनुमति दीजिये कि यहीं से मैं प्रतिज्ञा पूरी करने की दिशा में बढ़ चलूँ।

इतनी शीघ्रता का अनुमान चन्द्रसेन को नहीं था अतः कुछ हड़बड़ा

कर उन्होंने कहा—क्या आप हमारे शुभ विवाह को भी अपनी आँखों के सामने सम्पन्न नहीं करवायेंगे ? हम दोनों विवाह सूत्र में बन्ध कर आपका आशीर्वाद तो लेना चाहेंगे ।

विद्याधर ने भी भावुक होकर कहा—जब आपने अपनी विवाह हेतु स्वीकृति दे दी है तो मेरे आत्म-विकास में भला आप जैसा समत्व साधक व्यर्थ का विलम्ब क्यों करना चाहेंगे ? जब अन्तःकरण वैराग्य भावों से ओत-प्रोत हो तब एक क्षण का भी विलम्ब उचित नहीं है । भगवान् ने क्या कहा है—क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो । जब तक जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, मैं बन्धा हुआ था किन्तु जब आपने मुझे उससे मुक्त कर दिया है तो फिर पूरी तरह से ही मुक्त क्यों न करदें ? मेरी पुत्री तो सदा ही मेरे आशीर्वाद तले ही बड़ी हुई है और उसके लिए आप जैसा वर पाकर आप समझ सकते हैं कि मैं कितना हर्ष विभोर हूँ ? इसी क्षण में मैं आपको भी अपना हार्दिक आशीर्वाद दे देना चाहता हूँ । आप दोनों को यों समझिये कि अभी मैं एक साथ आशीर्वाद दे रहा हूँ कि आप दोनों का जीवन एकीभूत होकर आपकी प्रजा के लिए परम कल्याण का साधन बन जाय ।

आशीर्वाद की मुद्रा में विद्याधर ने महाराज चन्द्रसेन के मस्तक पर हाथ रखा और अपनी स्नेह पूर्ण मुस्कान बिखेरते हुए वह उसी समय आकाश मार्ग से उड़ चला ।

उस विद्याधर की भावना कितनी उत्कृष्ट थी ? क्या आज के धर्मात्मा भाई उसकी उमंग को समझते हैं ? आप अपनी बात भी छोड़िये, लेकिन कदाचित् आपके परिवार का कोई सदस्य भावपूर्ण यह निश्चय करलें कि मुझे अब संसार में नहीं रहना है तो क्या आप उसकी उमंग को पूरी करने हेतु तुरन्त तैयार हो जाते हैं ? यदि आपकी पुत्री यह कहे कि मुझे तो शादी नहीं करनी तथा दीक्षा लेनी है तो क्या आप उसके कथन को शीघ्र स्वीकृति दे देने की भावना रखते हैं ? यह भी छोड़िये, लेकिन कोई आपके परिवार में विधवा बहिन हो तो वह अपने उत्कृष्ट वैराग्य में दीक्षित होना चाहे, तो क्या उसके मार्ग में भी आप आड़े खड़े नहीं हो जाते हैं ? तरह-तरह के बहाने बनावेंगे और दीक्षा की आज्ञा को आगे से आगे धकेलते रहेंगे । यह नहीं सोचते कि कब कोई काल का ग्रास बन जायगा और दीक्षा के मार्ग में व्यवधान बनकर क्या आप किसी के संयमी जीवन

के प्रति खिलवाड़ नहीं कर बैठेंगे ? काल की सवारी पहले ही आगई तो उसके और आपके सारे मनसूबे धरे ही रह जाते हैं। कोई व्यक्ति इतने अज्ञानी होते हैं कि वे आसानी से किसी भी भव्य आत्मा को अपने उत्थान के मार्ग पर निकलने ही नहीं देते हैं। विद्याधर के उत्कृष्ट विचारों को देखिये कि कन्या के लिये योग्य वर प्राप्त होते ही उसने एक क्षण के लिये भी सांसारिकता में ठहरे रहना उचित नहीं समझा। यहाँ तक कि अपनी कन्या का विवाह अपने हाथों रचाने का मोह भी उसने नहीं किया।

महाराजा चन्द्रसेन के इस हेतु आग्रह पर भी विद्याधर ने भगवान् महावीर के आदर्श वाक्य का ही उल्लेख किया था कि अच्छे काम में लगने के लिये क्षण मात्र का भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। आप सोचिये कि दीक्षा लेने वाला तो एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करना चाहता है किन्तु दीक्षा की आज्ञा देने वाला क्षणों की बजाय उस वैरागी या वैरागिन के कई वर्ष बरबाद कर देता है। क्या आप सोच सकते हैं कि उस प्रवृत्ति से कितने निकाचित अन्तराय कर्मों का बंध हो सकता है ? क्या आप भगवान् के आदर्शों को नहीं मानते ?

यहाँ पर विद्याधर की आत्मा भी शुभ भावों से ओत-प्रोत थी तो चन्द्रसेन की आत्मा भी साधना में रंगी रहने के कारण आत्मकल्याण में अपना सहयोग देने के प्रति जागरूक थी। जब आग्रह करने के बाद भी विद्याधर ने दीक्षा के प्रति अपनी अति उत्कट अभिलाषा व्यक्त की तो चन्द्रसेन ने उसमें किसी तरह की बाधा उपस्थित नहीं की। वे हठ कर सकते थे कि विवाह का अनुष्ठान तो वे पूर्ण करके ही जावें किन्तु किसी भी हलुकर्मी आत्मा की उड़ान को रोकना किसी भी साधक आत्मा का कर्तव्य नहीं है। इसी कारण उन्होंने उसी क्षण विद्याधर को उड़ने दिया।



8

विद्याधर तो तत्काल दीक्षा ग्रहण करने हेतु अपने गुरु मुनि के पास पहुँचने के लिये आकाश मार्ग से उड़ गया किन्तु उसकी साधना तत्परता से महाराजा चन्द्रसेन अत्यधिक प्रभावित हुए। उनका श्रावक हृदय भी मनोरथ चिन्तन में लीन हो गया। उनका यह चिन्तन चलने लगा कि वह दिन धन्य होगा जब मैं भी इसी तरह संसार के समस्त बन्धनों को त्यागकर आत्म-कल्याण हेतु साधु धर्म को अंगीकार कर लूँगा।

इस आन्तरिक चिन्तन के साथ ही उन्हें उस समय के तात्कालिक कर्तव्य का ध्यान आया। अब तो उनका अपना उद्देश्य तथा उस विद्याधर का दायित्व एकरूप हो गया था, अतः उन्होंने विश्वसुन्दरी के पास पहुँचने का उपक्रम किया। उस ऊँचे स्थान से उन्होंने वह मणि हस्तगत की तथा उसे लेकर वे बावड़ी की सीढ़ियों पर नीचे उतरने लगे। जब वे जल के किनारे पहुँचे तो मणि हाथ में होने की वजह से पानी के बीच स्वतः ही मार्ग बन गया और वे उस मार्ग पर चलते हुए विद्याधर के भवन में प्रविष्ट हो गये।

चन्द्रसेन ने देखा कि भवन जितना विशाल है, उतना ही सादगी से सजा हुआ है। वे भीतर तक गये तो उन्हें एक कक्ष में विश्व सुन्दरी सामायिक साधना में संलग्न दिखाई दी।

विश्वसुन्दरी भी अपने पिता के सुसंस्कारों की छाया में पली पोषी थी इसलिये वह भी सामायिक साधना का निरन्तर अभ्यास करती थी। वह कुमारिका थी किन्तु युवावस्था को प्राप्त थी या यों कहें कि प्रौढ़ यौवन काल में थी क्योंकि उसके पिता योग्य वर की खोज में लगे हुए थे। किसी भविष्यवक्ता ने जब उस विद्याधर को भविष्यवाणी की कि उसकी कन्या के

लिये योग्य वर उसे चम्पा नामक बगीचे में मिलेगा तो तब से विद्याधर ने उस बगीचे की बावड़ी के तले अपना भवन बनाकर निवास करना आरम्भ कर दिया। उसको उस भविष्यवक्ता ने यह भी बता दिया था कि चन्द्रसेन महाराजा किस निमित्त से चम्पा बगीचे में पहुँचेंगे। उस दृष्टि से उस विद्याधर ने सदा सर्प के रूप में मणि लेकर बाहर निकलने का क्रम बनाया। भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और बताये हुए दिन ही उसकी महाराजा चन्द्रसेन से चम्पा बगीचे में भेंट हो गई।

संयोग की विचित्रता देखिए कि चन्द्रसेन तो उस सर्प रूपी विद्याधर से मणि प्राप्त करने की उत्सुकता के कारण बात करना चाहता था तो विद्याधर उक्त भविष्यवाणी के आधार पर महाराजा चन्द्रसेन से भेंट करने का उत्सुक था। दोनों की उत्सुकता का एक संगम हो गया। विश्वसुन्दरी को भविष्यवाणी की तो जानकारी थी किन्तु यकायक चन्द्रसेन के उसके भवन में प्रवेश करने से वह हड़बड़ा गई। वह सोचने लगी कि यह अजनबी आदमी कौन हैं ? उसके मन में यह आशंका भी पैदा हुई कि न जाने किसी ने उसके पिताजी की घात करके मणि प्राप्त करली हो और वैसा हिंसक पुरुष उस मणि की सहायता से यहां घुस आया हो।

किन्तु विश्वसुन्दरी बुद्धिशालिनी और विद्या सम्पन्न थी। प्राचीन काल में कन्याओं को चौसठ कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। वे स्वावलम्बन का पाठ भी पढ़ती थीं तथा अपने सामान्य व्यवहार में वे अबला नहीं, किन्तु सबला के रूप में दिखाई देती थीं। आज उन कलाओं की तरफ किस का ध्यान है ? क्या आज की कन्याएँ सबला हैं या अबला ? आज उन्हें कहीं बाहर अकेली जाना होता है तो साथ में कोई पुरुष चाहिए। अकेली जाने का उनसे साहस नहीं होता है। इसके सिवाय कोई साहस करती है तो वे किस प्रकार दुस्साहसी हो जाती हैं यह आप लोग ही जानें। वर्तमान शिक्षा जगत् में जिस प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का क्रम चला है और उनके अन्तर्गत जिस प्रकार से खुले मंचों पर कन्याओं के नृत्य दिखाये जाते हैं, वे हमारी नैतिक संस्कृति के अनुकूल नहीं होते हैं। आज के माता-पिता अपनी बच्चियों को इस तरह स्टेज पर नाचती हुई देखकर खुश होते हैं, किन्तु इस पद्धति का कैसा कुप्रभाव उनके जीवन पर पड़ता है, उसका समय रहते ही वे आकलन नहीं कर पाते हैं, फलस्वरूप चरित्र सम्बन्धी दोष उत्पन्न होते हैं, जिनसे आगे जाकर दुःखभरी परिस्थितियां

पैदा हो जाती हैं। नृत्य कला एक प्रकार की कला है। पहले भी यह कला कन्याओं को सिखाई जाती थी, किन्तु उनका नृत्य अन्य पुरुषों के समक्ष नहीं कराया जाता था ताकि उनका शील शालीन बना रहे। विश्वसुन्दरी कलाओं की जानकार थी, लेकिन शीलवती और शालीन स्वभावी थी। उसने चन्द्रसेन को दूर से जब भीतर घुसते हुए देखा तो वह सावधान हो गई। अब तक उसकी सामायिक भी पूर्ण हो चुकी थी। अतः अपनी साधना समाप्त कर उसने आत्मरक्षा की तैयारी की। धनुष बाण हाथ में लेकर वह चन्द्रसेन के सामने पहुंची। उसने कड़कते हुए शब्दों में पूछा—बिना पूछे मेरे भवन में प्रवेश करने वाले तुम कौन हो ? तुम्हारे हाथ में मेरे पिताजी की मणि कैसे पहुंच गयी है ? मेरे पिताजी कहां हैं ? इस तरह उसने नवागन्तुक के सामने प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

चन्द्रसेन उस वीरबाला की तरफ देखते हुए कुछ देर मन्द—मन्द मुस्कराते रहे, बोले कुछ नहीं। विश्वसुन्दरी गरज उठी—यदि आपने किसी धूर्तता अथवा क्रूर कर्म से मेरे पिताजी की मणि प्राप्त करली है और अब इस भवन पर अपना अनुचित अधिकार जमाने के लिए आने का दुस्साहस किया है तो सावधान हो जाइये और पहले मुझ से दो—दो हाथ कर लीजिये। मैं वीर कन्या हूं और वीरता के साथ आत्मरक्षा करने की कला जानती हूं। आप किसी भ्रम में न रहें।

चन्द्रसेन भी चरित्र सम्पन्न पुरुष थे। वे परस्त्री को माता और बहिन के समान ही समझते थे। यद्यपि वहां पर उस समय वे भिन्न परिस्थिति में खड़े थे। वे जानते थे कि इस युवा रूपवती के साथ उनका विवाह होना है। फिर भी उस समय सम्पूर्ण भवन में विश्वसुन्दरी के एकाकी होने के बावजूद उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। जब वह वीरबाला युद्ध करने के लिए सामने खड़ी हो गई तो उन्हें मन ही मन प्रसन्नता हुई कि नारी हो तो ऐसी जो आत्मरक्षा में सन्नद्ध हो। अपनी भीतरी प्रसन्नता को उन्होंने मात्र अपनी मुस्कान में ही प्रकट की। उसी तरह मन्द—मन्द मुस्कराते हुए वे बोले— तुम किस के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गई हो ? क्या तुम अतिथि का महत्त्व भी नहीं जानती हो ? मैं तुम्हारे यहां एक मान्य अतिथि के रूप में आया हूं और तुम हाथ में शस्त्र उठा कर सामना करने के लिए आ गई हो— यह तुम्हारा कौनसा शिष्टाचार है ?

अपने प्रश्नों के उत्तर में नवागन्तुक के ये प्रश्न सुनकर विश्वसुन्दरी हतप्रभ सी हो गई। वह विचार में पड़ गई कि यह कैसी वस्तुस्थिति है ? उसे यह भी आभास हुआ कि सामने उपस्थित पुरुष न तो हिंसक हो सकता है और न ही क्रूरकर्मी। वह तो असाधारण पुरुष सा दिखाई दे रहा है— एक शान्त और सौम्य पुरुष जो उसे ही उसके कर्तव्य का भान दिला रहा है। उसके हाथ में कोई शस्त्र भी नहीं है और उसके मुख से भी फूलों की तरह मधुर शब्द झड़ रहे हैं। उसे समझ में आ गया कि उसकी आशंकाएं निराधार हैं। उसके तन-मन में इस विचारणा के साथ ही हल्कापन आ गया और तनाव मिट गया। तब वह सरल स्निग्ध में महाराजा के सामने खड़ी रही। वह कुछ भी बोल नहीं पा रही थी।

तब चन्द्रसेन ने अपनी सुकोमल वाणी में कहना शुरू किया— देखिये मेरे हाथ में कोई शस्त्र नहीं है कि मैं यहां पर कोई क्रूर कर्म करके और मणि लेकर आया हों। मेरे पास में जो शस्त्र है वह तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि वह प्रेम का शस्त्र है और यह प्रेम का शस्त्र भी मैंने स्वयं ने नहीं उठाया है बल्कि तुम्हारे पूज्य पिताजी ने ही मुझे सौंपा है। तुम शान्ति और धैर्य रखो, मैं तुम्हें पूरा विवरण सुनाता हूँ। निश्चिन्त हो जाओ कि मैंने छल-कपट पूर्वक कुछ भी नहीं किया है।

विश्वसुन्दरी ने यह सब सुना तो उसके हृदय में विश्वास की ज्योति जल उठी। उसे उक्त भविष्यवाणी का भी ध्यान था ही। उसने अपने हाथ के शस्त्र को दूर रखा और सिंहासन पर बैठने का उसने आगन्तुक से आग्रह किया। चन्द्रसेन भी अपनी होने वाली कन्या की आंखों में झांक रहे थे और उसके चरित्र के विभिन्न पहलुओं को कौतूहल से देख रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि परिस्थितिवश उसकी आंखों में चंचलता आई किन्तु उसके साथ वीर रस भी जागृत हुआ। वस्तुतः उसका रूप-स्वरूप अलौकिक है लेकिन उसमें गम्भीरता है, शालीनता है तथा सौम्यता है। उन्होंने मान लिया कि वह एक नारी रत्न है।

ज्योंही महाराजा चन्द्रसेन सिंहासन पर बिराजे तो विश्व सुन्दरी हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई और कहने लगी—महाशय, मेरी भूल के लिये आप मुझे क्षमा करें। मैं नहीं जान रही थी कि आप मेरे पिताजी से आज्ञा लेकर ही यहाँ अतिथि के रूप में पधारे हैं। कृप्या आप जलपान करके मेरी

जिज्ञासा को शान्त कीजिये कि आपका यहाँ आगमन किस प्रकार एवं किस रूप में हुआ है ? यह कहकर विश्वसुन्दरी चन्द्रसेन के जलपान हेतु भीतर से विविध व्यंजन लाने में लग गई। जलपान के बाद महाराजा चन्द्रसेन ने उसे पूरा विवरण सुनाया कि किस उद्देश्य से वे इस चम्पा नाम के बगीचे में आये, किस तरह वहाँ मणिधारी सर्प के रूप में उसके पिताजी से भेंट हुई और उनके सत्कार और स्नेह से कैसे वे परम हर्षित हुए ? उन्होंने यह बताते हुए विश्वसुन्दरी को अपना परिचय भी दिया और नाम भी बताया। नाम सुनते ही विश्वसुन्दरी सब कुछ समझ गई। तब चन्द्रसेन ने कहा कि जब उन्होंने उसके पिताजी की, जिम्मेदारी स्वयं ले लेने का वचन दिया तो वे तुरन्त दीक्षा ग्रहण करने के लिये वहीं से आकाश में उड़ गये। उनके निर्देशों के अनुसार ही वे उनकी मणि लेकर भवन में उपस्थित हुए हैं।

तत्क्षण विश्व सुन्दरी अपने होने वाले पति के चरणों में झुक गई और चरण स्पर्श करके बोली—आपका नाम सुनते ही भविष्यवाणी के अनुसार मैं सब कुछ समझ गई हूँ तथा इस सम्बन्ध में सारी बात मुझे मेरे पिताजी बता चुके हैं। सिर्फ यह नहीं बताया था कि वे इस तरह यकायक चले जायेंगे। धन्य हैं वे, जो उन्होंने अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया। उनकी उच्चसमता साधना के अनुसार मैं सोचती हूँ कि वे मोहग्रस्त होने वाले पुरुष ही नहीं थे। वे तो प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि कब आपका पदार्पण हो और कब वे मेरा हाथ आपको सौंपकर इस कर्तव्य से मुक्त हो जाय। वे भाग्यशाली हैं कि उन्हें अपना वांछित अवसर मिल गया है। किन्तु मैं भी कौनसी कम भाग्यशाली हूँ जो आप जैसे गुणवान जीवन—साथी मिल रहे हैं।

इस संसार में कई तरह के स्वभाव वाले माता—पिता होते हैं। कुछ तो ऐसे भी होते हैं, जो केवल सन्तान को जन्म देने वाले होते हैं। विरले ही होते हैं, जो सन्तान की जीवनोन्नति के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। कई माता—पिता पहले अपने स्वार्थों को देखते हैं और उन्हें पूरे करने के लिए अपनी सन्तान का उपयोग कर लेते हैं। किन्तु विश्वसुन्दरी के पिता ने अपनी पुत्री के जीवन को संस्कार सम्पन्न एवं सुखी बनाने के लिए कड़े कष्ट सहन किये और उसे योग्य वर को सौंप कर ही अपनी आगे की राह ली। भविष्य वक्ता द्वारा जानकारी लेने पर ही वे यहाँ रहने

आये थे और मणिधारी सर्प के रूप में चम्पा बाग में भ्रमण करते रहे थे कि एक दिन उन्हें अपनी बेटी के योग्य वर से भेंट हो सके। अपनी सन्तान के प्रति अपने सभी कर्तव्य पूरे करके ही वे आत्म-साधना के मार्ग पर पहुँचे। अपने पिता के उपकारों का स्मरण करते हुए विश्वसुन्दरी अपने को अति कृतज्ञ अनुभव कर रही थी।

विश्वसुन्दरी ने महाराजा चन्द्रसेन से तब विनयपूर्वक निवेदन किया—आपको मेरे पिताश्री ने जो निर्देश दिये, वे मैंने आपके मुख से सुन लिए हैं और अपने मन की सलज्ज स्वीकृति आपके चरणों में प्रस्तुत कर दी है। अब आप जो भी आज्ञा दें, यह दासी उसे पूरी करने के लिए तत्पर खड़ी है। इसके साथ ही उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली, जो आँसू उपकारी पिताश्री की स्मृति में भी बह रहे थे तो अपने सुखमय भविष्य की प्रसन्नता में भी।

मोती जैसे उन आँसूओं का बहना महाराजा चन्द्रसेन को सहन नहीं हुआ, वे बोले—देवि, तुम्हारे नेत्रों से यह आँसूओं की धारा क्यों बह चली है ? क्या तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार का दुःख तो नहीं जगा है ? अपने मुख पर निश्छल हंसी बिखेरते हुए विश्वसुन्दरी ने कहा—महाराज, ये वियोग और संयोग दोनो के मिले—जुले आँसू हैं। पिताजी इस विवाह अनुष्ठान तक टहर जाते तो अधिक संतोष मिलता। लेकिन उनका मेरे जीवन पर असीम उपकार है, जिसकी अन्तिम कड़ी है कि वे मुझे आपको सर्वश्रेष्ठ संरक्षण में सौंप गये। इस संयोग के भी ये हर्षाश्रु हैं।

विश्वसुन्दरी के आँसूओं को अपनी कोमल अंगुलियों के छोरों से पौँछते हुए चन्द्रसेन ने आश्वस्त करते हुए कहा—कैसे भी हो, इन आँखों में आँसू मैं नहीं देख सकता हूँ। तुम्हारे पिताश्री एक महान् आत्मा हैं, जिन्होंने एक ही पल में मोह का बंधन छिन्न-भिन्न कर दिया और बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये आत्म-कल्याण के मार्ग पर वीतराग भाव से बढ़ गये। मैं भी सामायिक की साधना का अभ्यासी हूँ और मैंने देखा कि तुम्हारा जीवन भी साधना के प्रति ही उन्मुख है। इस दृष्टि से हमारे जीवन का संयुक्त-स्वरूप आदर्श ही बनेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। मेरा विश्वास तो यह भी है कि तुम्हारी कौख से ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो हमारे श्रेष्ठ संस्कारों से सँवर कर मेरे राज्य की प्रजा के लिए अति लोकप्रिय शासक

सिद्ध होगा। यदि तुम्हारी सहमति हो तो आज ही दोनों विवाह-सूत्र में आबद्ध हो जाएं.....।

विश्वसुन्दरी उसका अपने मुख से क्या उत्तर देती-सहमति का संकेत वह व्यक्त कर ही चुकी थी और अभी जो उत्तर उसे देना था वह उसने अपनी लाज भरी आंखों को नीची करके दे दिया। वह तो आनन्दमग्न हो गई कि उसे ऐसा भव्य, सद्गुणी एवं सुन्दर पुरुष पति के रूप में प्राप्त हो रहा है। विवाह का प्रसंग उसके कल्पना लोक में छा गया क्योंकि उसे अपने जीवन की सार्थकता साकार रूप लेती हुई दिखाई दी।

चन्द्रसेन ने ही वार्ता आगे बढ़ाई-देखो, विवाह की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं। यदि वर और वधू दोनों वयस्क हों तथा समान गुण, शील व धर्मधारी हों तो वे बिना किसी साक्षी के भी स्वयमेव विवाह सूत्र में आबद्ध हो सकते हैं। दूसरे, सार्वजनिक विधि से भी विवाह कार्य सम्पन्न हो सकता है। विवाह विधि के सम्बन्ध में तुम्हारा अपना विचार क्या है ? जब विश्वसुन्दरी भी सुशिक्षित थी तो उसे भी अपनी सम्मति तो देनी ही चाहिये। वह बोली-पहली पद्धति भी बुरी नहीं है किन्तु जगत्साक्षी से सार्वजनिक विधि ही उत्तम मानी जानी चाहिये। पिताजी आते तो उनकी साक्षी को ही पर्याप्त मान लेते किन्तु इस समय यही उचित रहेगा कि किसी की साक्षी से ही यह शुभ कार्य सम्पन्न किया जाय। चन्द्रसेन को उसके विचार जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यौवन के उद्दाम आवेग के बाद भी उसका कैसा मनोनिग्रह है ? तरुणाई की यह अवस्था तो ऐसी होती है जिसमें पुरुष या स्त्री दौड़ती ही नहीं, बल्कि आकाश में उड़ती है, किन्तु यह सुन्दरी कितनी सन्तुलित, संयमित और मर्यादाशील है ? उनके हृदय में हर्षावेग बढ़ चला कि अपने उद्देश्यों के अनुकूल यह कितना सुन्दर संयोग बना है ?

चन्द्रसेन ने तब यही कहा-वस्तुतः तुम्हारी सम्मति सर्वथा उचित है। गुप्त विवाह में कोई कुछ भी भ्रम पैदा कर सकता है, इसलिये साक्षी से ही विवाह किया जाना चाहिये। मैं तुम्हारी भावना का सम्मान करता हूँ। मैं अभी बाहर जाता हूँ और किसी को साक्षी के रूप में लेकर वापिस आता हूँ। इतना कहकर वे उठ खड़े हुए और मणि हाथ में लेकर प्रवेश द्वार की ओर बढ़ चले। उनके साथ-साथ ही विश्वसुन्दरी भी शिष्टाचार के रूप में उठ खड़ी हुई और उन्हें द्वार तक पहुँचाने हेतु आगे बढ़ी।

मणि हाथ में लेकर महाराजा बावड़ी से बाहर निकल आये और वहाँ पहुँचे जहाँ उनका चपल अश्व बंधा हुआ था। वे घोड़े पर सवार हुए और निकटस्थ गाँव में पहुँच कर वे किसी विवाह कराने वाले पण्डित की खोज करने लगे। आखिर उन्हें एक पण्डित का पता चला। वे उसके निवास स्थान पर गये और पण्डित से कहने लगे—मैंने सुना है कि आप विधिपूर्वक विवाह संस्कार तो कराते ही हैं किन्तु साथ-साथ वर-वधू को उनके दाम्पत्य कर्तव्यों का बोध भी कराते हैं। आपकी शैली बहुत ही श्रेष्ठ है। क्या आप ऐसा ही उत्तम विवाह संस्कार कराने के लिये मेरे साथ चल सकेंगे ? पण्डित जी साथ चलने को तैयार हो गये, मगर पूछने लगे कि चलना कहाँ होगा ? राजा ने कहा—यहाँ से चम्पा नामक बगीचे में चलेंगे ओर वहाँ की बावड़ी पर पहुँचना है। बावड़ी का नाम सुनते ही पण्डित जी बिदक गये, बोले—वहाँ मैं कतई नहीं चलूँगा क्योंकि मैं जानता हूँ कि वहाँ पर एक मणिधारी विकराल सर्प रहता है। वहाँ पहुँचते ही मृत्यु एक निश्चित बात है। राजा ने समझाया—देखो, वक्त एक सा नहीं रहता, बदलता रहता है। अब बावड़ी पर कोई खतरा नहीं है। मैं वहीं से आ रहा हूँ। मेरा कुछ नहीं बिगड़ा है, फिर भला आपको कोई खतरा कैसे हो सकता है ? और मैं जो आपके साथ रहूँगा। आप अपनी सुरक्षा के बारे में निश्चिन्त रहें। यह कहकर राजा ने पच्चीस स्वर्ण मुद्राएँ पण्डित के हाथ पर धर दीं और कहा कि कार्य सम्पन्न करा लेने के बाद और धन मिलेगा। सोने के पीलेपन ने पण्डितजी को सन्तुष्ट ही नहीं कर दिया बल्कि खुशी से पागल भी बना दिया। उसने इतना सोना एक साथ अपने जीवन काल में कभी नहीं देखा था। वह खुशी-खुशी राजा के साथ हो गया।

उस बावड़ी पर पहुँचते ही एक बार तो पण्डित की कंपकंपी छूट गई और वह चारों ओर सांप की झलक देखने लगा। राजा ने उसे आश्चर्य किया कि तुम्हारा बाल भी बांका नहीं होगा और कोई खतरा आया भी तो पहले मेरे पर आयेगा। मैं आगे-आगे चल रहा हूँ, तुम मेरे पीछे-पीछे चले आओ। लेकिन मैं तुम्हारी आँखों पर पट्टी बांधूँगा और तुम्हारे हाथ को पकड़ लूँगा ताकि तुम भयभीत नहीं होवो। पण्डित मान गया और राजा उसे हाथ पकड़े-पकड़े ठेठ विद्याधर के भवन में ले चले गये।

भवन में पहुँचकर पण्डित की आँखों की पट्टी खोल दी गई। तब वहाँ का दृश्य देखकर वह तो आश्चर्य चकित रह गया। वह समझ भी नहीं

सका कि बावड़ी से वह इस महल में कैसे और किस मार्ग से पहुँचा दिया गया है। वह असमंजस में गिरा हुआ सोचता रहा कि यह तो कोई दैविक रचना है और शायद जो उसे लाये हैं, वे भी कोई देव ही होने चाहिये। भय और हर्ष से पण्डित का मुँह लाल हो गया। तब चन्द्रसेन ने पण्डित को विश्वसुन्दरी का परिचय कराया और बताया कि उसे उन दोनों का विवाह सम्पन्न कराना है।

सबसे पहले पण्डित को विवाह का शुभ मुहूर्त निकालने के लिये कहा गया। पण्डित ने पोथी पत्रा देखा तो उसका चेहरा खिल उठा। उसने हर्षित होते हुए कहा—इस समय सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त विजय मुहूर्त है और इसी भव्य मुहूर्त में विवाह कार्य प्रारम्भ हो जाना चाहिये।

यह आवश्यक नहीं होता कि जैसा पात्र होता है या जैसा उसका भावात्मक व्यवहार होता है, वैसा ही कथन किया जाता हो। सत्य तत्त्व को प्रकट करने के लिये कौन सी बात कितने अंशों में हरेक के लिये आचरण के योग्य होती है, वही सुनाई जाती है—ऐसा न समझें। जैसे यह मुहूर्त की ही बात आई है। कई भाई सन्तों के पास आकर कहते हैं कि मुहूर्त निकाल दीजिये। भगवान् ने कहा है कि समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। मैं मेरी बात कहता हूँ, किसी पर जबरदस्ती थोपता नहीं कि जहाँ समय मात्र के लिये भी विलम्ब न करने का आदेश है, वहाँ भला मुहूर्त के लिये विलम्ब करने की क्या आवश्यकता है ? यदि दीक्षा करवाने वाला मुहूर्त में विश्वास करता है तो मैं उनसे कह देता हूँ कि आप अपनी स्थिति से जो करना चाहो, करो, लेकिन ऐसी साधना के कार्य में मुहूर्त के विश्वास को मैं मानसिक रोग के समान समझता हूँ। मैं एक बार जावरा में था, तब लोगों ने वहाँ के ख्यातिप्राप्त राज ज्योतिषि जी से मुहूर्त निकलवाने का सुझाव दिया। मैंने उनसे पूछा कि क्या उनका निकाला हुआ मुहूर्त सदैव शुभ ही होता है ? तब कोई भाई फुस— फुसाया—उनके चार कन्याएँ थीं, बेचारी चारों बाल विधवा हो गईं। फिर मेरे बोलने की जरूरत ही नहीं पड़ी। क्या कोई ज्योतिषी अपनी कन्याओं का विवाह—मुहूर्त बेपरवाही से निकालेगा ? इसे छोड़िये, लेकिन विश्वामित्र जैसे ऋषि ने राम के सिंहासनारोहण का जो मुहूर्त निकाला था, कितनी बड़ी विडम्बना हुई कि उसी मुहूर्त में राम को बनवास के लिये प्रस्थान करना पड़ा। अतः यह मुहूर्त का मामला मन की सन्तुष्टि से अधिक कुछ नहीं होता है।

चन्द्रसेन प्रतिदिन नियमित रूप से सामायिक की साधना करते थे। उन्हें नवकार मंत्र पर अटूट आस्था थी अतः उन्होंने पंडित से कहा—आपने मुहूर्त निकाला सो उत्तम है लेकिन मेरी अभिलाषा है कि यह आप विवाह संस्कार का प्रारम्भ नवकार मंत्र के जाप से करें क्योंकि यह महामंत्र सम्पूर्ण तत्त्वों का सार है। तदनुसार चन्द्रसेन और विश्वसुन्दरी वर—वधू के वेश में विवाह मण्डप में बैठकर मन में नवकार मंत्र का जाप करने लगे तो पण्डित भी मधुर गीतध्वनि में नवकार मंत्र बोलने लगा।

उसके बाद पण्डित ने विवाह विधि चालू की। मंत्रोच्चारण के साथ विधि सम्पूर्ण करके पण्डित ने चन्द्रसेन से कहा—कन्या आपसे प्रतिज्ञा करना चाहती है कि मैं आपकी धर्मपत्नी या अर्धांगिनी तभी बनूँ जब आप मेरे अलावा जगत्साक्षी से संसार की सभी स्त्रियों को माता और बहिन के तुल्य मानें। चन्द्रसेन ने स्पष्ट किया—मैंने इनके सिवाय पहले बारह बारह विवाह कर रखे हैं अतः इन सहित सभी विवाहितों के अलावा मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि संसार की अन्य सभी स्त्रियों को माता और बहिन के तुल्य समझूँगा। तब विश्वसुन्दरी ने भी प्रतिज्ञा की कि मैं इनके सिवाय जिनके साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा जा रहा है, संसार के अन्य सभी पुरुषों को पिता और भाई के तुल्य मानूँगी। यदि दीक्षा ग्रहण करके साध्वी बन जाऊँ तो ये भी मेरे भाई तुल्य हो जायेंगे।

क्या आप लोग अनुभव करते हैं कि इस प्रतिज्ञा के प्रति बहिनें जितनी दृढ़ होती हैं, शायद है पुरुष वर्ग उतनी दृढ़ता नहीं रखता ? इस तथ्य की निश्चितता, अपने अपने घट के भीतर झांकने से ही हो सकेगी। बहिनों की प्रतिज्ञा के प्रति पूरी आस्था होती है किन्तु जब तक दोनों पक्ष दृढ़पूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध नहीं रहते हैं तब तक शुद्धाचरण और संयम की स्थिति नहीं बन पाती है। कदाचित् कायिक वृत्ति पर रोक रह जाती होगी, परन्तु मानसिक वृत्तियों का चलायमान न होने देना बड़ा कठिन रहता होगा।

आज के कई भाई सामायिक को अज्ञान दृष्टि से सोचकर यह कहते हैं कि हमारा मन अंकुश में नहीं रहता है, लेकिन वे यह नहीं समझते कि सामायिक का मूल उद्देश्य ही मन को साधना है—अंकुश में लेना है। सामायिक में बैठने पर वचन और काया की अस्थिरता तो मिटती ही है। इस दृष्टि से काया का चालीस प्रतिशत और वाणी का तीस प्रतिशत मानें,

तब भी सत्तर प्रतिशत सामायिक का हिसाब तो बैठ ही जाता है। वचन और काया की स्थिरता के बल से तब मन की स्थिरता साधने का अभ्यास करते रहना चाहिये। इस तरह धीरे-धीरे ही सही, लेकिन मन की स्थिरता का प्रतिशत भी बढ़ता जायगा और कुछ ही अर्से में सामायिक की साधना पूरी सफलता के साथ साधने लग जायगी। यह अवश्य है कि मन की साधना सहज नहीं होती है। रथनेमि जैसे बड़े-बड़े योगियों का मन भी कभी डिग जाता है। आप यह सोचते हैं कि सामायिक के अड़तालीस मिनिट तक भी मन स्थिर नहीं रहता है और बाहर कल्पनाओं में दोड़ने लग जाता है। इसी कारण आपका विचार संशकित हो जाता है कि मनस्थिर नहीं रह सकेगा और सामायिक के प्रति अज्ञान भाव जम जाता है। मन की कल्पना की दुनिया तो लम्बी चौड़ी होती है अतः सामायिक में पहले वचन और काया की स्थिरता साध लें और तब एकनिष्ठा से मन को नियन्त्रण में करने की चेष्टा करें। किसी भी रूप में सामायिक के नियम को अपने उपेक्षा-भाव में मत रखिये और सामायिक की साधना निरन्तर करते रहिये। यह तो खयाल करिये की अड़तालीस मिनिट तक जब आप सामायिक में बैठे हैं तो कम से कम आपका मन यह तो नहीं कहेगा कि आप भोजन करलें या कि दुकान पर जाकर व्यापार शुरू करदें क्योंकि व्रत लेकर सामायिक तोड़ने का विचार तो नहीं ही बनेगा। इतना ही सोचा जा सकता है कि इस सामायिक के पूरी होते ही भोजन कर लूँगा अथवा दुकान पर जाकर व्यापार शुरू कर दूँगा। इस रूप में सामायिक के चलते हुए इतना भी मन नियन्त्रित हुआ तो वह भी उपलब्धि ही है।

सामायिक-साधना की स्थिरता का जब किसी के जीवन में संचार हो जाता है तो वह संसार के कार्यों को भी स्थिर बुद्धि से सोचकर उन्हें भव्य तरीके से पूरे करता है। ऐसी ही स्थिर वैचारिकता के साथ विवाह संस्कार की सम्पन्नता हो गई। पण्डित को उन्होंने विपुल धनराशि दी। वह प्रसन्नता से फूला जा रहा था कि जीवन में पहली बार उसे इतनी धनराशि मिली है। उसने तब उसे जल्दी घर पहुँचा देने का निवेदन किया। पहले की तरह आंखों पर पट्टी बांधकर चन्द्रसेन उसे बावड़ी से बाहर ले गये और फिर उसके घर पहुँचा आये। चन्द्रसेन पुनः भवन में लौट आये और विश्वसुन्दरी के साथ आनन्द से वहीं रहने लगे।

चन्द्रसेन ने अपना सारा पूर्व वृत्तान्त विश्वसुन्दरी को बताया और अपने जीवन परिवर्तन की कहानी भी सुनाई। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी पटरानी की प्रेरणा तथा सन्तों के समागम से उन्होंने सामायिक कि जिस साधना को पुष्ट किया है उसके माध्यम से उनके जीवन में स्थिरता, धैर्य एवं गम्भीरता आदि गुणों का संचार हुआ है। सामायिक के आनन्द रस से उनका प्रत्येक पल ओत-प्रोत रहता है। अन्त में उन्होंने कहा-हे विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मैं आनन्द विभोर हो रहा हूँ और यह कामना करता हूँ कि तुम मुझे सामायिक के साधना-पथ पर अधिक अग्रगामी बनाओगी।



9

पति और पत्नी की जोड़ी शरीर सम्बन्धों के लिये ही नहीं होती है अतिपु दोनों के बीच में अटूट आत्मिक सम्बन्ध भी माना गया है कि विवाहोपरान्त वे दो शरीर और एक आत्मा हो जाते हैं। आत्मिक सम्बन्ध का यह अर्थ है कि दोनों आत्म-विकास हेतु साथ-साथ में धर्म की आराधना निष्ठापूर्वक करे तथा समता-साधना में एक दूसरे के सहायक एवं पूरक बनें। पति और पत्नी में भी पत्नी पर अधिक दायित्व रखा गया है और इसीलिये उसके पहले धर्म शब्द जोड़ा गया है। पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है, बल्कि पत्नी शब्द का संस्कृत में विश्लेषण किया गया है—पतिं नयति इति पत्नी अर्थात् जो धर्म मार्ग पर पति को अपने साथ-साथ ले जाती है। पति-पत्नी के पारस्परिक दायित्वों को समझते हुए ही चन्द्रसेन ने अपनी धर्म पत्नी विश्वसुन्दरी से कहा था—ओ विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मैं आनन्द विभोर हो रहा हूँ और यह कामना करता हूँ कि तुम मुझे सामायिक के साधना पथ पर अधिक अग्रगामी बनाओगी।

इस अभिलाषा के व्यक्तिकरण के साथ ही चन्द्रसेन ने अपनी समता साधना का भी विश्वसुन्दरी को परिचय दिया—पहले मैं अपने इस दुर्लभ शरीर का दुरुपयोग ही करता था और किसी प्रकार की साधना नहीं करता था। किन्तु मेरी पटरानी ने मुझे अद्भुत प्रेरणा दी तथा सन्तों का संसर्ग कराया जिससे मैं समता-साधना की तरफ मुड़ा। धीरे-धीरे जब मेरा आनन्द रस बढ़ने लगा तो सामायिक में मेरी निष्ठा भी बढ़ने लगी। अब मैं नियमित रूप से साधना करता हूँ और सामायिक किये बिना मुझे चैन नहीं पड़ता है। सामायिक किये बिना मैं भोजन नहीं करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि

तुम भी मेरी तरह सामायिक का कठोर व्रत लेकर चलो। पति-पत्नी का पारस्परिक कर्तव्य ही यह होता है कि वे एक दूसरे को धर्म के मार्ग पर पूर्ण सहयोग देते हुए चलें।

शादी विवाह के प्रसंग को आज दुनिया ने विकृत रूप में ही समझ लिया है। पति-पत्नी यहां पर विषय-वासना के सेवन हेतु ही नहीं है। वे अधिक से अधिक जितना बन सके उतना ब्रह्मचर्य का पालन करें। पति में यदि दृढ़ता का अभाव है तो पत्नी का परम कर्तव्य है कि वह पति को धर्म कार्य में पूर्णरूप से प्रवृत्त करे। वह यदि ऐसा नहीं करती है तो वह अपने कर्तव्य से गिरती है। वैसी अवस्था में उसे धर्मपत्नी नहीं बल्कि कर्म पत्नी ही कहना पड़ेगा। कदाचित् धर्मपत्नी भी धर्म के मार्ग पर नहीं चल रही है तो पति का भी कर्तव्य होता है कि वह उसको धर्म के मार्ग पर चलावे, नहीं तो उसे भी धर्मपति के स्थान पर कर्म पति कहा जायगा। वास्तव में जो धर्म पति है, वह कभी भी गलत रास्ते पर न खुद जाता है और न अपनी पत्नी को ले जाता है। वह पत्नी को अश्लील सिनेमा या वैसे विकारग्रस्त स्थानों पर नहीं ले जाता है। कई फिल्मों विकारी भावनाओं को उभारने वाली होती हैं। कभी पत्नी आग्रह करती है कि सिनेमा चलो, या कभी पति पत्नी को सिनेमा चलने का आग्रह करता है—ऐसा आग्रह न धर्मपति को करना चाहिये, न धर्मपत्नी को। ऐसा आग्रह करने वाले पति-पत्नी मानव तन के रहस्य को नहीं समझने वाले माने जायेंगे। सच्चे धर्म पति और धर्मपत्नी को अपनी वृत्तियों तथा प्रवृत्तियों पर गम्भीर चिन्तन करते रहना चाहिये कि कौनसी वृत्तियां और प्रवृत्तियां उन्हें धर्म मार्ग पर आगे बढ़ाने वाली हैं तथा कौनसी पीछे हटाने वाली ? इस प्रकार के चिन्तन का सुन्दर अवकाश सामायिक की साधना के समय ही प्राप्त होता है अतः सामायिक की साधना किसी भी सुयोग्य दम्पती के लिये परमावश्यक है। इसी बात पर चन्द्रसेन ने विश्व सुन्दरी के समक्ष पूरा बल दिया।

महाराजा चन्द्रसेन की नवीन धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी रूप लावण्य में अद्वितीय थी। पूर्व जन्म में उसने धर्मसाधना की इसलिये उसे सुन्दर तन प्राप्त हुआ एवं विश्वसुन्दरी नाम से विख्यात हुई। लेकिन कोई अगर पूर्व जन्म की कमाई को इस जन्म में खर्च ही करता रहे और नई कमाई नहीं करे तो भविष्य के जीवन का क्या रूपक बनेगा—इस पर आसानी से अनुमान किया जा सकता है। इसलिये इस जन्म में भी पुण्य कर्मों का

उपार्जन करना चाहिये जो शुभ कार्यो के सम्पादन से ही सम्भव हो सकता है। इस दृष्टिकोण के साथ चन्द्रसेन विश्वसुन्दरी के हावभाव पर मुग्ध नहीं हुए, बल्कि सोच रहे थे कि विश्वसुन्दरी को भविष्य में धर्म के मार्ग पर कैसे स्थिर बनावें। वे सोचते थे कि उसके हृदय में अभी ममता अधिक है और समता कम, अतः उसके अन्तःकरण को शुद्ध बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

चन्द्रसेन महाराजा इस उद्देश्य से अपनी नवीन धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी के कार्य कलापों का निरीक्षण-परीक्षण करने लगे। आवश्यकता समझते तो उसके किसी कार्य का बारीकी से भी अध्ययन करते। इस अध्ययन के दौरान उन्हें यह जानकर आश्चर्य होने लगा कि विश्वसुन्दरी विद्याधर की पुत्री होने के बावजूद भी प्रत्येक कार्य में अतीव कुशल है। उन्हें यह अवश्य अनुभव हुआ कि उसका जीवन जितना चाहिये, उतना धार्मिक नहीं है, अतः उन्होंने उसके अधूरे जीवन को परिपूर्ण धार्मिक बनाने का निश्चय किया।

महापुरुषों के चरित्र को सुनकर आपके मन में एक प्रकार की जागृति उत्पन्न होती होगी। आप सोचते होंगे कि हम तो ऐसे नहीं हैं, लेकिन यह सोचते हैं या नहीं कि क्या हम ऐसे नहीं बन सकते हैं? महापुरुषत्व वैसे ही नहीं मिलता है। ऐसी जागृति के फलस्वरूप जब चारित्र्य को ऊपर उठाया जाता है तथा त्याग के क्षेत्र में आगे बढ़ा जाता है तभी जागृतिपूर्ण जीवन में उच्चता का स्तर बनता है। ऐसे उच्च जीवन का अवलोकन करके अथवा उसके सम्पर्क में रहने से भी प्रेरणा मिलती है। यों तो चन्द्रसेन का जीवन भी गृहस्थाश्रम का ही जीवन था जैसा कि आप लोगों का जीवन है। वे महाराजा थे तो आप भी अपने घर के महाराजा ही हो। आपने तो एक शादी कर रखी होगी, पर उन्होंने बारह के बाद तेरहवीं शादी भी कर ली थी, लेकिन फिर भी विचार करिये कि उनके और आपके जीवन में क्या और कितना अन्तर है? आपने ममत्व को कितना छोड़ा है और समत्व को कितना अपनाया है? सामायिक की साधना में आपका मन कितना रम गया है और आपका स्वभाव कितना सर्व जनहितकारी बन सका है? आप अपने दुर्लभ जीवन का सदुपयोग कर रहे हैं अथवा उसे विनष्ट कर रहे हैं? चरित्र भाग को सुनते हुए यह सारी तुलना और समीक्षा आपको पूरी करनी चाहिये। यह तुलना या समीक्षा भी शान्त और

एकान्त मन से की जानी चाहिये जिसके लिये भी सामायिक की साधना आवश्यक है। सामायिक में बैठकर इस विषय पर गहरा चिन्तन करें, ताकि जागृति की अवस्था उत्पन्न हो, जो समभाव में ही सम्भव हो सकती है।

चन्द्रसेन भी इसी चिन्तन में लगे थे कि उन्होंने जिसे अपनी धर्मपत्नी बनाई है, उसमें धर्म के संस्कार कितने गहरे हैं ? उन संस्कारों की गहराई का पता लगाकर उन्हें यह प्रयास करना होगा कि वे दृढ़तर बनें। धर्मपत्नी की वास्तविकता इसी में है कि वह पति के जीवन को धर्ममय बनादे। इतनी योग्यता विश्वसुन्दरी में भी जगा देनी होगी। इसी से दोनों पति-पत्नी के जीवन में समरसता पैदा होगी। यह वे जानते थे कि विश्वसुन्दरी साधारण नारी नहीं है, विद्याधर की पुत्री होने से संस्कारित एवं विचक्षण बुद्धिवाली है अतः धर्म और साधना का मार्ग यदि उसे समुचित रीति से दिखाया जायगा तो वह अवश्य ही उस पर निष्ठापूर्वक चलने के लिये उद्यत बन जायगी। उसे सिखाना होगा कि मानव के जीवन में यदि धर्म नहीं है तो वह मूर्च्छित और प्राणहीन जीवन है।

इस चिन्तन के पश्चात् एक दिन अवसर देखकर महाराजा चन्द्रसेन अपनी धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी से बोले—प्रिये, तुमने सभी प्रकार का विज्ञान सीखा है और अब विवाहोपरान्त मेरे साथ सम्बन्धित हो गई हो। इस दृष्टि से पति-पत्नी की विचारधारा समान और एकरूप होनी चाहिये तभी उनके जीवन में सामंजस्य बना रह सकता है।

विश्वसुन्दरी ने उत्तर दिया—प्राणनाथ, सच्चे अर्थों में मैं पतिव्रता हूँ। मैंने समर्पित भावना के साथ विवाह किया है। मेरे विचार अब आपके विचारों से कतई भिन्न नहीं हो सकते हैं। मेरे पिताजी भी उदात्त धार्मिक विचारों के थे अतः उन्होंने मुझे तरुणों के संसर्ग में खुली छूट नहीं दी जिससे मेरा चरित्र संरक्षित रहा। यदि मुझे उचित दिशानिर्देश नहीं मिला होता तो आज मेरा जीवन कुछ का कुछ होता। आप निश्चिन्त रहें, जिस दिशा में, जिस गति से आपके चरण आगे बढ़ेंगे, आपके पीछे-पीछे मेरे चरण भी चल पड़ेंगे। आप तो सुविज्ञ हैं कि जब राम के चरण वन की ओर चले तो क्या किसी ने सीता को वैसा करने की सलाह छोड़ ही दी थी ? सीता के चरण स्वयमेव राम के चरणों के पीछे-पीछे चल पड़े। पतिव्रता नारी का ऐसा सुनिश्चित चरित्र होता है। सीता को तो सभी ने समझाया

कि वन का कष्टमय जीवन वह नहीं जी सकेगी अतः न जावे। राम ने भी समझाइश की लेकिन क्या सीता अपना पतिव्रत धर्म त्यागने को तैयार हुई ? नाथ, मैं भी सीता के पतिव्रत धर्म को आदर्श मानकर उसका दृढ़तापूर्वक पालन करने वाली नारी हूँ। आप किसी भी प्रकार की शंका को अपने मन में स्थान न दें।

चन्द्रसेन हर्षित होते हुए कहने लगे— मुझे विश्वास हो गया है कि तुम भी वैसी ही पतिव्रत धर्म को दीपाने वाली नारी हो। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुमने अपने इस जीवन में धर्म कला का कितना विकास किया है ? वीतराग देव के धर्म का कितना रस चखा है और उससे अपने जीवन को किस रूप में आप्लावित बनाया है ? अपने धर्मपत्नी के पद का धर्म कितना गहरा है ?

इन प्रश्नों को सुनकर विश्वसुन्दरी ने आश्चर्य के साथ महाराजा चन्द्रसेन की ओर देखा और मन ही मन सोचा कि ये कैसे पति हैं जो विवाह के पहले पूछी जाने वाली बात को विवाह के बाद पूछ रहे हैं ? फिर भी ये आदर्श पति हैं जो मुझे विवाह के बाद वासना की ओर नहीं मोड़ रहे हैं बल्कि धर्म पथ का ज्ञान करा रहे हैं। वह चन्द्रसेन की आकृति पर बदलते—उठते भावों का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी और उसके मन में निश्चय हुआ कि उसके पति पांच इन्द्रियों के विषय में ही आसक्त नहीं हैं। उनके जीवन में धर्म की प्रधानता है। किन्तु उसने सोचा कि मुझे भी मेरे पति के धर्म सम्बन्धी अभिप्राय को स्पष्टतया से समझ लेना चाहिये। इस दृष्टि से प्रकट रूप में विश्वसुन्दरी ने पूछा—आपका धर्म कला से क्या तात्पर्य है, कृपया विस्तार से समझावें।

चन्द्रसेन ने समझाना शुरू किया—प्रिये, मैं भी पहले धर्म के मर्म को नहीं समझता तथा धर्मकला से विहीन जीवन जी रहा था। मेरी पटरानी ने सबसे पहले मुझे धर्म का बोध कराया और मैंने नित्य अड़तालीस मिनट की सामायिक—साधना प्रारम्भ की। तब से मैं मन, वचन, एवं काया से समभावी बनने का यत्न करता आ रहा हूँ। इस पर विश्वसुन्दरी ने कहा—वैसे तो मैं भी सामायिक से अनभिज्ञ नहीं हूँ किन्तु आप जैसी सुदृढ़ साधना का मैं लगनपूर्वक अनुसरण करूंगी एवं आपसे शिक्षा लेती रहूंगी। मैं शीघ्रातिशीघ्र अपने जीवन के समस्त विचारों तथा आचरण को धर्मकला

में ढाल लूंगी तथा आपकी सच्ची धर्मपत्नी कहलाने का अधिकार प्राप्त करूंगी। तब चन्द्रसेन ने सामायिक की विधि बताई और उसके भावात्मक पहलू पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह भी बताया कि चाहे रसोई बनाते हों, बाहर आते जाते हों या अन्य कोई भी कार्य करते हों— सदा काल विवेक को जागृत रखना चाहिये। कहीं पर भी हिंसा वृत्ति को बढ़ावा नहीं मिलना चाहिये और सभी के साथ व्यवहार करने में अहिंसा व समता को प्रमुखता दी जानी चाहिये। उन्होंने पुनः बल दिया कि सामायिक का व्रत प्रायः, सायं नियमपूर्वक पालन करना चाहिये, क्योंकि सम्पूर्ण साधना के मंगलाचरण के रूप में सामायिक को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है।

विश्वसुन्दरी ने पुनः आश्वस्त किया—नाथ, मेरे माता—पिता दोनों परम धार्मिक थे तथा अपना सारा कार्य धर्म की प्रधानता के साथ ही करते थे। उन्हीं के सुन्दर संस्कार मेरे जीवन में भी व्याप्त हैं। मेरी माता का पहले ही स्वर्गवास हो चुका था और मेरे पिताजी साधु धर्म अंगीकार करने के लिये कितने उत्सुक थे—यह तो आप स्वयं जानते हैं।

तब चन्द्रसेन एवं विश्वसुन्दरी दोनों ने सामायिक की पोशाक पहनी तथा साधना में अपनी एकात्मकता को जोड़ ली। चन्द्रसेन ने उसे सामायिक लेने के विभिन्न पाठों का महत्त्व समझाया और कहा—देखो, सामायिक में समस्त सावद्य योगों का परित्याग किया जाता है जिनमें अट्टारह पाप भी सम्मिलित हैं। पहला पाप हिंसा है और उससे बचना अहिंसा धर्म है। हिंसा में दस प्राणों की हिंसा मानी गई है—यह कहते हुए चन्द्रसेन ने दस प्राणों का स्वरूप समझाया तथा इन प्राणों की सर्वत्र एवं सर्वदा रक्षा करने की प्रेरणा दी। उन्होंने यह सत्य भी प्रकट किया कि जिस प्रकार के कर्मों का उपार्जन किया जाता है, उसी के अनुसार उनका शुभ अथवा अशुभ फल भोगना पड़ता है, किन्तु सामायिक की साधना जितनी उत्कृष्ट बन पड़ती है, उतने अंशों में कई प्रकार के अशुभ कर्म क्षय भी होते रहते हैं। अतः सामायिक की साधना जीवन विकास के लिये अनमोल है। विश्वसुन्दरी ने इस तत्त्व—चिन्तन को दत्तचित्त होकर ग्रहण किया एवं अपना संकल्प बनाया कि वह वर्तमान जीवन में आत्म विकास की उच्चतर सीढ़ियों पर चढ़ती हुई अपनी आन्तरिक स्वरूप को प्रकाशमान बनाने का अथक प्रयत्न करती रहेगी।

इस प्रकार सांसारिक जीवन के साथ-साथ चन्द्रसेन एवं विश्वसुन्दरी की धार्मिक जीवन की निष्ठापूर्वक चलने लगा। वे पति-पत्नी थे यही सही था लेकिन अपने पदों के आगे लगे 'धर्म' शब्द को वे हमेशा हर कार्य में आगे ही रखते थे। अपने आचरण की सुचारुता के साथ वे गृहस्थ जीवन के आदर्शों को प्रकाशित करने लगे।

समय तो अविराम गति से चलता ही रहता है—वह कभी रुकता नहीं, किसी के लिये भी रुकता नहीं। चन्द्रसेन तथा विश्वसुन्दरी का दाम्पत्य जीवन भी अति मधुरता व धार्मिकता को लेकर निरन्तर प्रवाहित निर्झर की तरह बह रहा था। एक दिन चन्द्रसेन को ज्ञात हुआ कि विश्वसुन्दरी गर्भ की स्थिति में है तो उसी दिन से दोनों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना प्रारम्भ कर दिया तथा वे सामायिक की साधना में भी अधिक समय देने लगे ताकि गर्भावस्था में ही सन्तान श्रेष्ठ संस्कारों से मण्डित हो सके।

ब्रह्मचर्य का पालन करना—यह धर्म का संस्कार है। जहां ये संस्कार नहीं है वहां कितनी भ्रूण हत्याएं होती हैं। इस ज्वलन्त समस्या की तरफ न सरकार का ध्यान है, न समाज के नेताओं का खयाल। आज तो परिस्थितियां इतनी विषम हो गई है कि विवाह करने से पहले भी कई भ्रूण हत्याएं होने लगी है। दुःखी व्यक्ति यहां भी आकर अपना दुःख सुनाते हैं और कहते हैं कि कोई मंत्र बताइये कि जिससे उनका दुःख मिट जाय। मैंने पूछा कि आपको किस बात का दुःख है तो कहते हैं कि क्या बतावें, जितनी सन्तान आई, सब अधूरी बाहर आई, क्या यह ऊपर का दोष है ? मैंने कहा—न तो ऊपर का दोष है, न किसी दूसरे का दोष है। यह सब तुम्हारा ही दोष है। क्यों नहीं तुम जब गर्भ की स्थिति का ध्यान हो जाता है, तब ब्रह्मचर्य की स्थिति से रहते हो ? यदि अपनी वासना पर नियन्त्रण रखो तो अपनी सन्तान का भविष्य भी नहीं बिगड़ेगा। चन्द्रसेन विवेकशील साधक थे। इसीलिये उन्होंने गर्भ की स्थिति की जानकारी होते ही ब्रह्मचर्य का पालन आरम्भ कर दिया तो दोनों पति-पत्नी धर्माराधना में प्रवृत्त हो गये।

चन्द्रसेन प्रतिदिन सामायिक में स्वाध्याय करते तथा नित नया ज्ञान लेते। चाहे वे अध्ययन करते अथवा ध्यान में बैठ जाते, उसकी मुख मुद्रा

पर सदैव प्रसन्नता खेलती रहती जो आकर्षक भी होती तो प्रभाविक भी। विश्वसुन्दरी एक दिन पूछ ही बैठी— नाथ, क्या कारण है कि आप सदा प्रसन्न दिखाई देते हैं ? चन्द्रसेन ने उसे समभाव एवं तटस्थता का सुफल बताया।

एक दिन सदा प्रसन्न रहने वाले चन्द्रसेन के चेहरे पर जब कुछ उदासी दिखी तो विश्वसुन्दरी ने उसका कारण पूछा क्योंकि यह उसके लिये आश्चर्य की स्थिति थी। चन्द्रसेन ने कहा अब गृहस्थाश्रम की कठिन परिस्थिति मेरे सामने आ गई है और उसी की मैं चिन्ता कर रहा हूँ। अब तुम्हारे गर्भ को आठ मास पूरे होने आ रहे हैं, और ऐसे अवसर पर यहां एकाकी रहना उचित नहीं लग रहा है। बालक के जन्म के समय कोई भी कठिनाई आ जाय तो यहां निराकरण का कोई साधन नहीं है, इस कारण यह स्थान अब हमें छोड़ देना चाहिये। विश्वसुन्दरी ने भी समस्या का समर्थन करते हुए कहा—बालक की सब तरह से सुरक्षा की स्थिति तो होनी ही चाहिये। जहां भी आप कहें, मैं चलने को तैयार हूँ यहां से किसी भी समीप के शहर में चले चलें। तब चन्द्रसेन ने सुझाव दिया—किसी दूसरे शहर में क्यों चलें ? अपने राज्य की राजधानी चलें, जहां बाहर के उद्यान में स्थित मेरे भवन में सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

इस सुझाव पर विश्वसुन्दरी तुरन्त ही सहमत हो गई और दोनों वहां से रवाना होकर चम्पा नगरी के बाहर स्थित उद्यान में पहुंच गये। उद्यान का भवन खोल दिया गया तथा माली ने दीवानजी को महाराजा के आगमन की सूचना दी। दीवान से बात अधिकारियों के बीच फैली और वहां से सारे नगर में बात फैल गई। सारी जनता खुशी से झूम उठी कि महाराज वापिस पधार गये हैं, नया विवाह करके भी आये हैं और सबकी मनोकामना के शीघ्र पूर्ण होने की आशा भी है। महलों से लेकर झोंपड़ियों तक प्रसन्नता का वातावरण छा गया।

सूर्य के प्रकाश से संसार में सभी प्रसन्न होते हैं, किन्तु उल्लू एक ऐसा प्राणी होता है, जिसे सूर्य का प्रकाश नहीं सुहाता। उसे तो रात का अंधेरा ही पसन्द पड़ता है। इस समाचार से जहां सभी ओर प्रसन्नता छा गई, वहां महलों में पटरानी को छोड़कर अन्य रानियां सौतियां डाह की शिकार हो गईं। पटरानी तो बहुत प्रसन्न हुई कि महाराजा और जनता की

मनोकामना शीघ्र पूरी होगी किन्तु अन्य रानियों के मन में यह ईर्ष्या जगी कि अब महाराजा हमें तो पूछेंगे ही नहीं—सिर्फ नई रानी का ही सम्मान किया जायगा। उनका यह विक्षोभ अज्ञान का परिणाम था क्योंकि वे अपने भविष्य को लेकर आशंकित बनी हुई थी। यह स्थिति देखकर पटरानी ने सभी अन्य रानियों को बुलाकर कहा— आज विशेष हर्ष और प्रमोद का समय है। देखो, महाराज के कोई सन्तान नहीं थी और सन्तान के लिये ही उन्होंने मेरे बाद ग्यारह और विवाह किये किन्तु फिर भी सफलता नहीं मिली। सफलता का सेहरा अब तेरहवीं रानी के सिर पर बंधा है तो यह सबके लिये प्रसन्नता का विषय है। आप अपने लिये कोई आशंका खड़ी न करें। जब हम कभी से समता साधना में संलग्न हैं तो हमारा भविष्य कभी भी दुःखद नहीं बन सकता है। आप तो इसकी भी खुशी मनावें कि अब हमें एक सखी व सहेली और मिल गई है तथा हमारी संख्या बढ़ गई है। उसकी ही वजह से हमारा सबका कलंक धुल जायगा और महाराजा पुत्र वान बन जायेंगे। इस तरह पटरानी ने सभी रानियों में समभाव एवं सद्भाव जगाने का प्रयास किया।

पहली महारानी का जीवन समता रस से भरा हुआ था, इसी कारण वह सभी अन्य रानियों को प्रसन्न होने की बात समझा रही थी। यदि विचारों में समभाव न हो तो कौनसी स्त्री अपने सिर पर सौत आने से दुःखी नहीं होगी ? किन्तु पटरानी ने क्या कहा ? यही कि महाराजा का भविष्य उज्ज्वल बनेगा तो राज्य तथा प्रजा का भविष्य भी उज्ज्वल होगा तथा इन सभी के उज्ज्वल भविष्य में ही तो हमारा भी भविष्य उज्ज्वल रहेगा। फिर भी दूसरी रानी के मन में कुशंका काम कर रही थी।

पटरानी ने साधना में प्रवृत्त होकर अपने दुःखमय जीवन को सुखपूर्ण बना लिया था तो उसने महाराजा के जीवन को भी आमूल—चूल परिवर्तित कर दिया जिससे वे भी समता के साधक बन गये थे। उसने अन्य रानियों को समता से जोड़कर उनके जीवन में सुधार ला दिया था, किन्तु सौत के धक्के से वे विचलित हो उठीं। वे सभी यही सोचने लगीं कि इस तेरहवीं रानी की उपस्थिति में उन सबका अहित ही होने वाला है। उन सभी को महाराजा के व्यवहार से भी असन्तोष हो रहा था कि वे उद्यान छोड़कर राजभवन में उनकी सार सम्भाल करने को आये तक भी नहीं। पटरानी उन सभी असन्तुष्ट रानियों को फिर समझाने लगी— तुम महाराजा का बुरा

व्यर्थ ही में मान रही हो। काफी समय बाद आने के कारण वे राज्य के कर्मों में भी व्यस्त हो गये होंगे, वरन् महाराजा का जीवन अब तो पूरी तरह से समता साधना के प्रति निष्ठावान बन चुका है। वे न किसी से पूर्णतया राग रखते हैं तो न किसी के प्रति द्वेष ही। अतः तुम सब भी तटस्थ भाव से सुखपूर्वक रहो।

तब अन्य रानियों ने कहा—आपका ऐसा विश्वास ठीक नहीं है। महाराजा ने आपके साथ भी दुर्व्यवहार किया था और अब नये विवाह के बाद सभी के सिर पर आपत्ति आ सकती है अतः आप भी हमारे साथ रहें। पटरानी बोली—मैं तुमसे अलग कहाँ जा रही हूँ, तुम्हारे ही साथ हूँ, लेकिन सद्वृत्ति रखने का तुम्हें सही परामर्श दे रही हूँ। तुम्हारे साथ रहते हुए एक बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं सदा सद्वृत्ति के साथ रहूंगी, गलत बात नहीं करूंगी। मैं तुम्हें जो सही रास्ता दिखा रही हूँ, तुम उसी पर चलो। इस पर अन्य रानियों ने कहा— आप अपनी धर्मसाधना करती रहें। हम आपकी बात भी सुनेंगी लेकिन हम जो कुछ करें उसमें आप हस्तक्षेप भी न करें। फिर ग्यारह रानियाँ पटरानी के पास से चली गईं और परस्पर विचार करने लगीं कि भविष्य को देखते हुए पानी आने के पहले ही पाल बांध लेनी चाहिये। उन्होंने सोचा कि ऐसा उपाय निकाला जाय कि जिससे न रहे बांस और न बजे बांसुरी।

विषमता जिनके हृदय में से छूटती नहीं है, वे समता के अमृत में भी विषमता का विष घोलने की कृचेष्टा करते हैं।



10

चिन्तन चिन्तन में कितना अन्तर होता है ? एक का अशुभ चिन्तन होता है तो दूसरे का शुभ। अशुभ चिन्तन करने वाला दूसरे के बारे में तरह-तरह की गलत कल्पनाएँ करके उसका अहित चिन्तन करने में लग जाता है जबकि दूसरे के मन में कोई बुराई नहीं होती, बल्कि वह पहले के लिये हित की बात ही सोच रहा होता है। महाराजा चन्द्रसेन के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति बन रही थी।

महाराजा जब विश्वसुन्दरी के साथ अपनी राजधानी को लौटे तो गर्भस्थिति के कारण राजभवन में नहीं आये और बाहर के उद्यान में ही ठहर गये। जब उनकी अन्य रानियों ने यह समाचार सुना तो सिवाय पटरानी के अन्य ग्यारह रानियाँ अपने भविष्य को खतरे में समझकर आकुल-व्याकुल हो उठीं। फिर उनकी वह आकुलता ईर्ष्या की आग में जलकर भयावह हो उठी। वे यह सोच-समझकर जल उठीं कि राजधानी में आकर भी महाराजा उनसे मिलने नहीं आये। पटरानी ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु वे अपनी गलत कल्पनाओं के कारण अशुभ चिन्तन करने लगीं।

उधर महाराजा पहले तो विश्वसुन्दरी के लिये समुचित व्यवस्थाएँ करने में जुटे रहे। फिर लम्बे अर्से बाद अपने राज्य में लौटे थे अतः राजकीय काम-काज देखने में व्यस्त हो गये। किन्तु हर समय वे यही सोचकर खेद कर रहे थे कि वे राजभवन नहीं जा पाये हैं और अपनी प्रेरणा स्रोत पटरानी तथा अन्य ग्यारह रानियों से नहीं मिल पाये हैं। ज्योंही अवकाश मिले, वे तुरन्त उधर जाने की सोच रहे थे। उनके मन में ग्यारह रानियों के प्रति किसी प्रकार की बुराई नहीं थी और न वे उनके लिये किसी

प्रकार का अशुभ चिन्तन ही कर रहे थे। यदि वे कुछ सोच रहे थे तो वह उनके प्रति हितचिन्ता ही थी।

इस प्रकार चिन्तन की भिन्न-भिन्न धाराएँ चल रही थीं महाराजा चन्द्रसेन के राजपरिवार में। इधर व्यस्तता के कारण वे राजभवन में नहीं जा पा रहे थे और उधर उनकी ग्यारह रानियाँ प्रतिहिंसा की आग में जलती हुई पागल हो रही थीं—इतनी पागल कि अपना भान भूलकर घातक षड्यन्त्र रचने में लग गईं।

विश्वसुन्दरी की गर्भावस्था को नौवां मास चल रहा था। उद्यान के सुरम्य वातावरण में धर्म साधना के साथ वह अपने गर्भस्थ शिशु का लालन-पालन कर रही थी। उसकी देखरेख के लिये नगर की सबसे होशियार दाई सलखू नाम की नाइन को नियुक्त कर दिया गया था। वह दिन रात नई महारानी के साथ ही रहती और उसका व उसके गर्भ का हर तरह से खयाल रखती। वह प्रसव कार्य में बहुत ही कुशल थी अतः महाराजा नई महारानी के स्वास्थ्य के प्रति निश्चिन्त हो गये, फिर भी उसकी बराबर सार संभाल कर लेते थे। महाराजा और राज्य की समस्त जनता की यही मनोकामना थी कि गर्भस्थ शिशु पुत्र रूप में हो तो राजकुमार की प्राप्ति से राज्य के सुयोग्य उत्तराधिकार की समस्या का श्रेष्ठ एवं सर्वजनहितकारी समाधान हो जायेगा। सलखू नाई को इसी दृष्टि से पर्याप्त धनराशि देने का आश्वासन दे दिया गया था ताकि वह पूरी परवाह से अपने कार्य में जुटी रहे।

किन्तु ग्यारह रानियों के हृदय डाह और द्वेष से अग्नि कुण्ड की तरह जल रहे थे। उस जलन में वे भूल गईं कि वे जो कुछ कर रही हैं, क्या वह उनके लिये उचित है? वे सबका हित भूल गईं और अपने अहित की कल्पनाजन्य आशंकाओं में ही डूब गईं। हर समय वे ग्यारह रानियाँ साथ में बैठी रहतीं और बदला निकालने के तरह-तरह के दुष्ट उपायों के बारे में सोचती रहतीं। उन्होंने तब अपनी विश्वस्त दासियों को गुप्त तरीके से उद्यानस्थित भवन की सारी जानकारी लेने के लिये भेजा। उन्होंने वापिस आकर उन्हें खबर दी कि महारानी विश्वसुन्दरी अद्वितीय सुन्दरी है लेकिन धीर गम्भीर है, उसकी गर्भस्थिति भी सानन्द चल रही है एवं नगर की कुशल दाई सलखू नाईन उनकी देखरेख में लगी हुई है। यह सब

सुनकर ग्यारह रानियों के कलेजे पर सांप लौट गये। नई महारानी इतनी सुन्दर है तो भला महाराजा अब उनकी ओर आँख उठाकर भी क्यों देखेंगे ? दूसरे, यदि उसने राजकुमार को जन्म दिया तो महाराजा उन सब की जिन्दगियों को बेहाल भी बना सकते हैं। इसलिये उनकी राह में यह जबरदस्त कांटा आ गया है जिसको समय रहते कुचल देना चाहिये। ऐसे दुष्ट भावों से वे ग्यारह रानियाँ बुरी तरह से पीड़ित हो उठीं।

अब सलखू नाईन को किसी भी तरह उन्हें अपनी ओर करके कांटा निकाल देना ही हितकर लगा। वे पागलों की तरह इस दुष्कर्म में जुट गईं। उन्होंने अपनी एक सर्वाधिक विश्वस्त दासी को उद्यान में भेजा कि वह सलखू नाईन को उनके पास बुलाकर लावे। कुछ ही देर में वह दासी निराश होकर लौटी कि नाईन ने आने से इन्कार कर दिया है क्योंकि वह नई महारानी की सेवा में लगी हुई है। तब ग्यारह में से एक रानी ने कहा—हमने गलती की सो उसे बिना किसी प्रलोभन के बुलाने को भेजा। इस तरह काम थोड़े ही होता है। तब उसने अपने गले से कंठला निकाल कर उस दासी को दिया और समझाया कि यह कंठला वह पहले नाइन को दे दे, फिर उसे हमसे मिलने को कहे। सोने का कंठला काम कर गया। स्वामिभक्त सलखू उस सोने को देखकर अपनी स्वामिभक्ति भी कुछ देर के लिये भूल गई और ग्यारह रानियों से मिलने के लिये उस दासी के साथ चली आई।

विश्वसुन्दरी स्वयं तथा उसके गर्भ की पूरी जानकारी उन ग्यारह रानियों ने सलखू नाईन के मुँह से ली तो वे अधिक चिन्ताग्रस्त हो गईं कि अब उनका सर्वनाश निश्चित है। नई महारानी अपूर्व सुन्दरी है, धर्म साधना करने वाली है और सद्गुणी राजकुमार को जन्म देने वाली है—तब भला उन्हें पूछेगा भी कौन ? महाराजा तो उन्हें टुकरायेंगे ही, किन्तु राज्य में कहीं भी उनकी पूछ नहीं रहेगी। ऐसे कृविचार से ग्रस्त होकर बाकी दसों रानियों ने भी अपने—अपने गले में से अपने सोने के कंठले उतार कर सलखू नाईन के हाथों में धर दिये। नाईन तो बावली हो उठी। एक कंठले ने ही उसे भान भुला दिया था, अब तो कुल ग्यारह कंठले उसकी झोली में आ गिरे थे। इतने अधिक स्वर्ण को पाकर तो वह उन्मत्त ही हो उठी।

सलखू की उन्मत्तता और ग्यारह रानियों के मन की धधकती हुई आग आपस में मिल गई।

इस संसार में जिधर देखो, उधर राग और द्वेष का दावानल धधकता हुआ मिलेगा, फिर भी ममता में डूबी हुई आत्माएँ समता का अमृत चखने के लिये जागृत नहीं होती हैं—यही बड़ी विडम्बना है। महाराजा चन्द्रसेन के अनजाने ही उनके ही रनिवास में ऐसा भीषण दावानल उठा था कि जिससे क्या अनर्थ घट सकता था, किसी ने नहीं जाना।

वे ग्यारह रानियाँ सलखू नाइन के सामने हाथ बांध कर खड़ी हो गईं और अपने पद की गरिमा को धूल में मिलाकर याचना भरे शब्दों में कहने लगीं— ओ नाइन माँ, हमारा जीवन अब तुम्हारे आसरे है और इस रक्षा कार्य का भार हम सभी तुम्हारे ऊपर ही छोड़ रही हैं। हमारे जीवन को बचाना या नष्ट कर देना अब तुम्हारे ही हाथों में है। उन्मत्त नाइन इस नाटक को समझ नहीं पाई, इसलिये आभार के भार के साथ उसने पूछा— आप सब यह क्या कह रही हैं—मैं कुछ भी समझ नहीं पाई हूँ। आप मुझसे क्या कार्य करवाना चाहती हैं—यह साफ—साफ बताइये। तब ग्यारह रानियों की मुखिया बोली— नाइन माँ, राज्य में आ जाने के इतने समय बाद भी महाराजा हमसे मिलने तक नहीं आये हैं, क्योंकि वे नई महारानी के हाथ के खिलौने बन गये हैं। अब हमारा तिरस्कार और हमारे भविष्य की दुर्दशा निश्चित है जिससे तुम ही हमको उबार सकती हो। सौत के रूप में आई यह नई महारानी ही हमारे लिये घातक शत्रु हो गई है और उसी से हमारी रक्षा आवश्यक है। अब तुम्हीं सोचो कि हमारा काम तुम किस रीति से सफलतापूर्वक कर सकती हो। यदि हमारा काम तुमने सफलतापूर्वक कर दिया तो जो स्वर्ण हमने अभी तुम्हें दिया है, उससे कई गुना स्वर्ण हम तुम्हें और दे देंगे। तुम निहाल हो जाओगी।

सलखू नाइन का मस्तक यह सब सुन देखकर बुरी तरह से चक्कर खाने लगा। कुछ देर स्तब्ध सी रहकर वह अपनी चेतना में लौटी तो पुनः कल्पना में सोने का पीला पीला ढेर दिखाई दिया और उस ढेर के दृश्य ने उस फर्ज को धो पौँछकर एकदम नष्ट कर दिया। वह उचक कर बोली— मैं सब कुछ समझ गई हूँ। जैसा आप चाहती हैं, वह मैं कर लूंगी। आप सब बेफिक्र रहें। रानियों की मुखिया ने पूछा— कैसे क्या करोगी— यह तो हमें बता दो। नाइन को कहां भान था सो कुछ सोचती, बोल पड़ी—कोई योजना आपने सोची हो तो वही बता दो सो मैं उसके अनुसार कार्य कर लूंगी। उसे उत्तर मिला—देखो, जिस गर्भ के पीछे यह नई

महारानी और महाराजा फूले-फूले फिर रहे हैं, उनका इस तरह फूलना खत्म हो जाना चाहिये। फिर मुखिया ने उसके कान में गुप्त तरीका बताया और कहा—सब कुछ इतना गुप्त रहना चाहिये कि किसी को भनक तक न पड़े। काम बन जाये और किसी तरह की बदनामी न हो—इसका पूरा ध्यान रखना होगा। समझ गई न कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। सलखू नाइन ने हामी भरी और कहा—अब आप मुझे यहाँ न बुलावें, नहीं तो व्यर्थ की शंका पैदा होगी। मैं वहीं रहकर सारा काम खूबी से कर लूंगी। फिर सलखू नाइन उद्यान की तरफ चली गई।

यह पैसा, यह अर्थ, यह सोना सोचिये कि किसको कौनसा अनर्थ करने के लिये नहीं उकसा देता है ? क्या आज की दुनिया इन्हीं के पीछे पागल होकर नहीं भटक रही है और न जाने क्या-क्या अनर्थ नहीं कर रही है ? अर्थ अधिकांश लोगों के माथे पर चढ़कर घातक अनर्थ कर रहा है और इन्सानियत को पैरों तले रौंद रहा है। किन्तु जो समता के रस में अपने जीवन को भिगो देते हैं, वे अर्थ के प्रति अपनी ममता को भी नष्ट कर देते हैं। सर्वजगत् की कल्याणी मानवता को वे अपने रोम-रोम में बसाकर महामानव बन जाते हैं।

विश्वसुन्दरी भी इस तरह के घात-प्रतिघात के षड्यन्त्र से दूर, अपनी समता-साधना में आन्तरिक आनन्द का रसास्वादन कर रही थी। विषमता का विष उसे कहीं छू भी नहीं गया था। वह तो समभाव पूर्वक समस्त जगज्जीवों के कल्याण की ही कामना कर रही थी।

गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी चन्द्रसेन ने जिस गहन भावना से सामायिक का समता-रस अपने हृदय में भरा तो उसके कितने अनूठे चमत्कार प्रकट हुए। किस प्रकार देवता ने उनकी सहायता की तो वाणी की गम्भीरता ने विद्याधर को कितना प्रभावित बना दिया। उसने न केवल अपनी मणि ही दी बल्कि अपनी सुपुत्री का हाथ भी उन्हें सौंप दिया। यह उनकी समत्व शक्ति ही थी जिसके बल पर उन्हें विश्वसुन्दरी जैसी धर्मपत्नी मिली और अपने राज्य के उत्तराधिकारी के उत्पन्न होने की सुखद संभावना। ये सारी उपलब्धियाँ चन्द्रसेन ने अपनी इहलोक की सामायिक-साधना के सुफलस्वरूप ही प्राप्त की थीं।

महाराजा चन्द्रसेन को जब सलखू नाइन ने विश्वसुन्दरी की देखभाल

से पूरी तरह आश्वस्त कर दिया तो उन्होंने राजकीय व्यवस्था सम्बन्धी मामलों को निपटाया। उससे उन्हें जब कुछ अवकाश मिला तो वे रनिवास अपनी पहले की रानियों से मिलने के लिये गये। पटरानी तो नई महारानी के आने से बहुत प्रसन्न थी ही क्योंकि उसके जीवन में भी समभाव का आदर्श फैला हुआ था, अतः महाराजा के आते ही उसने सच्चे दिल से स्वागत किया और नई उपलब्धियों की बधाई दी। बाद में वे शेष ग्यारह रानियों से मिलने गये और अपना सारा विवरण सुनाया। उन्होंने यह भी समाधान दिया कि गर्भावस्था के कारण नई महारानी को उद्यान के एकान्त और शान्त वातावरण में रखा है वरना प्रसवोपरान्त उन्हें राजभवन में लाया जायेगा व सबसे मिलवाया जायेगा। किन्तु उन रानियों के जीवन में समता का रस नहीं था— अपने स्वार्थों का मोह था और दुर्बुद्धि का प्रभाव था अतः ऊपर से तो उन्होंने प्रसन्नता दिखाई लेकिन भीतर में जहरभरी ही बनी रहीं।

उधर सलखू नाइन अपना दैनिक कामकाज निपटा कर एकान्त में जाकर बैठी और सोचने लगी कि ग्यारह रानियों का काम कैसे पूरा किया जाये ? उसकी नजरों के सामने एक—एक करके ग्यारह सोने के कंटले बार—बार घूम रहे थे। अच्छे कार्यों के लिये भी चिन्तन एकान्त में होता है तो बुरे कार्यों के लिये चिन्तन हेतु भी एकान्त ही चाहिये। कारण यह है कि एकान्त के समय बुद्धि स्थिर रहती है और उस समय में सोचने से काम को सफल बनाने का पक्का उपाय सूझ जाता है। सलखू तुलना करने लगी कि ग्यारह रानियों ने ग्यारह कंटलों के अलावा और भी स्वर्ण देने का आश्वासन दिया है तो महाराजा भी विपुल धनराशि प्रदान करेंगे। उसने मन में सोचा कि चालाकी का ठेका तो उसकी जाति ने ले ही रखा है, फिर वह क्यों नहीं दोनों पक्षों को अपनी होशियारी दिखावे ?

जब उसे मालूम हुआ कि महाराजा नई महारानी के पास आये हैं तो वह वहाँ से उठी और दौड़कर प्रसन्नमुख महाराजा के सामने पहुँची। उसने महाराजा से निवेदन किया कि वह उनसे एकान्त में कुछ बात करना चाहती है। महाराजा ने तुरन्त वहाँ से सबको बाहर चले जाने का संकेत किया और सलखू से पूछा— क्या बात है ? नाइन ने कहा—महाराज, मैंने महारानी जी के गर्भ का आज अच्छी तरह से निरीक्षण किया तो सिर पर प्रकट होने वाले लक्षणों से मुझे यह समझ में आया है कि गर्भ में एक नहीं,

बल्कि दो सन्तान हैं— जुड़वां सन्तान, अतः दोनों का जन्म जुड़वां ही होगा। दोनों में से हो सकता है कि एक राजकुमार हो तथा दूसरी राजकुमारी।

त्रिया चरित्र वैसे ही बड़ा अजीब होता है और उस पर नाइन का क्रिया चरित्र तो अपना सानी नहीं रखता है। उस सलखू नाइन ने विश्वसुन्दरी के गर्भ के अन्दर की बात हावभाव बनाकर इस ढंग से महाराजा को कही कि उन्हें उसकी सच्चाई पर विश्वास हो गया कि दो सन्तानें ही जन्म लेने वाली हैं। एक समभावी पुरुष जब तक स्पष्ट प्रमाण नहीं दीखता, किसी को दुष्ट मानता नहीं और उसकी बात में अविश्वास करता नहीं, फिर भला सीधी दृष्टि से चन्द्रसेन उस विश्वासपात्र नाइन की बात में अविश्वास क्यों करते ?

जहाँ सज्जन और सरल व्यक्ति दूसरे को भी अपने जैसा ही समझता है, वहाँ दुर्जन व दुष्ट स्वभावी व्यक्ति अपना कुकर्म बड़े ही छल—कपट के साथ पूरा करना चाहता है। किसी दुर्जन को पहिचानने के लिये हकीकत में दूसरे दुर्जन की ही जरूरत पड़ती है। कूटनीति का कांटा कूटनीति की मदद से ही निकाला जा सकता है।

चन्द्रसेन ने सलखू को कहा—पक्का ध्यान रखना कि महारानी और उसके गर्भ की सुरक्षा की पूरी—पूरी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर ही है। ठीक तरह से सन्तोषजनक कार्य करो जिससे मैं तुम्हें इतना धन दूंगा कि तुम निहाल हो जाओगी। लेकिन सोच लेना कि जहाँ जरा भी बेपरवाही या गड़बड़ी तुमसे हो गई तो उसकी कड़ी से कड़ी सजा मिलेगी।

सलखू के मुंह से यही निकला राजन्, आप मुझ पर पूरा विश्वास रखें। मुझे इस काम का सबसे ज्यादा अनुभव है ओर मैं अपना काम पूरी परवाह के साथ करूंगी। उसके आश्वासन से पुनः महाराजा राजकाज देखने में व्यस्त हो गये। अब सलखू के मन में जबरदस्त संकट खड़ा हो गया। एक तरफ तो वह ईर्ष्या और प्रतिशोध की आग में जल रही ग्यारह महारानियों को प्रलोभन के वश में होकर विश्वास दिला आई है कि उनका काम वह पूरा करेगी। दूसरी ओर उसने महाराजा को भी पक्का आश्वासन दे दिया है कि नई रानी और उसके गर्भ की सुरक्षा की पूरी—पूरी जिम्मेदारी उसके ऊपर है। एक ओर अनीति का प्रलोभन है तो दूसरी ओर भी नीति

का पूरा पारिश्रमिक मिलने की आशा है किन्तु दूसरी ओर उसके मन में कठोर दण्ड का भय भी खड़ा हो गया।

जब प्रसव काल समीप आने लगा तो विश्वसुन्दरी को भारी वेदना होने लगी। वेदना इतनी बढ़ गई कि वह उसे सह न सकी और बेहोश हो गई। उस समय में सलखू विचार करने लगी कि उसे अपना काम बनाने का यह सुनहला समय मिला है। इस समय यहाँ पर कोई नहीं है और महारानी भी मूर्च्छित पड़ी है इसलिये मुझे जो उपाय करना है वह जल्दी कर लूँ। उसका दिमाग हवा में दौड़ने लगा कि प्रसव ठीक तरह से करा दूँ तो विपुल धनराशि मिल जायेगी और शायद महाराजा प्रसन्न होकर जागीर भी ऊपर से दे दें। उधर ग्यारह रानियों को भी खुश कर दूँ तो मेरा घर सोने से भर जायेगा। उसका दुष्ट विचार जगा कि अगर इस महारानी को जहर देकर या कुछ करके खत्म कर दूँ तो दोनों पक्ष प्रसन्न हो जायेंगे—एक अपना उत्तराधिकारी पा जाने से तो दूसरा अपना कांटा निकल जाने से, लेकिन जहर आदि का पता लग सकता है और उस दशा में उसका पकड़ा जाना निश्चित है। वह फिर विचार करने लगी कि तब क्या करे ?

सलखू ने सभी तरीकों पर विचार किया, लेकिन आखिर यही तय किया कि वह नई महारानी की जिन्दगी को खत्म नहीं करेगी। एक तो वह विश्वसुन्दरी है और दूसरे, विद्याधर की पुत्री होने के कारण अनेक विद्याओं की ज्ञाता है, अतः इसका प्रसव अच्छी तरह से हो गया और वह खुश हो गई तो उसको भी कोई न कोई विद्या सिखा देगी। वह अपने घर को सोने से तो उस विद्या के प्रभाव से ही भर देगी। इस कारण नई महारानी की हत्या का पाप वह कतई मोल नहीं लेगी। लेकिन उन ग्यारह रानियों को खुश करने के लिये उसने जो कार्यक्रम सोचा है, उसको विश्वास है कि वह कार्यक्रम यथासमय अवश्य ही सफल हो जायेगा।

प्रसव की असह्य वेदना से विश्वसुन्दरी बेहोश हो गई थी लेकिन उसकी वह बेहोशी किसी बीमारी का परिणाम नहीं थी। जब उस सलखू नाइन ने तय कर लिया कि महारानी को कोई हानि नहीं पहुंचानी है इसलिये उन ग्यारह रानियों का काम तो तभी बन सकता है जब आने वाली सन्तान का कुछ किया जाये। फिर वह विचार करने लगी कि

महाराजा, दीवान जी वगैरा सब जानते हैं, 9वाँ मास पूरा होने वाला है और सन्तान आने वाली है, ऐसी अवस्था में क्या आने वाली सन्तान को भी किसी प्रकार की हानि पहुंचाना उसके लिये घातक नहीं हो जायेगा ? वह पकड़ी जायेगी और उसे कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी। अब उसकी घाटधड़ और ज्यादा बढ़ गई कि वह क्या करे ? उसकी दशा पागलों जैसी होने लगी।

जिस कमरे में महारानी छटपटा रही थी, उसी कमरे में सलखू भी खड़ी थी। उसी समय उस कमरे की खिड़की से उसे बाहर एक दृश्य दिखाई दिया। बाहर भी एक कुतिया प्रसव वेदना के कारण छटपटा रही थी। उस कुतिया का प्रसव अपने आप ही हो रहा था, उसके पास कोई दूसरा नहीं था।

सलखू तब कुतिया पर से नजर हटाकर महारानी के पास गई और उसने सुखद प्रसव के लिये विधिपूर्वक कार्य करना शुरू कर दिया। जब प्रसव हुआ तो वास्तव में दो सन्तानों ने जन्म लिया—एक पुत्र तथा दूसरी पुत्री। बच्चों को कभी—कभी माता—पिता की सुन्दरता मिलती है और यदि बच्चों की पुण्यवानी अधिक प्रबल हो तो वे माता—पिता से भी अधिक सुन्दर हो जाते हैं। सलखू ने देखा कि वे पुत्र और पुत्री अपने माता—पिता से भी अधिक सुन्दर और आकर्षक थे। उन्हें देखकर उसके मन में भी प्रमोद भाव जागृत हुआ। उसे अनुभव हुआ कि अपने जीवन में उसने अनेकानेक प्रसव कार्य कराये लेकिन इतनी सुन्दर सन्तान पहले उसके देखने में कभी भी नहीं आई थीं। तब क्या वह ऐसी मनमोहक सन्तानों का घात करेगी ? वह विभ्रमित हो गई। यदि घात करे और इस बीच महारानी की मूर्छा टूट जाय तो उसकी क्या दुर्दशा हो सकती है— कहा नहीं जा सकता। वह कुछ भी नहीं कर पाई।

तभी प्रसव हो जाने से वेदना मिटी तो महारानी की मूर्छा भी टूटी, किन्तु शान्ति मिल जाने से उसे निद्रा आ गई। तब सलखू की दुर्भावना फिर भड़क उठी। उसने सोचा कि उसे अपना काम बनाने का योग फिर मिल गया है। उसको उपाय सूझ गया। उसने कुतिया का प्रसव अभी देखा ही था— उसके भी दो पिल्ले हुए थे— एक बच्चा और एक बच्ची। झट से उसने तय कर लिया कि विश्वसुन्दरी के दोनों बच्चों को वह मार कर

कुतिया के सामने रख आवे और कुतिया के दोनों बच्चों को लाकर विश्वसुन्दरी के पास सुला दे—बस उसका काम बन जायेगा तथा महाराजा को दो सन्तान होने की उसके द्वारा कही हुई बात भी सच हो जायेगी।

यह सोचकर सलखू ने नई महारानी के दोनों बच्चों को अपने हाथों में उठाया और उनके गले दबाने की निर्दयता उसके क्रूर मन में जागी। किन्तु यकायक उसका हाथ रुक गया। उसके मन की निर्दयता जैसे दूर भागने लगी और उसकी जगह स्नेह भावना पैदा होने लगी। फिर भी वह बच्चों को हाथों में लिये खड़ी थी—न मारने का निश्चय कर पा रही थी और न ही न मारने का। उसका मस्तिष्क असमंजस में ही डूबा रहा।

पाप कार्य करने का पल भी बड़ा नाजुक होता है। जब मनुष्य पाप करने पर उतारू होता है तो एक बार उसके भीतर कंकणी छूट जाती है। उसके भीतर से आवाज उठती है कि वह पाप करने से बाज आए। उसका अन्तःकरण जागृत हो जाता है। मोह या किसी अन्य पाप भावना के वशीभूत होकर वह पाप कार्य करने को तैयार होता है लेकिन उसके अन्तःकरण से आवाज उठती है कि ऐसा मत करो—यह क्रूरता का कार्य है और ऐसा घातक कार्य करना उचित नहीं है। ऐसे समय में साधारण तौर पर पापी मनुष्य का मन बदल जाता है और व पाप कार्य करने से अपने को रोक लेता है। सलखू के खयालों में भी उस समय ऐसी ही ऊँच—नीच चल रही थी। उसने सोचा कि ऐसा पाप कार्य करने से जागीर तो मिलने से रही—उसका बुरा नतीजा भी भुगतना पड़ सकता है। वह भी अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने लगी। मूल में पाप से कैसे बचा जाय—यह प्रत्येक प्राणी की भावना होती है और अगर वह अपने भीतर के चिन्तन को मान लेता है तो हकीकत में वह पाप से बच भी जाता है। जो अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर पाप से बच जाते हैं, वे पुण्य का उपार्जन कर लेते हैं, किन्तु जो अन्तरात्मा की आवाज को टुकरा कर पाप कार्य में अपने मनोभावों की निर्दयता को प्रकट कर ही देते हैं, वे अपने इस जन्म तथा भावी जन्मों को पाप के काले कर्मों से रंग देते हैं।

उस पापिनी सलखू का मस्तिष्क भी असमंजस से बाहर निकला, क्योंकि उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज को अनसुनी कर दी थी। उसने अपने मनोभावों की क्रूरता को न रोकने का निश्चय किया और तदनुसार वह अपनी दुष्प्रवृत्ति में लग गई।

दुष्टात्मा यह नहीं विचारती कि उसके पाप कार्य का कितना घातक परिणाम सामने आ सकता है और वह तो अपनी दुष्टता का दृश्य दिखा ही देती है। यह दूसरी बात है कि प्रकृति ढाल बनकर उसकी दुष्टता को सफल न होने दे।



11

सम्पूर्ण पाप प्रवृत्तियों का वीतराग देवों ने एक मूल बताया है और वह है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व मिटाया जा सकता है सम्यक्त्व—संयम से और पूर्ण संयम के माध्यम से ही आत्म-विकास की महायात्रा सफलतापूर्वक सम्पन्न की जा सकती है। किन्तु जब तक पूर्ण संयम अंगीकार करने की स्थिति न बने, तब तक भी संयम की साधना तो आरम्भ की जा सकती है। श्रावक धर्म साधु धर्म की निचली सीढ़ी है और श्रावक धर्म का पालन करते हुए आंशिक संयम साधना होती ही है। आशय यह है कि असंयम जितना अधिक मनुष्य की वृत्तियों तथा प्रवृत्तियों में फैलता जाता है, उतना ही जीवन में निकृष्ट पतन होता जाता है। अतः ऐसे पतनकारक असंयम को नियन्त्रित करने के लिये संयम की साधना जितने अंशों में भी की जा सके, करना आवश्यक ही है।

सलखू नाइन एक बार जो असंयम की फिसलन पर फिसली तो फिर फिसलती ही चली गई, अपने आप को रोक नहीं पाई, क्योंकि उसने संयम का आश्रय ग्रहण नहीं किया।

महाराजा चन्द्रसेन ने सलखू नाइन की असंयमी वृत्ति को पहचाना नहीं और उसके द्वारा दिये गये विश्वास के पीछे वे निश्चिन्त बने रहे। किन्तु जब सारी घटना उनके सामने आई तो वे हतप्रभ ही नहीं रह गये बल्कि उसके धक्के से तिलमिला उठे। महाराजा को स्वप्न में भी आशंका नहीं थी कि नई महारानी विश्वसुन्दरी कुतिया के पिल्ले सरीख बच्चे—बच्चियों को जन्म देगी। ऐसी अनहोनी के सामने तो वे आतंकित जैसे हो गये। बार-बार यही विचार आने लगा कि आखिर यह कैसा तमाशा हो गया है ?

वे सोचने लगे—मेरी पटरानी ने मुझे धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त बनाया तब से मैं नियमित रूप से सामायिक की साधना कर रहा हूँ। जनता के आग्रह पर मैंने तेला करके देव का आह्वान किया और देव ने भी स्पष्ट कथन किया कि मुझे सन्तान की प्राप्ति होगी तथा जनता की मनोकामना पूर्ण होगी। तो क्या देव का कथन भी असत्य सिद्ध हो जायगा ? देव की भविष्यवाणी के अनुसार ही मुझे मणि और सारे लक्षण पूर्ण आशाजनक थे, फिर यह क्या परिणाम सामने आ गया है ? स्वयं विश्वसुन्दरी परम चारित्र्यशील महिला है, धर्मारोधना में भी वह प्रवृत्त हो गई है, फिर ऐसा दुर्भाग्य कैसे प्रकट हुआ ? सलखू नाइन का भी क्या दोष निकालूँ ? वह तो सूचना देते समय खुद ही बुरी तरह से रो रही थी। इस तरह सरल हृदय महाराजा तरह—तरह से विचार करते रहे।

बात स्पष्ट नहीं हुई किन्तु बार—बार उनका मस्तिष्क संशकित होने लगा। देववाणी झूठ निकले—यह सम्भव नहीं। दोनों धर्मसाधकों के ऐसी सन्तानें हों—यह भी कल्पनीय नहीं है। फिर यह क्या है ? क्या सलखू नाइन की ही तो कहीं गड़बड़ी नहीं है ? शंका उठती और प्रमाणहीन होने से फिर मिट जाती, किन्तु फिर उठ जाती। वह समाप्त नहीं हो रही थी।

कहा गया है कि किसी भी विषय में जब कोई शंका उत्पन्न हो जाय तो उसका तुरन्त समाधान कर लेना चाहिये, क्योंकि संशयात्मा विनश्यति—जो संशयशील बना रहता है, उसका विनाश हो जाता है। विनाश का अभिप्राय है कि वह मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है जिसकी चिकित्सा भी सरलता से सम्भव नहीं होती है। कदाचित् शंका नहीं है और जीवन में दोष लग गया है तो वह बराबर कचोटता रहता है। उस दोष को प्रकट करने में संकोच किया जाता है कि लोग क्या कहेंगे, लेकिन ऐसे दोष के लिये भी अगर शुद्ध मन से आलोचना नहीं की जाती है तो उससे भी मानसिकता में विकार पैदा हो जाता है। संशय निवारण नहीं करने से तो कई मामले सुनने में आये हैं कि बड़े—बड़े लोग भी पागल हो गये। ब्यावर चातुर्मास में मैंने स्वयं ने देखा कि एक भाई बेकार बकता रहता था। मैंने पूछा कि वह कौन है तो मुझे बताया गया कि पहले यह व्यक्ति बहुत ही बुद्धिमान था किन्तु उसको अपने योग्य कार्य नहीं मिला तो पागल हो गया।

महाराजा की विचार—ग्रस्तता मिट नहीं रही थी। बात क्या बनी ?

देववाणी खाली नहीं जाती। जनता की भावना भी सामूहिक रूप में प्रकट होती है तो वह असफल नहीं होती। फिर यह विपरीत रूप कैसे सामने आया है ? उनका मन करने लगा कि कोई विशिष्ट ज्ञानी मिल जाय तो सारी परिस्थिति का समाधान करा लूं। फिर सोचा कि तेला करके पुनः देव का आह्वान करूं। श्रीकृष्ण ने भी अपने छोटे भाई के होने की जानकारी लेने के लिए देव को बुलाया था। परन्तु मेरी वर्तमान मानसिक स्थिति इतनी डांवाडोल है कि मन का स्थिर रह पाना कठिन है। मुझे कुछ न कुछ उपाय तो निकालना ही चाहिए, जिससे इस घटना का स्पष्टीकरण मिल सके।

जिसने समस्त पापपूर्ण कृत्यों के एक मात्र हेतु मिथ्यात्व के घातक स्वरूप को नहीं समझा, वह भला मानवता के पवित्र स्वरूप को समझ ही कैसे सकता है ? कारण, मिथ्यात्व उसके हृदय में ऐसी निर्दयता भर देता है कि उसे अपना स्वार्थ ही दिखाई देता है—मानवता का ध्यान तक नहीं आता। सलखू नाइन ने जब ऐसा पाप कार्य किया तो न तो उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनी और न उसने गहराई में जाकर सोचा कि उस पाप का क्या नतीजा होगा ? यह भी नहीं समझ पाई कि पाप का भंडाफोड़ हो जायगा तो उसके पास जो सम्पत्ति है वह भी क्या उसके पास रह पायेगी ? फिर आने वाली सम्पत्ति का क्या है ? सोना कहां रह जायगा, रानियाँ कहाँ रह जाएंगी और उसे फांसी पर लटक जाना पड़ेगा—स्वार्थ में अंधी बनकर यह भी वह दिल में नहीं जमा पाई। उसने यह भी विचार नहीं किया कि जीवन निर्वाह के लिए कितनासा धन चाहिए और बहुत सारा सोना मिल जायगा तो क्या वह रोटी के बदले सोने को खा सकेगी ?

किन्तु सलखू के हृदय में मानवता का वास नहीं था, इसलिए सद्य जन्मजात फूल से कोमल और सुन्दर बच्चों के साथ वह ऐसा पाप कृत्य कर सकी। वे बच्चे पूर्व जन्म की पुण्यवानी लेकर आये थे तभी तो राजघराने में जन्मे। उनकी आकृतियां बता रही थीं कि उनका पुण्यार्जन कितनी उत्कृष्ट कोटि का था। लेकिन इस सलखू पापिन ने ईर्ष्यालु रानियों से प्रलोभन पाकर कैसा घृणित कुकृत्य किया ? वह सोचने लगी कि अब कैसे क्या करूं ? बच्चों की तरफ नारी सुलभ ममता से भी देखती तो मन पिघल जाता, किन्तु धन प्राप्ति की लालसा में वह तो अन्धी ओर बेजान हो गई थी। धन के पीछे कभी-कभी मनुष्य में ऐसी जघन्य क्रूरता भी आ जाती है कि वह अपने जन्मदाता उपकारी माता-पिता तक का घात कर

बैठता है। पैसों का खून जब डाढ़ के लग जाता है तो ऐसी क्रूरता बढ़ती रहती है। चंद चांदी के टुकड़ों के पीछे ही तो दहेज जैसी राक्षसी प्रथा चल रही है जिसके कारण कितनी कन्याएं या महिलाएं मर रही हैं या मारी जा रही हैं ? ऐसे लोभी मनुष्यों को क्या कहा जाय राक्षस ही कहा जाय या कोई दूसरी उपमा दी जाय ? पशु भी ऐसा दुष्कर्म नहीं करते हैं। असली शेर भी उतना ही शिकार करता है जिससे कि उसका पेट भर जाय और सही भूख न लगे तब तक शिकार नहीं करता और यह मनुष्य क्या करता है ? पेट भरने के लिए या पेटियाँ भरने के लिए या धन का पहाड़ खड़ा करने के लिए ? ऐसी लालसा के साथ वह खोटे से खोटा आचरण करते हुए भी नहीं हिचकिचाता है। इसी कारण मानवता तक को भूल जाता है। कोठों में अनाज सड़ता रहता है, पेटियों में कपड़े गलते रहते हैं, फिर भी लोभी मनुष्य उसे भूखों और नंगों को देना नहीं चाहता। ऐसे मनुष्यों को आप किस कोटि में रखना चाहेंगे ? आप ही निर्णय लें और इस संदर्भ में अपने जीवन व्यवहार पर भी अवश्य एक नजर डाल लें।

इस सलखू नाइन ने असंयम में डूब कर कौन-सा पाप ढोया ? वह नये जन्मे बच्चे-बच्चियों के प्रति अपनी कर्तव्य भावना दिखाती तो वह आगे चलकर कितना लाभ उठा सकती थी ? लेकिन भ्रष्टमति होकर स्वार्थ में अन्धी बन गई और पशु से भी निकृष्ट कृत्य कर बैठी। उसने सोच लिया कि जब तक महारानी बेहोश है, तब तक काम निपटा लेना चाहिए। अब विलम्ब करने का प्रसंग नहीं है। अपने हाथों से इन बच्चों को मार डालूं..... वह सोचती है, लेकिन फिर टिठक जाती है। कैसे मारूं ? मेरे हाथों से न मारूं और ऐसा करूं कि ये जीवित न बच सकें।

महाराजा के उस निजी उद्यान के पीछे ही जंगल शुरू हो जाता था। उस जंगल में एक ऐसा कुआ था, जिसमें पानी नहीं था, उसमें कूड़ा-कचरा भरा था और कई तरह के जन्तु रहते थे। उस कुए का ध्यान आते ही सलखू ने उन नवजात शिशुओं को लेकर उस दिशा में तेजी से कदम बढ़ाये। उसने दोनों सुन्दर सुकुमारों को कुए में फैंक दिये और कुतिया के दोनों पिल्लों को लेकर वापिस चली आई। वे ही दोनों पिल्ले थे जो महारानी को बताये गये कि वे उसकी कोख से जन्में हैं और यही बात महाराजा को बताई गई, जो उसे एक दुर्घटना मानकर बुरी तरह से चिन्तित हो रहे थे। उनसे गुत्थी नहीं सुलझ रही थी कि ऐसी अकल्पनीय

बात कैसे घटित हो सकती है ? इसका कारण यही था कि वे सद्भावी महाराजा उस घटना का दोषारोपण बिना सूत्र के किसी के ऊपर नहीं करना चाहते थे। फिर सलखू ने यह सूचना महाराजा को ऐसे नाटकीय हाव-भाव के साथ दी कि उन्होंने उसके प्रति किसी तरह की शंका नहीं की।

सलखू ने सोचा कि मेरे अलावा किसी को भी बच्चों के कुए में डालने का पता नहीं है, सो बात छिपी ही रह जायगी। कोई नहीं जान पायेगा कि मैंने क्या किया ? यह सोचकर वह निश्चिन्त हो गई और उसने एक दासी को भेज कर महाराज को सूचना करवाई कि प्रसव कार्य ठीक तरह से पूरा हो गया है। महाराजा ने यह सुना तो दौड़े-दौड़े आये क्योंकि शुभ सूचना सुनने के लिए वे परम उत्सुक हो रहे थे। वे तो दासी की बात सुनते ही विचार-मग्न हो गये कि अब तुरन्त क्या-क्या कार्यक्रम रखने हैं ? कार्यक्रमों में उनका ध्यान गया कि गरीबों को धन बांटना है, जनता की भलाई के काम करने हैं, कैदियों को छोड़ना है आदि-आदि। उनका मन बना कि ऐसे शुभ अवसर पर पूरा परोपकार करना है।

जब महाराजा महारानी के कक्ष के बाहर पहुँचे तो सलखू उन्हें सूचना देने के लिए झूठ बाहर निकल आई। उसने अपने चेहरे को नकली दुःख और पीड़ा के भावों से रंग लिया तथा मुँह बनाकर इस तरह महाराजा के सामने खड़ी हो गई जैसे उसकी रुलाई छूट रही हो, मगर वह कुछ भी बोल नहीं पा रही हो। महाराजा का तो हर्ष समा नहीं रहा था, अतः उस और तुरन्त उनका ध्यान नहीं गया और वे पूछ बैठे-क्या हुआ सलखू ? क्या दोनों राजकुमार आये या दोनों राजकुमारियां अथवा एक राजकुमार और एक राजकुमारी ? महाराजा की जिज्ञासा उग्र बनी हुई थी। सलखू तो नाइन-चरित्तर शुरू कर बैठी और फफक-फफक कर रोने लगी। महाराजा आश्चर्य चकित कि इस मंगल वेला में भला यह क्या कर रही है ? उन्होंने डपट कर पूछा- क्या बात है ? वह बोली कुछ नहीं और इस तरह जमीन पर गिर पड़ी जैसे कि हकीकत में उसको चक्कर आ गया हो। फिर हड़बड़ा कर वह उठी और विलाप करते-करते कहने लगी- महाराज, महारानी जी का जीवन तो बच गया किन्तु मेरा ही भाग्य फूटा हुआ निकला जो उनकी कोख से आदमी के नहीं, कुतिया के बच्चे निकले हैं। महाराज को तो इतना सुनते ही मूर्छा जैसी आने लगी। पहले तो वे

जैसे विचार शून्य से हो गये, बाद में जो भांति-भांति के विचारों से ग्रस्त हुए तो विचारमग्न ही बने रहे।

महाराजा हतप्रभ से सोच ही रहे थे कि, दीवानजी आ गये और सलखू को झिंझोड़कर पूछने लगे कि ऐसी अनहोनी कैसे हो सकती है ? सलखू ने सोचा कि मौके पर तीर मार दूँ, सो बोली— मैं जानती हूँ कि ऐसी अनहोनी कैसे हो सकती है—मुझे सब पता है। दीवानजी अचम्भे से उसका मुंह ताकने लगे और बोले—स्त्री के गर्भ से कभी पशु जन्में—ऐसा मैंने नहीं सुना। फिर तुमको क्या पता है, जल्दी से बताओ। महाराजा का ध्यान भी अनायास ही उसकी तरफ मुड़ गया।

सलखू कहने लगी—आपने नहीं सुना होगा किन्तु कभी-कभी ऐसे मौके भी आते हैं। पशु का सम्बन्ध स्त्री से हो जाता है तो ऐसी अनहोनी भी हो जाती है। यह सुनते ही महाराजा तो जैसे पानी-पानी हो गये और कुछ का कुछ सोचने लगे।

कल्पना कीजिये कि असंयम के कुटिल बीज को जब दुष्ट मनुष्य झूठ और नीचता के पानी से सींच देता है तो उसका कैसा विकृत फल प्रस्तुत हो जाता है ? सलखू ने तोड़ मरोड़ कर ऐसी घटना खड़ी कर दी जैसे वह दूध की धुली हुई है और जो पाप किया है, वह सब महारानी ने किया है। छल-छद्म की सीमा लांघ गई थी वह ! मन ही मन वह खुशी के झकोरे खा रही थी कि कितनी सफाई से उसने षड्यन्त्र को कामयाब बना दिया है ? अब उसकी पौ बारह है। सभी ओर से उसको लाभ ही लाभ है। ग्यारह रानियों का मनचाहा उसने कर दिया था कि राजकुमार-राजकुमारी न रहे और नई महारानी इतनी बदनाम हो जायेगी। महाराजा को भी उसका अहसान ही मानना पड़ेगा कि ऐसी कठिन परिस्थिति में भी नई महारानी की जिन्दगी बचा ली गई है।

महाराजा कांपते कदमों से महारानी के कक्ष में पहुँचे और उन्होंने देखा कि वास्तव में उसके पहलू में दो पिल्ले पड़े हुए हैं। वहीं से महाराजा उल्टे पैरों अपने कक्ष में चले गये और मन को नियन्त्रित करके साधना-रत हो गये। नई महारानी पश्चात्ताप करने लगी कि उसने ऐसे क्या कुकर्म पहले के जन्म में किये थे जिनका ऐसा कुफल उसे आज देखना पड़ा। महाराजा की रुष्टता तो उसको मिलेगी ही, ऊपर से अपयश और भोगना

पड़ेगा। उधर ग्यारह रानियाँ खुशी से फूली जा रही थी कि सलखू ने जैसा कहा वैसा ही कर दिखाया। उनका बदला पूरा हो गया था—अब मुंह दिखावें महाराजा और हिम्मत करे उनका निरादर करने की ? असल में क्या बात होती है और दुष्ट उसका क्या अपरूप बनाकर उसे सबके सामने प्रस्तुत कर देता है कि नकल का असल से कहीं ताल्लुक तक नहीं दिखाई देता। चन्द्रसेन और विश्वसुन्दरी आर्त और रौद्र ध्यान से विलग होकर अपना अन्तकरण धर्म ध्यान में लगा रहे थे तो ग्यारह रानियाँ व सलखू प्रतिशोध और स्वार्थ की दुष्टताभरी खुशी में फूली जा रही थी। क्या आश्चर्य है कि साधु बिच्छू को बचाना नहीं छोड़ता और बिच्छू उसे डंक मारना नहीं छोड़ता। महाराजा शोक सन्ताप दूर करने के लिये धर्म की आराधना में प्रवृत्त हो गये और नई महारानी भी पश्चात्ताप करती हुई सोचने लगी कि यह उसके पूर्वसंचित कर्मों का फल है अथवा किसी षड्यन्त्र का परिणाम, किन्तु कोई निश्चित निर्णय न ले पाने के कारण आत्म-साधना एवं समभावना में तन्मय बन गई। वह सर्व प्रकार से धर्म ध्यान का अवलम्बन लेकर चलने लगी।

पूर्व जन्म की पुण्यवानी का जब उदय होता है और आयुष्य का बल प्रबल होता है तो उसका कैसा भी दुष्कर्म कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। सलखू तो नवजात शिशुओं को कुएँ में फैंकती ही तत्काल वापिस चली आई थी किन्तु उसी समय उधर से एक ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड़ बाबा निकले, जिनकी दृष्टि शिशुओं की तरफ चली गई। शिशुओं को जब फैंका गया था तो वे सूखे पत्तों की ऐसी मोटी परत पर गिरे कि उन्हें कोई आंच नहीं आई अतः वे रोने लगे। शिशुओं का रूदन भी उन बाबा ने सुना तो वे तुरन्त कुएँ के भीतर पहुँचे और दोनों बच्चों को हाथ में लेकर बाहर निकल आये।

यह गम्भीर चिन्तन का विषय है कि पाप कृत्य कर लेना तो सहज है किन्तु उसको दबा देना उतना ही कठिन—पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग। इस कारण प्रत्येक विवेकशील मानव को पाप की जड़ क्या है—इसे समझना चाहिये और उस मूल को पकड़कर संयम की दिशा में अग्रसर होना चाहिये। संयम पर पूर्ण श्रद्धा रहेगी तो एक दिन अवश्य आयगा कि पूर्ण संयम अंगीकार किया जा सके। यह भी संयम का प्रथम चरण है कि जब साधु अवस्था स्वीकार्य न हो, तब तक श्रावक के बारह

व्रत अवश्य ग्रहण किये जाय। संयम की साधना करने से ही आत्मा क्रूर कर्मों के बन्धन से बच सकती है। इसी भावना के साथ चन्द्रसेन एवं विश्वसुन्दरी तब संयम का अवलम्बन लेकर उस कठिन समय में भी शान्ति का अनुभव करने लगे। बाह्य परिस्थितियों की अत्यधिक अशान्ति का भी आन्तरिक शान्ति से शमन हो जाता है।

मनुष्य का मन चिन्तन की एक ही धारा में लम्बे समय तक लगातार टिका हुआ नहीं रहता है। एक ही धारा अधिक से अधिक एक मुहुर्त तक चलती है। क्योंकि उसके बाद दूसरी धारा चल जाती है। महाराजा चन्द्रसेन की चिन्तनधारा भी आन्तरिक चिन्तन में चली तो अन्तर्मुहुर्त में विश्वसुन्दरी की ओर मुड़ गई और वे सोचने लगे कि इतने लम्बे समय तक धर्मपत्नी के नाते विश्वसुन्दरी के साथ रहने से उसकी चारित्रिक उच्चता का ही अनुभव हुआ है तथा उसकी आन्तरिक विशुद्धता का ही परिचय मिला है, फिर यह कैसे क्या हो गया ? उन्हें तो उसके अनुकूल दिव्य स्वरूपी सन्तान की ही आशा थी। ऐसी आशा के विपरीत वह कुतिया के पिल्लों जैसी सन्तान को जन्म दे—यह कतई विश्वसनीय नहीं लगता। किन्तु यह नाइन जो बोल रही है, वह भी भला गलत क्यों बोलेगी ? तो क्या महारानी ने मेरे जीवन पर कलंक लगाया है और अपने जीवन तथा इस राज परिवार को भी लांछित किया है ? इसी तरह उनके मानस में कभी यह तो कभी वह उठता रहा—चिन्तन में स्थिरता अथवा निश्चितता नहीं आ सकी। उनकी मनःस्थिति ऐसी असन्तुलित सी हो रही थी कि भांति—भांति के विचार उठते रहे। यह भी उनके मन में आया कि पशु से सम्पर्क होने के तथ्य का पता विश्वसुन्दरी से पूछ कर क्यों न लगाया जाय ?

धीरे—धीरे चन्द्रसेन का सोच एकांगी होने लगा और एक तरफ़ी भावना बनने लगी कि विश्वसुन्दरी का ही दोष हो सकता है। यह सोचते हुए उनके मन में उठा कि ऐसी महारानी का मुंह भी नहीं देखना चाहिये। विचार की उसी धारा में उन्होंने दासियों का आज्ञा दे दी कि नई महारानी को दूसरे छोटे मकान में पहुँचा दो और वहाँ उसकी खाने पीने की समुचित व्यवस्था कर दो—राजरानी की तरह सम्मान देने की आवश्यकता नहीं है। यह आज्ञा देकर महाराजा वहाँ से चले गये और भीतर ही भीतर खिन्न से रहने लगे। उनका राज्य के कामकाज में भी मन नहीं लगता था। दीवानजी बार—बार आश्वस्त करते कि जो हुआ सो हुआ, उसे भूल जाइये

किन्तु महाराजा न उस घटना को भूल पाते और न अपने मन को स्वस्थ बना पाते। उनको ऐसा अनुभव होने लगा कि वे किसी भी कार्य को करने में सक्षम नहीं रह गये हैं।

उधर महारानी विश्वसुन्दरी विचार कर रही थी कि पतिदेव मेरे साथ कितना स्नेह रखते थे और मेरी बात को पूरा आदर देते थे किन्तु अशुभ कर्मों का कैसा झोंका आया है कि वे मुझसे इस तरह रुष्ट हो गये हैं। मैंने अज्ञानपूर्वक कोई काम किया हो, अपनी आत्म-शक्ति को कभी भी गलत रास्ते पर लगाई हो अथवा किसी पर झूठा लांछन लगाया हो—ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता है। किसी पर कोई दोष लगाने से क्या लाभ ? सलखू नाइन को पूरी विश्वासपात्र समझकर ही महाराजा ने लगाई होगी और उसकी काफी धनराशि भी दी, फिर वह ऐसा काम क्यों करने लगी ? फिर कुतिया के ये पिल्ले मेरी गोद में कैसे आये ? मैं जहाँ तक अपने पिछले जीवन का अवलोकन करती हूँ और अरिहंत सिद्ध की साक्षी से अपने आचरण की आलोचना करती हूँ तो एक भी तथ्य ऐसा समझ में नहीं आता है जो न्यूनतम रूप से भी कलंकयोग्य माना जा सके। जब से मैंने होश सम्हाला है तब से अपनी एक-एक वृत्ति और प्रवृत्ति की तरफ बारीकी से भी देखती हूँ तब भी मुझे एक भी वृत्ति या प्रवृत्ति ऐसी नहीं दीखती कि मैं चारित्र्य के ऊँचे धरातल से कभी भी फिसली होऊँ। मैंने सदा ही सभी पुरुषों को पिता और भ्राता के तुल्य माना है, फिर पशु के प्रति मेरी विकारपूर्ण विचारणा स्वप्न में भी सम्भव कैसे हो सकती है ? जब मैंने पशु को विकार की दृष्टि से न सोचा, न देखा तो फिर यह पशुवत् सन्तति मेरी कोंख से कैसे जन्म ले सकी ? सलखू नाइन ने तो कहने को कह दिया कि स्त्री जिस किस्म के पशु से संसर्ग करे, वैसे पशु के बच्चे उस स्त्री की कोख से जन्म ले सकते हैं। लेकिन मेरा मन तो जानता है कि मेरे मामले में यह सरासर झूठ है। फिर इसके पीछे क्या रहस्य हो सकता है ?

उसके दिमाग में यकायक सूझा कि क्या यह कोई षडयंत्र नहीं हो सकता है ? मेरे साथ महाराजा का विवाह हो जाने से और उन का मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह प्रदर्शित होने से अन्य महारानियाँ कहीं जलभुन न गई हों और उन्होंने कोई प्रपंच खड़ा न कर दिया हो। हों सकता है कि मेरी प्रशंसा से वे मेरी बड़ी बहिनें ईर्ष्यालु बन गई हो। कारण, दूसरी बहिनों के सन्तान नहीं हुई और मेरे हो रही थी सो उसके कारण भी दुर्भावनावश कोई

कुकृत्य करवा दिया गया हो। यह ऐसा कुकृत्य कराया गया है कि सन्तान भी नष्ट हो जाये और मैं भी बदनाम होकर महाराजा की नजरों से गिर जाऊँ। कुकृत्य यह करवाया हो कि मेरे बच्चों को उठवा लिया गया हो और मेरी अचेतनावस्था के समय कुतियाँ के पिल्ले रखवा दिये गये हों। लेकिन इस तरह से कुकृत्य का मेरे पास प्रमाण क्या है ? फिर सहसा मैं किसी पर आरोप कैसे लगा सकती हूँ ? यों देखें तो प्रत्येक नारी सन्तान चाहती है और उसके किसी कारण से सन्तान नहीं हो तो वह दूसरी की सन्तान से भी स्नेह करती है। मेरी बड़ी महारानियों के सन्तान नहीं हुई तो वे मेरी सन्तान की ईर्ष्यावश शत्रु भी हो सकती हैं और उसके लिये स्नेह भावना वाली भी हो सकती हैं इसलिये कल्पना के आधार पर दोषारोपण करना नये कर्मों के बन्ध का कारण हो सकता है और मेरे लिये ऐसा करना योग्य नहीं है।

तो क्या यह किसी देव माया का परिणाम तो नहीं है ? किसी देव ने कौतूहलवश रूप परिवर्तन कर दिया हो और मेरे धैर्य व सद्भावों की परीक्षा ले रहा हो जिसने मेरे बच्चों को हटा कर कुतिया के पिल्ले रख दिये हों। जीवित पुत्रों को हटा कर मृत पुत्रों को रख देने की दैविक घटना देवकी महारानी के साथ भी तो घटी थी। कहीं ऐसी ही स्थिति मेरे साथ तो नहीं बन गई है ? कहीं ऐसा हो तो चारों ओर पता तो लगवाना चाहिये कि किसी को नवजात शिशु कहीं पड़े हुए मिले हों।

विश्वसुन्दरी दुःखित मानस के साथ तरह-तरह की कल्पनाएं कर रही थी—किसी भी एक कल्पना पर ठहर नहीं पाती थी। एक तो सन्तानें गायब कर दी गईं और दूसरे अपयश और रोष की स्थिति का सामना करना पड़ रहा था महारानी को। विवाह की अल्पावधि में ही कष्टों का ऐसा पहाड़ उसके सिर पर आ गिरेगा— ऐसा उसने सोचा तक नहीं था।

दुःखों के इस पहाड़ की सबसे बड़ी चट्टान के रूप में उसके सामने आया था उसके पतिदेव का उसके प्रति प्रकट किया गया रोष और तिरस्कार। पिता तो संसार छोड़कर चले गये। अब पूरे संसार में पति के सिवाय उसका अपना है ही कौन ? और वे पति ही उसके प्रति रुष्ट हो गये हैं तो वह किसके सहारे जी सकेगी ? महाराज ने खुद ने समझाया था कि यह पति-पत्नी का सम्बन्ध धर्म से जुड़कर एक दूसरे को आपत्ति

से बचाने और धर्म मार्ग पर प्रवृत्त कराने के लिये है लेकिन वे ही मेरे साथ कठोर हो गये और अपना कर्तव्य भूल गये हैं। किन्तु उनको भी क्या दोष दूँ ? उन्हें अपने लिये से भी बढ़कर जनता के लिये सन्तान की कामना थी। उस कामना पर एकाएक कुठाराघात हो जाने से उनका विचार सन्तुलन एकदम विचलित हो गया है और वे हताश से ग्रस्त हो गये हैं।

महारानी अन्ततोगत्वा इसी बिन्दु पर आकर ठहर जाती हैं कि मुझे किसी को कोई दोष नहीं देना चाहिये और सारी परिस्थिति का शान्त चित्त से सामना करना चाहिये। दोष लगाकर आर्त्त रौद्र ध्यान करूँगी तो और नये कर्मों का बंध होगा। ऐसा मुझे नहीं करना चाहिये। पतिदेव ने मुझे जो धर्म का प्रकाश दिखाया है साधना का समत्त्व दिया है—उससे भटक कर मुझे अन्धकार में नहीं पहुँच जाना चाहिये अथवा विषमता के दलदल में नहीं फंसना चाहिये।



12

साधना में दृढ़ता की परीक्षा कई प्रकार से होती है। आप लोग भी सामायिक करते हैं—नियमित भी करते होंगे और अपने जीवन में ऊँची नीची परिस्थितियाँ भी आती होंगी। कभी सामाजिक सम्बन्धों में तनाव आते हैं या आर्थिक दृष्टि से लाभ—हानि के प्रसंग उठते हैं अथवा अन्य प्रकारों से आपत्ति विपत्ति के अवसर देखते हैं, तो ऐसा विचार उठता होगा कि इतने समय से सामायिक की साधना या धर्माराधना कर रहे हैं, फिर भी इस तरह की खेदकारक परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है तो फिर क्या लाभ हुआ सारी साधना का ? यह सोचना मन की कमजोरी है जो कठिन समय में साधना के विषय में शंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। कभी—कभी कई भाई हताश होकर साधना का मार्ग छोड़ भी देते हैं।

किन्तु वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाये तो ऐसी ऊँची नीची परिस्थितियों को साधना की दृढ़ता को परखने की कसौटी मानकर चलना चाहिये। विद्यार्थी वर्ष भर पढ़ाई करता है और उसके बाद जब उसकी परीक्षा ली जाती है तो उसी से उसकी पढ़ाई की जाँच होती है। आप सामायिक करते रहें और जब ऊँची नीची परिस्थितियाँ आवें तब घबरा उठें तो सोचिये कि आप परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे अथवा अनुत्तीर्ण ? परीक्षा काल आने पर ही तो सामायिक की साधना की मजबूती जांची जा सकेगी। अतः ऊँची नीची परिस्थितियों को परीक्षा काल समझकर चलना चाहिये तथा धर्म ध्यान के स्थायित्व को सुदृढ़ बनाना चाहिये ताकि विपत्तियों का कभी बड़ा झोंका आवे तब भी स्थिरता बनी रह सके।

यदि आपत्तियों—विपत्तियों से घबरा कर धर्माराधना छोड़ दी जाती है अथवा उसमें शिथिलता आ जाती है तो समझना चाहिये कि तब तक

जो धर्मध्यान किया गया था, वह सही तरीके से नहीं किया गया। साधना की वास्तविक परीक्षा तो तब ही होती है जब सुख सुविधा नहीं रहती हैं और दुःखों की स्थिति आ जाती है। अगर ऐसे समय में वीतराग देवों के प्रति अटूट श्रद्धा बनी रहती है तो पहले की साधना में भी चार चाँद लग जाते हैं। ध्यान रखिये कि धर्म सदा हितकारी ही रहता है। ऊँची नीची परिस्थितियाँ तो पूर्वाजित कर्मों के शुभाशुभ फल के रूप में आती हैं। जहाँ कष्टकारक परिस्थितियों से घबराहट पैदा नहीं होनी चाहिये, वहाँ सुखदायक परिस्थितियों में भी बेभान होकर फूल नहीं जाना चाहिये। दोनों प्रकार की मनोदशाओं में साधना का क्रम दुर्बल होता है, यदि समत्व भाव न रखा जाय।

महारानी विश्वसुन्दरी ने उस विपत्ति काल को अपना परीक्षा काल ही समझा। वह विविध विचारों के प्रवाह में डूबी हुई सोच रही थी कि वह परिस्थिति उसके निकाचित कर्म बंधन का ही फल है जिसे शान्ति पूर्वक भोगने से ही साधना का क्रम बना रह सकता है। कदाचित् कर्मों का बन्धन कमजोर होगा तो शुभ साधना के बल से वह टूट जायेगा और परिस्थिति में सुखकारी परिवर्तन उपस्थित हो जायेगा। अतः पतिदेव ने जो सामायिक की साधना बताई है, उसमें समभाव पूर्वक प्रवृत्त रहना चाहिये। इस समय यही मुख्य अवलम्बन होगा। यह मेरी सामायिक साधना की परीक्षा है—इसमें मैं विफल न हो जाऊँ। सोना अगर आग में डालने पर उजला न हो और काला पड़ जाये तो उसको सोना कौन कहेगा ?

इस प्रकार समभावी विचारणा के सहारे महारानी अपनी मनोदशा में स्वस्थ सन्तुलन कायम करने का प्रयास करने लगी। अवमानना के साथ किये गये छोटे और पुराने मकान में रूखी-सूखी खाकर भी वह अपनी धर्म धारणाओं को सुदृढ़ बनाने लगी। वह उस समय आत्म शान्ति के लक्षण को अपने समक्ष रख कर चल रही थी।

दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि आत्माएँ जो अपनी शक्ति का स्वार्थ एवं नीचतावश दुरुपयोग करती हैं, उन्हें भी उसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है। समय लगता है लेकिन कुकर्म का कुफल मिले बिना नहीं रहता है। सलखू नाइन धर्म कर्म का मर्म कतई नहीं जानती थी। वह तो अर्थ लाभ और भौतिक सुख को ही सब कुछ मानती थी। अन्तराय कर्म का क्षयोपशम

था सो उसके पास काफी सम्पत्ति आ गई थी। महाराजा ने उसे उसका पूरा पारिश्रमिक दिया और तय था कि ग्यारह महारानियाँ भी षड्यंत्र की पूर्ण सफलता से परम प्रसन्न होकर उसकी झोली सोने से भर देगी। किन्तु सारी सम्पत्ति की प्राप्ति उसे अपनी आत्मा के घोर अधःपतन से ही होने वाली थी। वह निन्द्य कुकर्म करके उसने अपनी शक्ति का भयंकर दुरुपयोग किया। सलखू को धन के लालच ने मूर्छाग्रस्त सी बना दी थी—इसी कारण वह अपने अधःपतन को अपनी प्रसन्नता के रूप में ले रही थी।

ग्यारह रानियों की वही विश्वस्त दासी सलखू के घर पर पहुँची और उसने सन्देश दिया कि रानियाँ उसे बुला रही हैं। वह तुरन्त उनके पास पहुंची। सलखू को देखते ही सभी रानियाँ अपनी खुशी जाहिर करने लगीं कि जैसा वादा किया था, सलखू ने अपनी अक्ल से उसे कामयाब कर दिखाया है। मुखिया महारानी बोली—सलखू, हम तुम्हारा लोहा मान गई हैं कि तुमने सारे षड्यन्त्र को बड़ी खूबी के साथ सफल बना दिया लेकिन यह तो बताओ कि इस काम को तुमने किया किस तरह और नई महारानी की वे सन्तानें थी कौसी ? सलखू गरूर में भरकर कहने लगी—क्या बताऊँ कि आपका काम पूरा करने में मुझे कितनी सूझबूझ और हिम्मत दिखानी पड़ी है ? मुझे बहुत खुशी है कि मैंने आप की आज्ञा पूरी कर दी लेकिन मेरे मन में यह खतरा मंडरा रहा है कि कहीं भंडाफोड़ हो गया तो मेरा क्या होगा ? बाकी नई महारानी की दोनों सन्तानों के बारे में सुनकर आपको भी आश्चर्य होगा कि वे अति सुन्दर एवं सुकोमल ही नहीं, बल्कि दिव्यस्वरूपी थी। मेरा कठोर दिल भी एक बार तो उनके लिये पिघल उठा था किन्तु मैंने अपने आपको सम्भाला और मजबूत बनाया। फिर उन बच्चों को उठाकर पास के जंगल वाले कुए में फेंक आई और कुतिया के दो पिल्लों को लाकर महारानी के पास में सुला दिये। उस समय प्रसव वेदना के कारण महारानी बेहोश पड़ी हुई थी और मेरे सिवाय वहाँ और कोई भी नहीं था यह सुनकर वे रानियाँ चौंकी और बोलीं—क्या तुमने उन बच्चों को जीवित ही कुए में फेंक दिया या मारकर ? सलखू ने घबरा कर कहा—मैं इतनी कठोर और क्रूर होते हुए भी उन मनमोहक शिशुओं को मार नहीं सकी— उन्हें यों ही कुए में फेंक आई लेकिन वे उस कुए में बच थोड़े ही सकते हैं। बेचारे तभी मर गये होंगे। उनकी मृत देहें भी वहाँ के जन्तु खा चुके होंगे। तब वे रानियाँ आश्वस्त हो गईं और उन्होंने अपने कहने के

अनुसार विपुल स्वर्णाभूषण सलखू को दे दिये। इधर महारानियाँ खुशी से पागल थीं और उधर सलखू भी खुशी के हिंडोले में झूल रही थी।

जो आत्मा अच्छे कर्म बांधकर आती है तो उसकी पुण्यवानी का उदय होता है और किसी का भी निमित्त मिले उसका जीवन संरक्षित और पोषित हो जाता है। आज के लौकिक व्यवहार के भी कई उदाहरण सामने आते हैं कि जो बहिन अपनी नैतिकता से गिरकर गलत रास्ते पर चली जाती है और वह कभी नवजात शिशु को बाहर जंगल में अथवा अन्यत्र फेंक आती है तब भी कई निमित्तों से उस शिशु की रक्षा हो जाती है। ऐसा भी एक उदाहरण सामने आया है कि ऐसे ही फेंका गया एक नवजात शिशु जंगली जानवर का दूध पीकर बचा ही नहीं बल्कि बड़ी उम्र का भी हो गया—हां, उसके संस्कार उस जंगली जानवर के समान ही ढल गये। नई महारानी विश्वसुन्दरी की उन दोनों दिव्य सन्तानों को भी ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड़ उस कुए से निकाल कर अपने आश्रम में ले गये।

फक्कड़ ब्रह्मानन्द उन बच्चों की कमनीयता, कोमलता और दिव्य आकृतियाँ देखकर आश्चर्य चकित हो गये। वे चमत्कारी बाबा के नाम से जाने जाते थे। उनका आश्रम नगर से दूर था, फिर भी वहाँ उनके कई भक्त आते रहते थे। बाबा ने सोचा कि इन दोनों बच्चों का पालन पोषण आश्रम में ही कराया जाय। उन्हें उन बच्चों के जनक और जननी पर क्रोध भी आया, जिन्होंने मोहवश सन्तान पैदा करने का पाप तो किया, लेकिन उनका पालन पोषण करने से दूर हट गये। मनुष्य जाति के ऐसे निर्दयों को उन्होंने धिक्कारा। बाबा विचार करने लगे कि पशु पक्षी भी अपनी सन्तति को ममता देते हैं लेकिन नवजात इन शिशुओं के माता-पिता ऐसे निर्दयी कैसे निकले ? बच्चों की आकृतियाँ तो यह बताती हैं कि इनको पैदा करने वाले भी प्रभावशाली होने चाहिये, फिर ऐसे व्यक्ति भला अपनी सन्तान को यों क्यों फेंक देते ? हो सकता है कि यह दुष्कृत्य किसी और ने किया हो ? यह भी हो सकता है कि किसी कुमारिका की ये अवैध सन्तति हो और इस कारण फिंकवा दी गई हो। कुछ भी हो— बच्चे बहुत ही पुण्यशाली दिखाई देते हैं और इनकी तेजस्विता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनकी माता अवश्य ही चारित्र्य-शीला रही होगी, क्योंकि चरित्रहीन माँ को ऐसी सन्तान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जो भी हो, ये बालक अत्यन्त सौभाग्यशाली होने चाहिये।

तभी तो बाबा ने सोचा कि ये उन्हें भी इतने प्रिय लग रहे हैं जिन्हें देख कर ही अद्भुत आनन्द की प्राप्ति हो रही है। इस उनकी गुण निष्पन्नता की दृष्टि से उन बाबा ने बालक का नाम रखा आनन्दसेन और बालिका का चम्पकमाला। ब्रह्मानन्द ही आनन्दसेन और चम्पक माला के माता, पिता और रक्षक सब कुछ बन गये जिनके स्नेह भरे संरक्षण में वे दोनों बच्चे चन्द्रकलाओं की तरह बढ़ने लगे। उनका आश्रम उन बच्चों की मधुर किलकारियों से गूँजने लगा।

कई संन्यासी तो सूखे लकड़ों को जलाकर आतापना लेते हैं तो कई संन्यासी हाथी पर बैठकर घूमते हैं, किन्तु ब्रह्मानन्द अलग ढंग के संन्यासी थे। वीतराग वाणी से उनका सम्पर्क हो चुका था तथा वे सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एवं आस्था को सम्यक् दृष्टि के साथ लेकर चल रहे थे।

हमारे कोई भाई पूछते हैं कि मेरे भीतर सम्यक्त्व आया या नहीं, किन्तु इस बात का निर्णय बाहर वाला दूसरा नहीं बता सकता है। इसका निर्णय तो चिन्तन के आधार पर स्वयं को ही लेना पड़ता है। दीन दुःखी को देखकर जिसका हृदय करुणा से द्रवित हो उठता है, विषय कषायों से जिसका मन उदास हो गया है अथवा विषमता के दृश्यों से जिसका अन्तःकरण कष्ट पाता है उसे समझना चाहिये कि उसकी आत्मा सम्यक्त्व के पथ पर अग्रसर हो रही है। ब्रह्मानन्द भी सम्यक्त्व के भाव एवं व्यवहार रूपों को इस रूप में आचरित कर रहे थे। वे उन दोनों शिशुओं का लालन-पालन करते हुए अपने भीतर समत्व भावना का आनन्द ले रहे थे। इस भावना के साथ मोह ममत्व नहीं रहता। उन्होंने यह नहीं सोचा कि ये शिशु मेरे नहीं हैं फिर मैं इनके लालन पालन का श्रम क्यों करूँ ? जो माता सम्यक् दृष्टि नहीं होती है और संयुक्त परिवार के सभी बच्चों को रमाती है तो उसके मन में मेरे तेरे का भेद उठता है और देरानी-जेठानी का चक्कर पैदा होता है। अपना पुत्र जरा सा भी रोवे तो उसे घबरा कर उठा लेती है और भांति-भांति के उपायों से चुप करती हैं लेकिन वही बच्चा अगर देरानी का जेठानी का हो तो ऊपर का ढोंग कर लेंगी मगर मन से सावधान नहीं रहेगी। सम्यक्दृष्टि भाव वाली माता इस तरह का भेद नहीं करती है। अपना हो या दूसरी का-सभी बच्चों को एक सा समझती है। यह सम्यक् दृष्टि का भाव उन आत्माओं में सुन्दर रीति से उदित होता है, जो सामायिक की साधना में निरन्तर तन्मय बनती हैं।

समत्त्व भावना की दृष्टि से वे ब्रह्मानन्द संन्यासी उन शिशुओं को अपने ही समझकर उन पर अपना स्नेह उडेल रहे थे।

एक दिन रात्रि के समय आकाश में बादल मंडरा रहे थे। उस समय बाबा ब्रह्मानन्द ध्यान की स्थिति में बैठे हुए थे। उसी कमरे में दोनों शिशु भी सो रहे थे। अचानक बालक आनन्दसेन को पिशाब की हाजत हुई तो वह उठ खड़ा हुआ और बाबा से कहने लगा कि मुझे पिशाब करना है। बाबा ने बाहर जाकर पिशाब कर आने को कह दिया। रात में गहरा अन्धेरा छाया हुआ था अतः बालक ने कहा कि उसे अकेले बाहर जाने में भय का अनुभव हो रहा है।

संन्यासी ने आनन्दसेन को जोश दिलाते हुए कहा—तुम तो क्षत्रिय के वीरपुत्र जैसे लगते हो, फिर तुम्हें भयभीत तो होना ही नहीं चाहिये। बाबा की इच्छा थी कि बच्चों को ऐसे श्रेष्ठ संस्कार दूँ कि आगे जाकर इनका जीवन बहुत ही व्यवस्थित और सन्तुलित हो जाय। बच्चों को भय के संस्कार देते हैं तो वे भयभीत बनते हैं और कभी—कभी भयवश अपना जीवन विनष्ट तक कर देते हैं। भय के कुसंस्कारों से मन आरम्भ में ही दुर्बल हो जाता है। बाबा ने आनन्दसेन को कहा कि बाहर कोई भय नहीं है, तुम निःशंक होकर चले जाओ। इस पर आनन्दसेन अकेला ही झोंपड़ी से बाहर पिशाब करने के लिये चला गया।

ज्यों ही आनन्दसेन पिशाब करने को हुआ कि उसे एक विकराल रूप सामने दिखाई दिया। वह डर गया और जोर—जोर से चिल्लाने लगा कि बाहर भूत बैठा है।

संन्यासी ने बाहर निकल कर चारों ओर देखा कि बालक को किसने डरा दिया है ? फिर ललकार लगाई—कहाँ है भूत ? तब आनन्दसेन तो आकर संन्यासी के पैरों से लिपट गया किन्तु संन्यासी भी यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि यह सामने विकराल रूप किसका दिखाई दे रहा है ? उन्होंने कड़ककर पूछा—कौन हो तुम ? वह विकराल रूपधारी व्यक्ति आगे बढ़ा और संन्यासी को प्रणाम करके बोला—गुरुदेव, यह तो मैं हाथी हूँ, लेकिन पशुरूप हाथी नहीं। हाथी मेरा नाम है। मैं पहलवानी करता हूँ। मेरा हाथी जैसा बदन होने से लोगों ने मेरा नाम ही हाथी पटक दिया है किन्तु हूँ मैं आपका शिष्य। संन्यासी चौंके और बोले—भाई, तू मेरा

शिष्य कब से हो गया ? हाथी ने हंसकर कहा—मैं आपके सामने तो पहली बार ही आया हूँ लेकिन आपको महामन्त्र का जाप करते और उपलब्धियाँ प्राप्त करते जब से देख रहा हूँ तब से ही मन में मैंने आपको गुरु मान लिया है। आप प्रतिदिन जब भ्रमण करने बाहर जाते हैं तब नित्य कर्म के रूप में मैं प्रतिदिन आपके दर्शन कर लेता हूँ। उस बाबा ने पूछा—फिर अभी आकर तुम बच्चे को क्यों डराने लगे हो ? हाथी ने कहा—मैं अभी बच्चे को डराने नहीं आया हूँ। मेरा लम्बा चौड़ा शरीर देखकर बच्चा जैसे ही डर गया है। यह कहते हुए उसने बच्चे को बड़े प्यार से गोद में उठा लिया तो आनन्दसेन का भी डर दूर भाग गया।

हाथी पहलवान ने आनन्दसेन को बड़े प्यार से दुलराते हुए कहा—देखो, भैया मेरे शरीर को देखो—यह विकराल नहीं बल्कि पुष्ट शरीर है। गुरुजी अगर तुम्हें मुझे सौंप दें तो मैं भी तुम्हारे शरीर को व्यायाम का ऐसा अभ्यास कराऊँ कि तुम्हारा शरीर भी पुष्ट और सुगठित बन जाये। बाबा ने पहलवान को कहा—चलो भीतर आओ। हाथी ने कहा—मैं भीतर नहीं आ सकूँगा। किन्तु मेरे मन में इस बालक को देखकर यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि आप इसे मन से पहलवान बना रहे हैं तो मैं तन से पहलवान बना दूँ। यों तो मनोबल ही मुख्य होता है और मनोबल से ही कोई निर्भय बन सकता है, फिर भी शारीरिक बल भी साथ में जुड़ जाये तो मन का बल बढ़ जाता है। जैसे मनोबल ही सर्वोच्च होता है।

स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. ने लगभग 22—23 वर्ष तक स्वतंत्र चातुर्मास नहीं किया। वे प्रायः आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के साथ ही चातुर्मास किया करते थे। एक बार आचार्य श्री ने उन्हें बुलाया और कहा—आप को आगामी चातुर्मास चुरु में स्वतन्त्र रूप से करना है। आपका यह चातुर्मास विरोधी पक्ष के बीच में होगा क्योंकि उस कस्बे में समर्थन करने वाले तो एक दो भाई ही हैं। ध्यान रखें—कष्टप्रद अवस्था में रहना पड़ेगा। उन्होंने आज्ञा स्वीकार की और चुरु पहुँच कर अपने मन की पहलवानी साधी। चातुर्मास आरम्भ हुआ तो व्याख्यान की प्रभावशाली शैली के कारण प्रतिदिन परिषद् बढ़ने लगी, अन्य मतावलम्बी भी बड़ी संख्या में आने लगे और उपस्थिति जो चन्द व्यक्तियों से शुरू हुई थी, पाँच—पाँच सौ तक पहुँच गई। रेगिस्तानी जलवायु और खानपान के असर से पूज्य श्री के शरीर में कष्ट पैदा हुआ, फिर भी वे मन की मजबूती

को बराबर बनाये रख रहे थे। अन्य मतावलम्बियों के यहाँ गोचरी जाने में बत्तीस दोष टालने की दृष्टि से बड़े परिषह सहने पड़ते थे तथा इस बीच उनके नेत्रों की रोशनी भी कम होने लगी किन्तु किसी को इन कष्टों का भजकारा तक नहीं मिला। इस तरह मन की पहलवानी का उन्होंने अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया।

हाथी पहलवान की बात ब्रह्मानन्द संन्यासी को पसन्द आ गई और उन्होंने उसके प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी कि आनन्दसेन को शारीरिक दृष्टि से पुष्ट, सुगठित एवं बलशाली बनाने का अभ्यास वह करावे। संन्यासी मन की पहलवानी उसे सिखा ही रहे थे। मन की पहलवानी कठिन साधना के बाद ही प्राप्त हो सकती है। सन्त तुकाराम जी ने वह पहलवानी साधी थी कि उन की क्रोधी पत्नि ने एक बार उनकी पीठ पर गन्ना दे मारा। घटना यों है एक दिन बहार से एक गन्ना लेकर आये। और उसे अपनी पत्नि के हाथ में थमा दिया। पत्नि ने पूछा क्या देने वाले ने एक ही गन्ना दिया तब तुकाराम जी ने कहा देने वाला तो पूरी भारी ही आग्रह पूर्वक दे रहा था। पर मैं एक ही गन्ना लाया। इससे पत्नि को क्रोध आ गया जिससे वह गन्ना उसने तुकाराम जी की पीठ पर दे मारा। गन्ने का टूटना ही था। वह टूट गया। उसके तीन टुकड़े हो गये। तुकाराम को क्रोध आ जाना था पर नहीं आया। आता भी कैसे ? उन्होंने मन की पहलवानी जो साध रखी थी। उन्होंने हंसते हुए उत्तर दिया, तुम कितनी चतुर हो, तुमने एक गन्ने के तीन गन्ने बना दिए। संयोग की बात है घर में सदस्य भी अपन तीन ही हैं। जिससे सबको एक-एक गन्ना (गन्ने का टुकड़ा) मिल जायेगा। ऐसी पत्नि यदि आप लोगों को मिल जाये तो क्या घर छोड़ कर नहीं भाग जाओगे ? आशय यह है कि मन को समता की साधना से ही साधा जा सकता है।

जिस आत्मा ने पूर्व जन्म में धर्म का कार्य किया, शुभ भावनाओं के बल से अपने आपको निर्भय बनाया तथा दीनहीनों को शक्तिभर अपना संबल दिया, वह आत्मा निज स्वरूप की शुद्धि के साथ श्रेष्ठ पुण्य पुंज का संचय करती है। फिर उस पुण्यवानी का अगले जन्म में जब उदय आता है तब वही पुण्यवानी कठिनतम आपत्तियों के बीच में भी उसकी जीवन रक्षा करती है। आनन्दसेन ऐसा ही पुण्यशाली जीव था। जन्मते ही कुएँ में डाल दिया गया और माता-पिता के शुभ संयोग से वंचित रहा, फिर भी उसे

बाबा ब्रह्मानन्द का संरक्षण व सहयोग मिल गया। यही नहीं, बाबा के आश्रम में उसे संस्कारपूर्ण शिक्षा की सुविधा भी प्राप्त हुई। बाबा उसे वीतराग देवों की वाणी का रस-पान कराते और उसके मन को मजबूत बनाते तो हाथी पहलवान ने उसमें शारीरिक बल का विकास करके उसे अच्छा पहलवान ही बना दिया।

आनन्दसेन अपनी तरुणाई में पहुँचकर सुन्दर और सुदर्शनीय युवक तो बना ही, किन्तु मानसिक एवं शारीरिक शक्ति की जो उसकी आकृति पर झलक दिखाई देती थी, वह किसी को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहती थी। एक दिन हाथी पहलवान ने अपने शिष्य की परीक्षा लेने की ठानी और जब परीक्षा ले ली तो वह खुशी से पागल हो उठा। वह भागा भागा बाबा ब्रह्मानन्द के पास पहुँचा और बोला—गुरुदेव, आज मैं आश्चर्य चकित रह गया हूँ कि शिष्य अपने शिक्षक से आगे बढ़ गया है। ब्रह्मानन्द समझे नहीं, कहने लगे—क्या हुआ ? मैं समझा नहीं। तब हाथी ने समझाया—मैं आज परीक्षा लेने की इच्छा से आनन्दसेन के साथ मल्लयुद्ध करने लगा तो मैं दंग रह गया कि सारा अपना बल लगा लेने के बावजूद मैं उसके हाथों हार गया। अब तक मेरा अनुभव था कि मेरे समान बलशाली कोई नहीं है लेकिन अब आनन्दसेन मुझसे बढ़कर हो गया है। किन्तु आज मैं बहुत खुश हूँ। उन्होंने भी कहा—अरे हाथी, जैसे तुम आज बहुत आश्चर्य कर रहे हो, वैसे ही मैं भी बहुत आश्चर्य कर रहा हूँ क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि आनन्दसेन अपने मन की मजबूती में उतना पारंगत नहीं हो सका है जितना कि मैं उसे बनाना चाहता हूँ, फिर भी मैं अपना प्रयत्न बढ़ा दूँगा।

उधर चम्पा नगरी में प्रति वर्ष मनाये जाने वाले महोत्सव का समय समीप आ रहा था जिसमें भांति-भांति के आयोजन रखे जाते थे। इन आयोजनों में प्रयास यह रहता था कि राज्य में विकसित हो रहे विभिन्न गुणों का प्रदर्शन उनमें हो। इसी दृष्टि से मल्लयुद्ध याने पहलवानों की कुश्ती का भी कार्यक्रम उसमें रखा गया। महोत्सव का समय समीप आ जाने पर सभी कार्यक्रमों की सार्वजनिक घोषणा कराई गई, ताकि उनमें अपने गुणों का प्रदर्शन करने के लिये कलाकार सम्मिलित होने हेतु सम्पर्क कर सकें। यह घोषणा आनन्दसेन के कानों में भी पड़ी। उसने सोचा कि वह भी मल्लयुद्ध के कार्यक्रम में भाग क्यों न लें ? वह अपने शिक्षक हाथी पहलवान के पास पहुँचा और बोला—यदि आप आज्ञा दें तो मैं राज्य-महोत्सव

के मल्लयुद्ध कार्यक्रम में भाग लेना चाहता हूँ जिससे मैं आपकी शिक्षा का सफल रूप दिखा सकूँ। हाथी ने कहा—इसके लिये तुम बाबा ब्रह्मानन्द की आज्ञा लो क्योंकि उन्हीं की आज्ञा से मैंने तुमको पहलवानी सिखाई है। वे ही जीवन का आन्तरिक विज्ञान जानते हैं और तुम्हारे मन को पहिचानते हैं। हम तो यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे माता—पिता कौन हैं और तुम्हारा विशेष परिचय क्या है ?

आनन्दसेन तो माता और पिता दोनों के रूप में बाबा ब्रह्मानन्द को ही जानता था, अतः बोल पड़ा—मेरे माता—पिता और सब कुछ बाबा ही तो हैं। हाथी ने समझाया—बाबा ने तो तुम्हारा लालन—पालन और शिक्षा—दीक्षा की है। तुम्हारे माता और पिता तो कोई और हैं जो अज्ञात हैं। आनन्दसेन ने पूछा—तो मेरे माता—पिता का पता कैसे लगेगा ? हाथी ने यही कहा—इसकी चिन्ता मत करो, समय पर सब कुछ ज्ञात हो जायेगा। अभी तो मल्लयुद्ध के कार्यक्रम में अपने भाग लेने की अनुमति बाबा से प्राप्त करो।

तरुण आनन्दसेन उस समय वहाँ से रवाना तो हो गया किन्तु उसके तरुण मानस में एक गम्भीर जिज्ञासा जाग उठी कि उसे अपने जन्मदाता माता—पिता का पता लगाना है। वह बाबा के पास पहुँचा और बोला—बाबा, यहाँ राजधानी में बहुत बड़ा महोत्सव हो रहा है जिसमें विविध प्रकार के प्रदर्शन और कार्यक्रम रखे गये हैं। इनमें से एक मल्लयुद्ध का कार्यक्रम भी है। मैं आप से इस कार्यक्रम में भाग लेने की अनुमति चाहता हूँ। बाहर से बड़े—बड़े पहलवान कुशितयाँ लड़ने के लिये आयेंगे। मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें पछाड़ दूँगा। इससे आपका और चम्पानगरी का नाम ऊँचा उठेगा।

ब्रह्मानन्द आनन्दसेन की बात सुनकर गम्भीर मुद्रा में बैठ गये और अन्तर्धान करने लगे। इस प्रकार आन्तरिक चिन्तन के बाद वे बोले—पुत्र, अभी तुम अपनी शक्ति को गोपन करके रखो। मनुष्य को जो जो शक्तियाँ मिलती हैं, उन सभी का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। कूड़े—करकट को बाहर फेंको और रत्नों को भीतरी तिजोरी में रखते जाओ। गुणों का प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं है, जब अवसर आवे तब उनका इस तरह परिचय दो कि उसका कुछ सार निकले।

गौतम स्वामी कई लब्धियों के धारक थे, किन्तु वे अपनी लब्धियों को

गोपन करके रखते थे। ब्रह्मानन्द भी वीतराग वाणी का मर्म जानते थे, इसी कारण उन्होंने ध्यान करने के बाद कहा—मुझे विश्वास है आनन्द कि तुम इस कुशती प्रतियोगिता में हारोगे नहीं लेकिन अभी तुम्हारी शक्ति के प्रदर्शन का समय नहीं आया है इसलिये प्राप्त शक्ति का अभी प्रदर्शन नहीं बल्कि तुम्हें गोपन करना है। आनन्द तो अपनी तरुणाई में था और तरुणाई में उतावलापन होता है। इस अवस्था में गम्भीरता से चिन्तन करने में कम रुचि रहती है, सो वह कहने लगा—बाबा मुझे अपनी शक्ति को गोपन रखने का आप निर्देश कर रहे हैं तो क्या आप मुझे कमजोर समझते हैं या मेरे हार जाने की आशंका रखते हैं ? बाबा ने उसकी पीठ ठोककर कहा—अरे नहीं भैया, मैं तुम्हें कमजोर थोड़े ही समझ रहा हूँ। सिर्फ अभी सन्तोष रखने की बात बता रहा हूँ। किन्तु आनन्दसेन हठ करने लगा तो बाबा ने आज्ञा देते हुए भी यह कहा—देखो, मैं तुम्हें आज्ञा दे रहा हूँ किन्तु मेरे अन्तर्मन से नहीं। लेकिन मेरी एक बात बराबर याद रखना।

ब्रह्मानन्द बाबा अनुभवी थे। उन्होंने सोचा कि तरुण को ज्यादा दबाना भी ठीक नहीं है, किन्तु आज्ञा देकर भी उसे सावधान बना देना चाहिये। अतः वे बोले—एक बात का पूरा ध्यान रखना कि जब किसी भी समय तुम्हारे ऊपर कोई कष्ट आ जाये तो तुम नमस्कार महामंत्र का जाप कर लेना और वीतराग देव द्वारा बताई गई विधि के अनुसार मुझे भी याद कर लेना।



13

“उत्सवप्रिया: हि खलुजना:”—मनुष्यों को उत्सव प्रिय लगते हैं। चम्पानगरी के विशाल प्रांगण में वार्षिक महोत्सव का आयोजन किया गया था। प्रांगण ध्वजाओं व पताकाओं से सजाया गया तथा एक ओर विशाल मन्च बनाया गया। उस प्रांगण के चारों ओर जनता के लिये बैठकर देखने का स्थान बनाया गया। मन्च पर महोत्सव में भाग लेनेवाले कलाकारों को बिठाया गया तो एक ओर दूसरे मन्च पर महाराजा एवं राज परिवार के लिये सुसज्जित स्थान बनाया गया। महोत्सव के विविध कार्यक्रमों को देखने के लिये उमड़ा हुआ जनोत्साह अपूर्व था।

रनिवास में रहने वाली महारानियों में से पटरानी तो बहुत ही गम्भीर एवं साधक स्वभाव वाली थी किन्तु शेष ग्यारह रानियों की वृत्तियाँ चंचल तथा दुर्गुणयुक्त थी। वे भी इस महोत्सव को देखने के लिये आई हुई थीं।

महाराजा अपनी नई महारानी विश्वसुन्दरी के प्रति अतीव आकृष्ट थे किन्तु उसके उस प्रसवकाल के बाद से अतीव अपेक्षित हो गये थे। उनका मन उससे इतना हट गया कि इतने वर्षों में उन्होंने उसके पास जाकर पूछा तक भी नहीं कि वह कैसे है। इस अर्से में उन्होंने पहले की रानियों के साथ अपना आकर्षण जोड़ लिया था। वे उन रानियों की बात भी सुनने लगे तो उनकी सुख सुविधाओं का विशेष ध्यान भी रखने लगे। अतः जब उन रानियों ने महोत्सव में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की तो वे उन्हें अपने साथ लेकर महोत्सव के प्रांगण में पहुँचे।

महाराजा के वहाँ पहुँचते ही कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने की घोषणा कर दी गई। अन्य कार्यक्रमों के साथ मल्लयुद्ध का कार्यक्रम भी आयोजित था जिसके लिये अन्य पहलवानों के साथ सिंह के समान भव्य आकृति

वाले आनन्दसेन की उपस्थिति का सबको आभास हो रहा था। अधिकांश लोगों की आश्चर्य चकित दृष्टि आनन्दसेन पर लगी हुई थी कि यह प्रभावशाली तरुण कौन है, कहाँ से आया है और किस कार्यक्रम में भाग लेगा ? किन्हीं लोगों ने मालूम किया कि यह तरुण बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है और मल्ल युद्ध में भाग लेगा। वे सोचने लगे कि ऐसा सुकोमल और सुन्दर तरुण भला इन पहलवानों का कैसे मुकाबला करेगा ? लेकिन वे यह भी जानते थे कि अगर बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है तो अवश्य ही यह युवक विशिष्ट प्रतिभा एवं योग्यता वाला होना चाहिये। उन्हें वह विशिष्टता भी साफ-साफ दिखाई दे रही थी क्योंकि वह युवक शरीर से हृष्ट-पुष्ट, संस्कारों से शालीन और चारित्र्य सम्पन्नता से तेजस्वी दिखाई दे रहा था।

तभी मल्लयुद्ध के कार्यक्रम की घोषणा हुई और वह तेजस्वी तरुण अखाड़े में आ खड़ा हुआ। सब उत्सुकतापूर्वक उसी ओर देख रहे थे। महाराजा ने भी तब ध्यानपूर्वक उस तरुण को देखा जो अपनी तरुणाई में अतीव ही आकर्षक और मनमोहक लग रहा था। यही नहीं, उसे देखकर उनके हृदय में ऐसा रोमांच होने लगा था कि वे बिना कारण ही उसके प्रति आनन्दाभिभूत हो गये।

अखाड़े में कुशितयाँ होने लगीं और देखते-देखते आनन्दसेन सभी नये पुराने पहलवानों को पछाड़ता हुआ चला गया। वह सर्वविजेता बन गया। पुण्यवानी क्या-क्या करतब दिखाती है ? सारा जन समूह जयघोष के साथ उसकी सराहना करने लगा। महाराजा ने भी मन ही मन उसका विशेष सम्मान करने का निश्चय किया। ज्योंही आनन्दसेन के सर्व विजेता होने की घोषणा की गई तो महाराजा अपने सिंहासन से स्वयं उठकर अखाड़े तक गये और उन्होंने अपने हाथों आनन्दसेन को स्वर्ण हार पहिनाकर उसका विशेष सम्मान किया।

जब चन्द्रसेन और आनन्दसेन पास-पास खड़े चारों ओर से जनता का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे तो उस जोड़ी को देखकर सभी मन्त्रमुग्ध से हो गये। वे ग्यारह रानियाँ तो उस दृश्य को देखकर चौंक उठी, बल्कि एक बार ऊपर से नीचे तक कांप उठीं। अरे, यह क्या ? यह आनन्दसेन कहाँ का पहलवान है ? इसे देखकर ऐसा लगा रहा है जैसे

स्वयं महाराजा खड़े हों। दोनों इस तरह दिखाई दे रहे हैं जैसे एक नहीं दो चन्द्रसेन खड़े हों। महाराजा की हूबहू प्रतिकृति सी यह कौन तरुण है जिसके प्रति देखते हुए आकर्षण समाप्त ही नहीं होता है ?

उस भव्य तरुण को देखकर जहाँ पटरानी परम प्रसन्न हो रही थीं, वहाँ अन्य ग्यारह रानियाँ शंका और भय से आतंकित हो उठीं। कई तरह के विचार करके उनके मस्तिष्क में उमड़ने घुमड़ने लगे। उनका सन्देह जागा तो उनकी ईर्ष्या भी जागी। कहा जाता है चोर की दाढ़ी में तिनका होता है याने कि जब किसी का पता लगाने की बात आती है तो सबसे पहले चोर के मन में ही शंका जागती है। ग्यारह रानियाँ उस तरुण के प्रति सशंकित हो उठीं। पटरानी की विचारधारा उनसे भिन्न दिशा में चल रही थी। वह सोच रही थी अतीत की बातें कि जब उससे महाराजा को सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होंने एक-एक करके ग्यारह विवाह और किये, किन्तु उनसे भी सन्तति नहीं हुई। जब देव ने भविष्यवाणी की ओर महाराजा तदनुसार नई महारानी को ब्याह कर गर्भवती की अवस्था में उसे राजधानी में लाये तो सबको आशा हुई कि इस नई महारानी से महाराजा एवं जनता की आशा पूर्ति अवश्य होगी। इसके विपरीत जब महारानी द्वारा कुतिया के पिल्ले जानने की बात जाहिर हुई तो महाराजा अतीव खिन्न हो गये। आज इस तरुण को देखकर कुछ का कुछ विचार आ रहा है। यह दिव्य सन्तान किसकी कुक्षि से जन्मी है—यह मैं नहीं जानतीं, मगर यह निश्चित है कि इसको जन्म देने वाली माता महारानियों सी ही शालीन, सुसंस्कृत और चारित्र्य सम्पन्ना होनी चाहिये। इसको देखकर मेरे मन में बहुत ही प्रमोद हो रहा है और यह भावना जाग रही है कि न हुआ अपना ही राजपुत्र, क्यों नहीं महाराजा इसे ही गोद लेलें और अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनालें ? उसने अपना यह सुझाव महाराजा को एकान्त में निवेदन करने का भी निश्चय कर लिया। पटरानी का जीवन समता रस से ओत-प्रोत था। अतः वह उस तरुण की गुणधर्मिता पर रीझ गई थी।

पटरानी जहां अमित हर्ष के सागर में हिलोरें ले रही थी, वहीं ग्यारह रानियां शंका और भय से थरथराती हुई प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलने लगीं। जबसे आनन्दसेन की आकृति देखी और उसका महाराजा की आकृति से मिलान किया तब से उनके तन मन में शिथिलता छाने लगी थी। उसी शिथिलता की प्रतिक्रिया के रूप में उनकी प्रतिहिंसा जाग रही

थी। वे सोचने लगीं कि पटरानी जी को अलग रखकर हमने षड्यन्त्र रचा और सलखू नाइन के माध्यम से उसे पूरा कराया गया, किन्तु लगता है कि उसमें असफलता ही हाथ लगी है। सलखू ने नई महारानी के बच्चों की जीवन लीला समाप्त नहीं की थी और उन्हें जीवित ही सलखू कुए में फँक आई थी जिसका यह परिणाम हुआ हो सकता है कि वे बच्चे जीवित बचे गये हों और किसी का संरक्षण पा गये हों। यह तरुण तो इस प्रकार से बचा हुआ राजकुमार ही हो सकता है। इससे साफ है कि सलखू ने आश्वासन देकर भी हमें धोखा दे दिया और विपुल स्वर्ण राशि हमसे लेकर चली गई। ग्यारह रानियाँ परस्पर बहुत धीरे-धीरे बात करने लगीं कि उनके अनुमान के अनुसार यह तरुण नई महारानी विश्वसुन्दरी का ही राजकुमार होना चाहिये। इसका प्रमाण है कि इसकी और महाराजा की आकृतियाँ एकदम से समान हैं।

महोत्सव के सभी कार्यक्रम सम्पन्न हो जाने के बाद सभी अपने-अपने स्थानों को लौट गये। महाराजा भी राजभवन में पहुँच गये किन्तु उनका मानस तब भी अतीव हर्षावेग से रोमांचित हो रहा था। बार-बार उनकी आंखों के सामने आनन्दसेन की भव्य आकृति ही घूम रही थी और उसके प्रति आकृष्ट हो रहे थे। कहते हैं कि सयानों का एकमत होता है। तदनुसार पटरानी की तरह ही महाराजा के मन में भी विचार उठा कि वह पहलवान तरुण तो मेरे से भी अधिक भव्य व्यक्तित्व वाला दीख रहा था और मुझे बहुत प्यारा लग रहा था। उस पर मेरा लाडप्यार ठीक सन्तान की तरह उमड़ रहा था और अब भी उमड़ रहा है। मैं इसे समझ नहीं पा रहा हूँ लेकिन मेरा मन हो रहा है कि वह तरुण हमेशा मेरे पास ही रहे।

राजभवन पहुँचते ही ग्यारह रानियों ने अपने कक्ष में एक गुप्त बैठक की और उस तरुण के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की। उन्होंने निर्णय लिया कि इसी समय सलखू नाइन को बुलाकर सारी पूछताछ करनी चाहिये। सलखू बुलाई गई और ज्योंही वह आई, सभी रानियाँ उत्तेजित होकर बोल पड़ी-सलखू, तुमने यह क्या किया? हमको तेने धोखा क्यों दिया? उन बच्चों को तेने मारा नहीं और अब लगता है कि वे जीवित रहकर बड़े हो गये हैं। सलखू भी महोत्सव के दृश्य को देख आई थी और स्वयं वह भी सशंकित थी, अतः तत्काल कुछ बोली नहीं, शान्त खड़ी रही। तब तो मुखिया रानी क्रोधित होकर बोली-अब तेरा मुँह बन्द क्यों है?

इतना सारा सोना भी हम से ले गई और झूठा आश्वासन देकर तूने हमें ठग लिया। हमने कितना कहा था कि हमारी लाज रखना और अब दीखता है कि वही हमारी लाज चौपट ही जायगी।

तब धीरे-धीरे सलखू कहने लगी आपसे मैं माफी चाहती हूँ। उन नवजात शिशुओं की आकृति ही इतनी भव्य और प्यारी थी कि मैं चाहकर भी उन्हें मार डालने की हिम्मत नहीं जुटा पाई। मेरी अन्तरात्मा ने भी साक्षी दी कि ऐसे शिशुओं को अपने हाथों से मारने का पाप मत कर, इसलिये एक बार तो मैंने कुछ भी नहीं करने का विचार किया। लेकिन तुरन्त ही मुझे आपको दिये गये मेरे आश्वासन का ध्यान आगया और मैंने सोचा कि उसको पूरा करने के लिये मुझे कुछ तो करना ही चाहिये। यह सोचकर ही मैं दोनों शिशुओं को कुएँ में फेंक आई कि इस तरह मुझे उन शिशुओं को हाथ से मारना भी नहीं पड़ेगा और आपका काम भी बन जायेगा।

मुखिया रानी चीख उठी—यह सब तो हमने सुन रखा है लेकिन क्या तेने आज कुशितियों में सब पहलवानों को पछाड़ देने वाले उस तरुण को नहीं देखा ? क्या उस पहलवान तरुण की आकृति हूबहू महाराजा की आकृति से नहीं मिलती थी ? उसे देखकर क्या तेरे मन में यह विचार नहीं उठा कि महाराजा का ही वह राजकुमार होना चाहिये ? महाराजा कभी भी चरित्रहीन नहीं हो सकते, इसलिये यह तय है कि वही विश्वसुन्दरी की कौँख से जन्मा हुआ राजपुत्र होना चाहिये। अब देखले कि जब तक वह तरुण जीवित है, न हमारा जीवन सुरक्षित है और न ही तुम भी कठोर दंड से बच पाओगी। हमें एक पल भी चैन नहीं पड़ रहा है—यह तू समझ ले और जो कुछ अब भी कर सकती हो, वह कर वरना हम तो उपाय कर ही रही हैं।

आनन्दसेन ने भला इनमें से किसका क्या बिगाड़ा था ? अज्ञानी व्यक्ति अपने स्वार्थों में अन्धे बन कर दूसरों को देखकर जलते-भुनते हैं और निर्दोष होने पर भी उनको हानि पहुंचाने की कुचेष्टाएँ करते हैं। बारीकी से देखें तो आज यही दशा ठौर-ठौर पर इस संसार में बन रही है। सांसारिक प्राणी अपने दोष नहीं देखते चाहे वे पहाड़ जितने बड़े हों मगर दूसरों के राई जितने दोष भी देखते हैं और उनको पहाड़ जितना बना कर दूसरों को दिखाते हैं। यह दोष दृष्टि क्यों बढ़ रही है ? इसलिये कि

इस लालसाग्रस्त मन में अशान्ति व्याप्त हो रही है ? इसलिये कि इस लालसाग्रस्त मन में अशान्ति व्याप्त हो रही है। उस अशान्ति के कारण उसमें अपने आपको देखने की आदत नहीं रही है। इस कारण संशोधन नहीं हो पाता है।

रानियों ने सलखू नाइन को डपट कर कहा—अब देखना कि हम क्या करती हैं ? लेकिन याद रखना कि हमारी बात कहीं बाहर न फूटे। सलखू ने हाथ जोड़कर कहा—इसके लिये आप बिल्कुल निश्चित रहें। मैं आपके साथ हूँ। जब भी मेरी सेवा की जरूरत समझें तो मुझे बुलवा लें। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगी। सलखू को रवाना करके ग्यारह रानियां गुप्त मन्त्रणा करने लगीं कि अब आगे क्या किया जाय ? हमारा अभी महाराजा से जो मधुर सम्बन्ध चल रहा है, अगर इस कांटे को राह में से नहीं हटाया तो वह खतरे में पड़ जायेगा। वे सब नया षड्यन्त्र रचने में व्यस्त हो गईं।

फिर जब महाराजा उनकी तरफ आये तो उन रानियों ने बड़ा त्रिया चरित्र दिखाया। राजभवन के अपने निवास वाले हिस्से की ऐसी दुर्दशा बनादी जैसे कि किसी डाकू ने घुस कर उटका पटक कर दी हो। अपने वस्त्रों व बालों की दशा भी ऐसी अपरूप कर दी जैसे कि उधर आने वाले डाकू ने उनके साथ भी बलपूर्वक छेड़छाड़ की हो। महाराजा उस अस्त—व्यस्तता को देखकर चौंक उठे कि राजभवन में आकर इस तरह का अपराध करने का दुस्साहस किस दुष्ट ने किया है ? रानियों ने भांति—भांति के बनावटी हाव—भाव दिखाये और दासियों की झूठी साक्षियां प्रस्तुत कराईं कि जिसने आकर यहां सबको सताया है उसको हमने कल ही मल्लयुद्ध में देखा था—वही आनन्दसेन जिसने सभी पहलवानों को पछाड़ दिया था। रानियों ने एक स्वर से कहा—महाराज, आपने उसका बहुमान किया तो उसका हौंसला बढ़ गया। उसी ने आकर राजभवन में यह तहस—नहस मचाया है और हमारे साथ भी उसने दुर्व्यवहार किया है।

महाराजा भौंचक्के होकर उन रानियों को देखते रहे और अपनी आँखों में तैरती हुई आनन्दसेन की शिष्ट व सदाशयी मूर्ति को ध्यान में लेकर सोचते रहे कि यह कैसी विचित्र घटना उन्हें बताई जा रही है ? क्या आनन्दसेन जैसा भव्य व्यक्तित्व वाला तरुण कभी भी ऐसा उपद्रव कर

सकता है ? महाराजा ने विचार किया कि मैं ग्रहस्थाश्रम में रहता हुआ वीतराग देवका अनुयायी हूँ और श्रावक के बारह अणुव्रतों का पालन करता हूँ। श्रावक का पहला अणुव्रत मैंने अंगीकार कर रखा है कि निरपराधी प्राणी को न मारना है, न सताना है, किन्तु अपराधी— हिंसा का मुझे त्याग नहीं है। वीतराग का अहिंसा धर्म कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है। जो वीतरागवाणी का आशय भली प्रकार नहीं समझते हैं, वे सन्तों की अहिंसा वृत्ति को देखकर बिना विचारे बोल पड़ते हैं कि यह अहिंसा तो कायरों की अहिंसा है। जैसे साधु धर्म है कि कोई एक गाल पर चांटा मार दे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो, लेकिन अपनी ओर से किसी प्रकार की हिंसा वृत्ति मत दिखाओ। दूसरे लोग सोचते होंगे कि जैसा साधु करते हैं, वैसा ही श्रावक भी करते होंगे। किन्तु गृहस्थाश्रम में रहने वाला श्रावक पांच महाव्रतों का नहीं, बारह अणुव्रतों का पालन करता है जिसके अनुसार वह अपने प्रति अपराध करने वाले अपराधी के अपराध का प्रतिकार करने का त्याग नहीं करता है।

इस विचारणा के साथ महाराजा चन्द्रसेन ने सोचा कि जब रानियों से तथा अन्य साक्षियों से प्रमाणित हो गया कि राजभवन में आकर आनन्दसेन ने ही अपराध किया है तो मैं श्रावक होते हुए भी अपराधी के नाते आनन्दसेन को दंड दे सकता हूँ। वे भला इतनी साक्षियों को अविश्वसनीय क्यों मानते ? अतः उन्होंने उस तरुण के प्रति अपने मन में उठे प्यार के ज्वार को भी दूर धकेल दिया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि आनन्दसेन के इस गम्भीर अपराध को देखते हुए प्राणदंड ही दिया जाना चाहिये तब उन्होंने इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये कार्यवाही शुरू कर दी।

तत्काल महाराजा ने सेनापति को बुलाकर आज्ञा दी—तुम आज रात को ही सेना की टुकड़ी साथ ले जाकर बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम को घेर लो और उनके पुत्र आनन्दसेन को पकड़ लो जिसे मैंने प्राणदंड देने का निर्णय लिया है। महाराजा की आज्ञा से सूर्योदय होने से पहले ही बाबा ब्रह्मानन्द का आश्रम घेर लिया गया। तब सेना का मुख्य अधिकारी बाबा के पास पहुँचा और बोला—महाराजा की आज्ञा है कि आप अपने पुत्र आनन्दसेन को हमें सौंप दो, क्योंकि वह अपराधी है—राजद्रोही और देशद्रोही है। हम उसे प्राणदण्ड देंगे। बाबा ने अपने ध्यानयोग से आसन्न

संकट को समझ लिया और तदनुसार अपना उत्तर देने लगे।

बाबा ब्रह्मनन्द ने सेना के मुख्य अधिकारी को अपना उग्र रोष जताते हुए कहा आप मुझे क्या कह रहे हैं—इसका भी आपको भान है ? आप मुझसे मेरा पुत्र मांग रहे हो सो ऐसा कहते हुए क्या आपको शर्म नहीं आती ? मैं जन्मजात ब्रह्मचारी हूँ और क्या ब्रह्मचारी के भी कोई सन्तान होती है ? फिर कोई भी मेरा पुत्र कैसे हो सकता है ? ब्रह्मचारी के स्त्री, घरबार आदि कुछ भी तो नहीं होता। आपको एक संन्यासी के सामने सोच समझ कर बोलना चाहिये।

संन्यासी की डांट सुनकर सेना का वह अधिकारी स्तब्ध रह गया। बात बाबाजी की सही थी। अब आगे बाबाजी से तर्क वितर्क करने में उसे कोई सार नहीं दिखाई दिया। इस कारण उसने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वे खुद ही आश्रम का चप्पा छान मारें जहां भी वह आनन्दसेन दिखाई दे, उसे धर पकड़ें। अपने अधिकारी की आज्ञा पाकर वे सिपाही निःशंक होकर बाबाजी के आश्रम में प्रवेश कर गये। सिपाहियों ने सारे आश्रम को छान मारा लेकिन वहां तो आनन्दसेन क्या, न तो कोई प्राणी मिला, न कोई सम्पत्ति ही। निराश होकर अधिकारी ने आश्रम से उन सैनिकों को हटा लिया तथा चारों तरफ दूर-दूर तक आनन्दसेन की खोज में उनको रवाना कर दिया। किन्तु आनन्दसेन का दूर तक भी कहीं पता नहीं चला।

सेना के उस मुख्याधिकारी ने तब यह सूचना महाराजा को दी—राजन् उस आश्रम में तो हमें आनन्दसेन भी नहीं मिला, किन्तु कोई आपत्तिजनक सामग्री भी नहीं मिली। आनन्दसेन आश्रम में रहता है—यह बात आपको किसने बताई थी, ताकि उससे पूछताछ की जाय। महाराजा ने कहा कि यह बात तो महारानियों ने ही कही है। तब वह सैनिक अधिकारी बोला—महाराज, आप ही विचार करें कि आश्रम और पहलवान का भला आपस में क्या सम्बन्ध हो सकता है ? मैंने सैनिकों को चारों तरफ दूर-दूर तक खोजने के लिये भी भेजा किन्तु कहीं भी आनन्दसेन का कोई पता नहीं लगा। महाराजा ने सोचते-सोचते हुए फिर भी कहा—पता लगाओ कि आखिर वह राजभवन में घुस कैसे गया और उड़ कर फिर चला कहाँ गया ? मन में सोचते रहे कि यह कहीं किसी व्यन्तर देव-देवी

की करामात तो नहीं है। आखिर उन्होंने उस मामले को वहीं समाप्त कर देना उचित समझा और उस सेनाधिकारी को बिना कोई नया आदेश दिये ही वापिस भेज दिया। उन्होंने जाकर रानियों को आश्वासन दे दिया कि आश्रम में पहलवान नहीं मिला है और उसकी सब जगह भी खोज करा ली गई है हो सकता है कि यह उत्पात आनन्दसेन का रूप बनाकर किसी देव-देवी ने किया हो अतः घबराने की कोई बात नहीं है। पहलवान की खोज जारी है सो जब भी और जहाँ भी वह मिलेगा, उसे खत्म करवा दिया जायेगा। वह उत्तर सुनकर वे रानियां सन्तुष्ट हो गई कि अब वह बच नहीं सकेगा।

वे ग्यारह रानियां हर्ष मनाने लगीं कि अब उनके खतरे के दूर होने में कोई सन्देह नहीं रह गया है। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। वह तरुण इस संसार में नहीं रहेगा तो कभी भी उनके षड्यन्त्र का भंडाफोड़ नहीं होगा। इसके साथ ही कभी भी विश्वसुन्दरी का सम्मान नहीं होगा तो उनके प्रति चल रहा महाराजा का सम्मान और सद्व्यवहार बना रहेगा। अपने आपको सभी प्रकार से निष्कण्टक समझ कर वे रानियां अपने आपको सौभाग्यशालिनी मान रही थीं।

सत्य को बार-बार अपने कपटपूर्ण प्रपंचों से ढकते रहो, किन्तु एक दिन ऐसा अवश्य आता है जब असत्य का अन्धेरा मिट जाता है और सत्य का प्रकाश चारों ओर फैल जाता है।



14

अपने ध्यान योग से बाबा ब्रह्मानन्द ने पहले ही देख लिया था कि अभी आनन्दसेन का सार्वजनिक रूप से अपने आपको प्रकट करने का समय नहीं आया है। इसी कारण उन्होंने उसे मल्लयुद्ध प्रतियोगिता में भाग न लेने की सलाह दी थी किन्तु आनन्दसेन की तरुणाई की हठ को देखते हुए उन्होंने अनुमति अवश्य दे दी, पर उसके भविष्य के सम्बन्ध में वे पूर्ण सतर्क भी हो गये थे। उन्हें आशंका थी कि महोत्सव समाप्त होने के बाद दोनों भाई बहिनों के लिये कोई खतरा पैदा हो सकता है। उन्हें यह तथ्य भी ज्ञात हो गया था कि जन समूह को आनन्दसेन का किसी प्रकार का अन्य परिचय तो हुआ नहीं था, केवल यही पता चला था कि वह बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है। अतः कोई खतरा आया तो उन्होंने सोच लिया था कि वह उनके आश्रम के ही माध्यम से आयेगा। इस दृष्टि से किसी प्रकार का खतरा आने के पहिले ही उन्होंने दोनों भाई बहिनों की जीवन रक्षा की योजना बना ली तथा यथा समय उसे कार्यान्वित भी कर दी। यह उनके पूर्व ज्ञान तथा दूरदर्शिता के कारण ही सम्भव हो सका था।

अर्ध रात्रि के बाद पहले प्रहर में अपने पालक पिता बाबा ब्रह्मानन्द की आज्ञा पाकर आनन्दसेन और चम्पकमाला तीव्रगामी अश्व पर आरोहण करके पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान कर गये। रात्रि के शेष भाग में वे बराबर आगे बढ़ते रहे और सूर्योदय के समय तक उन्होंने महाराजा चन्द्रसेन के राज्य की सीमा को पार कर ली। तब वे अन्य राज्य की सीमा में प्रविष्ट हो गये। प्राचीन काल में एक राज्य की सीमा समाप्त होने पर सीमा सूचक पत्थर लगाये जाते थे, जिन्हें देखकर ही आनन्दसेन निश्चय कर सका कि

अब वे दूसरे राज्य की सीमा में है और अब चम्पानगरी के राज्य का कोई भी संकट उनका बाल भी बांका नहीं कर सकता है।

आनन्दसेन ने अपनी बहिन चम्पकमाला को ढाढ़स बंधाया— बहिन, तुम किसी प्रकार से कोई चिन्ता अथवा भय से अपने मन में स्थान मत देना। मैं तुम्हारे साथ में हूँ और अपने गुरु ने जो मंत्र हमें दिया है उसे हम बराबर जपते रहें क्योंकि वह मंत्र इतना प्रभावशाली है कि हर ठिकाने वह हमारी रक्षा करेगा। बाबा ने उन्हें भी साधना का अमृत पिलाना शुरू कर दिया था, अतः वे दोनों घोड़े पर से उतरे और एक स्वच्छ स्थान देखकर दोनों ने साधना स्वरूप ध्यान किया तथा वे महामंत्र को निष्ठापूर्वक जपते रहे। आत्मा को उसकी खुराक देने से आत्मबल बढ़ता है और आत्मबल ही वस्तुतः जीवन का प्रधान सम्बल होता है।

जैसे शरीर को भूख लगती है तो सब काम छोड़कर पहले उसको उसकी खुराक देनी पड़ती है और जो समझता है, वह महसूस करता है कि आत्मा की भूख उससे भी अधिक प्रबल होती है। एक साधक नियमित समय पर अथवा जब भी आत्मा को भूख लगती है, सब काम और विचार छोड़कर आत्म-भाव में तल्लीन बन जाता है। आनन्दसेन और चम्पकमाला भी ध्यानस्थ होकर तथा महामंत्र का जाप करते हुए आत्म भाव में तल्लीन हो गये।

साधना से सानन्द निवृत्त होकर वे दोनों नित्यकर्म से निवृत्त हुए तथा शरीर की भूख मिटाने के साधन की इधर-उधर खोज करने लगे। पास में उन्हें फलों के वृक्ष तथा शुद्ध जल का झरना मिल गया। आनन्दसेन ने आवश्यक फल तोड़े, दोनों भाई बहिनों ने खाये, झरने का शीतल जल पिया और दोनों तृप्त हो गये। बाबा ने उन्हें सिखाया था कि भोजन से पहले भावना भानी चाहिये तथा प्रतीक्षा करनी चाहिये कि किसी महात्मा को अपने हाथ से भिक्षा दें। तदनुसार उन्होंने उस वन प्रान्तर में भी फल खाने से पहले भावना भाई और प्रतीक्षा की किन्तु वहाँ कौन महात्मा आते ?

वहाँ कुछ समय तक विश्राम कर लेने पर दोनों भाई बहिन आगे बढ़ने के लिये तैयार हो गये। घोड़े पर चढ़कर वे आगे बढ़ने लगे। उन्होंने विचार किया कि जिस नये राज्य की सीमा में वे प्रविष्ट हो गये हैं, उसी राज्य की राजधानी की ओर उन्हें चलना चाहिये। वे आगे से आगे बढ़ते

रहे। तब उन्हें दूर से भव्य भवनों की पक्तियाँ दिखाई देने लगीं, जिससे उन्होंने अनुमान लगाया कि वे राजधानी तक शीघ्र ही पहुँचने वाले हैं। किन्तु उन्हें इस बात का आश्चर्य होने लगा कि मार्ग पर आने जाने वाला एक भी व्यक्ति उन्हें नहीं मिला। आगे बढ़े तो नगर का परकोटा दिखाई दिया। मुख्य द्वार तक पहुँचे तो उन्हें अधिक आश्चर्य हुआ कि मुख्य द्वार पर भी कोई पहरेदार नहीं था। नगर में प्रविष्ट हो गये तो बाजार और दूकानें दिखाई दे रही थीं लेकिन मनुष्य का नामोनिशान तक कहीं नहीं था। तब उन्होंने अनुमान लगाया कि यह राजधानी वीरान हो गई लगती है। लेकिन ऐसी सुन्दर राजधानी वीरान कैसे हो गई— इस रहस्य का तो पता लगाना ही चाहिये— उन्होंने सोचा। इस रहस्य को विदित किये बिना सहसा आगे नहीं बढ़ जाना चाहिये।

आनन्दसेन ने कहा—हो सकता है यही बाजार वीरान हो गया हो इसलिये नगर के अन्य हिस्सों में भी घूम कर स्थिति का ज्ञान करलें। सम्भव है दूसरे हिस्सों में मनुष्य मिल जाये। यह कहकर वे आगे बढ़ने लगे तो चम्पकमाला ने सावधानी दिखाई— भैया, यह आश्चर्यजनक है कि यह राजधानी मनुष्य विहीन कैसे बन गई ? कोई न कोई गम्भीर रहस्य अवश्य होना चाहिये। हम पूरी तरह से सावधान होकर चलें। तब दोनों विशेष रूप से सावधान हो गये तथा चौकन्ने होकर आगे बढ़ने लगे। आगे की स्थिति को देखते हुए चम्पकमाला ने फिर याद दिलाई कि अब आगे सोच समझ कर ही बढ़ना चाहिये क्योंकि उनके पास किसी प्रकार का कोई शस्त्र भी नहीं है। आनन्दसेन ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा— बहिन, तुम व्यर्थ ही भयभीत हो रही हो। मेरे पास शस्त्र नहीं है तो क्या हुआ ? मेरे पास अपूर्व आत्म-बल एवं शरीर-बल जो है। मैंने अच्छे-अच्छे पहलवानों को अभी कल ही तो पछाड़ा है। क्या तुम भूल गई हो ?

तब वे दोनों भाई बहिन छोटी-छोटी गलियों और सकड़े मार्गों पर होते हुए बहुत दूर तक निकल गये फिर भी उन्हें कहीं भी कोई पुरुष, स्त्री या बच्चा नहीं मिला। उसके बाद वे दोनों यह सोचकर राजभवन की तरफ बढ़े कि वहाँ पर तो कोई न कोई अवश्य मिलेगा। किन्तु वहाँ पर भी न उन्हें कोई रक्षक मिला, न कोई सिपाही या दास दासी। समाधान पाने की जिज्ञासा से वे राजभवन के भीतरी प्रवेश द्वार की तरफ आगे बढ़ने लगे। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्हें उस प्रवेश द्वार पर एक

विकराल स्वरूप वाला व्यक्ति बैठा हुआ दिखाई पड़ा। उसे देखकर चम्पकमाला ने आनन्दसेन को रोका और कहा—भैया, संभल कर आगे बढ़ो। ऐसा लगता है कि यह नगर किन्हीं विकट परिस्थितियों में से होकर गुजरा है इसीलिये कहीं भी कोई व्यक्ति नहीं बचा है। इस सर्वविनाश की जड़ कहीं यह विकराल व्यक्ति ही न हो। आनन्दसेन बोला—अरे कोई खास बात नहीं है। इसकी विकरालता असली नहीं है, नकली मालूम होती है। फिर भी हम विशेष रूप से सावधान हो जाते हैं।

आनन्दसेन यह कहकर घोड़े से नीचे उतर पड़ा और उसने सावधानी से चम्पकमाला को भी नीचे उतार ली। फिर घोड़े को वहीं पर बांध कर वे दोनों पैदल—पैदल ही आगे बढ़ें। बढ़ने से पहले चम्पकमाला ने अपने भाई को रोका और कहा कि थोड़ी देर के लिये महामन्त्र का जाप करलो ताकि हमें हमारे इस कार्य में सफलता प्राप्त हो। दोनों भाई बहिनों ने तब पहले णवकार मन्त्र का पाठ किया।

मानसिक एवं शारीरिक शक्ति से सम्पन्न आनन्दसेन सुन्दर तरुण था। पूर्व जन्म के पुण्य कार्यों का उदय भी साथ में हुआ सो वह जन्म से माता के स्तनपान और लाड़ प्यार से वन्धित रहा। यह तो नहीं हुआ सो नहीं सही, लेकिन उन दोनों का लालन पालन भी राजकीय सुख सुविधा के अनुसार नहीं हो सका। जितनी सुविधा से वे बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम में रह रहे थे, यह सुविधा भी आकस्मिक रीति से छूट गई। अब भी पाप कर्मों का उदय ही प्रमुख चल रहा था कि वे इस नये संकट से घिर गये थे। किन्तु उनकी पुण्यशालिता यह थी कि मृत्यु मुख में जाकर भी वे बच गये और उन्हें धर्म का सुखद बोध मिला। वह पुण्यशालिता ही उनकी संरक्षक बनी हुई थी जो जब भी वे कष्टों से घिर जाते, उनकी रक्षा करती थी।

चलते हुये चम्पकमाला ने अपने भाई को रोका कि वह आगे नहीं बढ़े क्योंकि विकरालता लिये हुए वह व्यक्ति सामान्य मनुष्य नहीं बल्कि राक्षस जैसा दिखाई दे रहा है जो अतिक्रूर हो सकता है। आनन्दसेन विशेष रूप से निर्भय था। उसने निश्चिन्त होकर कहा—बहिन, तुम चिन्ता न करो। बाबा ने मेरे मन में से भय को पूरी तरह से निकाल दिया है तथा हाथी पहलवान ने मुझे अपूर्व शरीर—शक्ति से सम्पन्न बना दिया है। इससे ऊपर

महामन्त्र सर्वत्र सफल होता है। फिर आनन्दसेन ने चम्पकमाला को वहीं रोक दिया और वह अकेला ही आगे बढ़ने लगा।

आनन्दसेन तो निर्भीक तरुण था। वह चलकर उस विकराल आकृति के सामने पहुँचा और बोला—भाई, तुम कौन हो और यहां किस प्रयोजन से बैठे हुए हो ? यह पूछकर वह सोच रहा था कि उसे कुछ न कुछ उत्तर मिलेगा। किन्तु उस राक्षस ने आनन्दसेन पर आकस्मिक रीति से प्रहार कर दिया। प्रहार प्रबल था अतः वह यकायक मूर्छित हो गया। चम्पकमाला ने सोचा कि आवेश में आकर भैया भान भूल गया है तो मैं लगातार महामन्त्र का जाप करती रहूँ। इस महामन्त्र के प्रभाव से हम इस संकट से अवश्य ही शीघ्र निकल जायेंगे। बाबा का नाम स्मरण भी करने लगीं। जाप की ही मुद्रा में चम्पकमाला ने आगे बढ़कर अपने भाई के मस्तक पर हाथ फिराया और आश्चर्य के साथ देखा कि आनन्दसेन सजग होकर खड़ा हो गया है। महामन्त्र के जाप से और बाबा के नाम स्मरण का प्रभाव प्रमाणित हो गया था। दोनों प्रसन्न हुए और तब दोनों साथ—साथ महामन्त्र का जाप और बाबा का नाम स्मरण जोर—जोर से करने लगे।

आनन्दसेन पूर्ण सचेतन हो गया। महामन्त्र के जाप और बाबा के नाम स्मरण से उसमें नया ही जोश जाग गया। उसे बाबा का यह कथन भी याद आया कि क्रूर व्यक्ति के वचन या व्यवहार पर किसी विवेकशील पुरुष को क्रोध नहीं करना चाहिये। कारण, क्रोध के आवेश में उसका विवेक निष्क्रिय हो जाता है। हमेशा क्रोधी पर क्षमाशील की ही विजय होती है। उसने उस राक्षस पर कोई क्रोध नहीं किया बल्कि भोलापन जताते हुए कहा—अरे मामा तुमने यह क्या कर दिया ? 'मामा' शब्द सुनकर वह कुछ शान्त हुआ। धीरे—धीरे उस सम्बोधन ने ऐसा जादू किया कि वह प्रसन्न हो उठा। जब वह प्रसन्न होकर प्रेम जताने लगा तो आनन्दसेन ने कहा—हम तो आपको मामा जी समझ रहे हैं और आप ने भाणेज के साथ ऐसा बर्ताव किया। आनन्दसेन की उस मिष्ट वाणी ने न जाने क्या जादू किया कि वह राक्षस पानी—पानी हो गया और अपने किये पर पछताने लगा। जैसे उसकी राक्षसी वृत्ति छूट गई और वह मानवता के धरातल पर खड़ा हो गया। वह कहने लगा— यह नगर मेरे कारण ही खाली हो गया है। मैं जब राक्षसी उपद्रव करता तो सभी लोग गुस्सा करते थे, मुझे गालियाँ निकालते थे और ऐसी ही ओछी हरकतें करते थे। तब मेरा

क्रोध बढ़ जाता था और मैं भान भुलकर अधिक हिंसक उपद्रव करने लगता था। आखिर वे सब परेशान हो गये और यहाँ से भाग छूटे। तब से इस नगर में मैं ही अकेला हूँ। अगर यहाँ के निवासी भी तुम्हारी तरह मेरे पर गुस्सा न करते और जरा सा भी स्नेह जताते तो मैं उनका गुलाम हो जाता। तुमने प्रेम से मुझे मामा क्या कहा कि मेरा दिल भर आया। समझलो कि मैं तुम्हारा मामा ही हूँ और तुम्हारे लिये मैं कुछ भी कर सकता हूँ। मैं तो सिर्फ प्रेम का भूखा हूँ आज तुमने मुझे आनन्द से भर दिया है।

ऐसे विचित्र परिवर्तन से आनन्दसेन और चम्पकमाला आनन्द विभोर हो गये। उनकी आन्तरिक निष्ठा सुदृढ़ हो गई कि णवकार महामंत्र एवं बाबा के नाम का अमित प्रभाव है। आनन्दसेन ने हर्षित होते हुए राक्षस से कहा—आपने मुझे जब भाणेज मान ही लिया है तो मैं आशा करूँ कि आप हम दोनों के साथ पूर्ण स्नेहयुक्त व्यवहार ही करेंगे। राक्षस प्रसन्नता से लोटपोट होते और आनन्दसेन को गले लगाते हुए बोला—मेरे व्यवहार की क्या बात करते हो ? देखो, यह पूरा नगर, राज्य और राजभवन मैंने तुम्हें इसी समय बक्शीस कर दिया है और तुम इसके स्वामी हो। आनन्दसेन बोला—मामाजी, इस वीरान नगरी में मैं क्या करूँगा ? हंसी का ठहाका लगाते हुए राक्षस मामा ने कहा—तुम किसी बात की फिक्र मत करो। मैं तुमको इस नगरी का राजा बना देता हूँ और सारे नगर को फिर से बसा दूँगा।

वाणी वाणी में कितना अन्तर होता है ? एक वाणी ऐसी होती है जो दिलों के टुकड़े—टुकड़े कर देती है और एक वाणी ऐसी होती है जो टूटे हुए दिलों को फिर से जोड़ देती है। नगरवासियों की कटु वाणी से राक्षस कुपित हो गया और उन्हें वहाँ से भाग जाने के लिये मजबूर किया। दूसरों और आनन्दसेन की मीठी वाणी से राक्षस का हृदय भी पिघल गया और उस पर अपना सम्पूर्ण स्नेह न्यौछावर करने के लिये वह तत्पर हो गया। एक प्रेमभरे शब्द ने सारे उल्टे वातावरण को सुल्टा बना दिया। आनन्दसेन भी अगर कटु वाणी का प्रयोग करता तो सोचिये कि उस वीरान नगर में उन दोनों की वह राक्षस कैसी दुर्गति बना देता ? ईंट का जवाब पत्थर से न देकर शीतलता के साथ दिया जाय तो दोनों तरफ सद्भावना का प्रसार हो जाता है।

बाद में तो उस राक्षस मामा ने जैसा कहा, वैसा ही करके भी दिखला दिया। वह कोई राजनेता नहीं था जो आश्वासन तो लम्बा-चौड़ा देता और करने के नाम पर महत्त्वहीन सा करता। वह राक्षस भले ही था लेकिन दिल का बहुत सीधा सादा था। जो वायदा किया, उसे पूरा करने में उसने कोई कसर उठा नहीं रखी। वह राक्षस होते हुए भी देवपुरुष जैसा बन गया।

उस नगर के निवासी वहाँ से भागकर जहाँ-जहाँ जाकर बस गये थे, वहाँ-वहाँ वह राक्षस गया और उन्हें समझाने लगा कि वे फिर से अपने छोड़े हुए नगर में आकर बस जायें, क्योंकि वहाँ एक ऐसा दिव्य पुरुष आया है जिसने अपने सद्ब्यवहार से मेरा पूरा जीवन ही बदल दिया है। अब मैं न तो उपद्रव करूंगा और न ही ऐसी कोई हलचल जिससे आप लोगों को किसी तरह की परेशानी हो। इसके विपरीत मैंने तो सोच लिया है कि जितनी मेरे से आप लोगों की सेवा बन पड़ेगी, मैं करने के लिये तत्पर रहूंगा। उसने सबको एक खुशी की बात और सुनाई कि मेरे जीवन का रूपान्तरण करने वाले उस दिव्य पुरुष ने आपके नगर और राज्य की व्यवस्था सम्हाल लेने का मुझे वचन दे दिया है जिससे आप लोगों का जीवन सुखी और समृद्ध बन जायेगा।

यह उन सभी नगर निवासियों के लिये बड़ा ही सुखद समाचार था कि स्वयं उत्पात मचाने वाला राक्षस ही बदल गया है और उन से वापिस चलने का अनुरोध कर रहा है। उन्हें अपनी जन्मभूमि से बड़ा प्यार था, अतः वे फिर से अपनी जन्मभूमि में जाकर बस सकेंगे—इससे उनके हृदयों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उन्हें इस बात को जानने की भी उत्कृष्ट अभिलाषा हुई कि वह दिव्य पुरुष कैसा है जिसने ऐसे क्रूर राक्षस का हृदय-परिवर्तन कर दिया ? फिर वह दिव्य पुरुष ही उनका राजा बनेगा तो हकीकत में उसकी राज्य व्यवस्था भी सुचारू रहेगी। उसके बाद सभी नगर निवासी उस वीरान में पहुँचकर अपने-अपने घर-दुकानों में बस गये। अब उनके मन मानस में नया उत्साह जागा था, अतः एक ओर तो उन्होंने नगर की नई साज-सज्जा की और दूसरी ओर सबने अपने काम धन्धे मेहनत करके बढ़ा लिये। इस कारण उस नगर की नई रौनक देखते ही बनती थी। उस नगर के शासक के रूप में आनन्दसेन के सिंहासनारोहण का उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया गया।

आनन्दसेन विचार करने लगा—इस संसार की और कर्मों की कैसी विचित्र दशा होती है ? मैं जन्मा तब तो मुझे जीने के भी लाले पड़े हुए थे। माँ के वक्षःस्थल के दूध की एक बूंद तक पीने को नहीं मिली। पूर्व जन्म में जो धर्म कर्म किया था, सत् संगत साधी थी और जो पुण्यवानी कमाई थी उसके फलस्वरूप जीवन की रक्षा हो गई। बाबा ने संरक्षण देकर जीवन का निर्माण किया। और आज यह समय आया है कि मैं एक नगर व राज्य का महाराजा भी बन गया हूँ जिसके नाते समग्र जनता का माता पिता हो गया हूँ। अल्पायु में भी मेरे ऊपर जो उत्तरदायित्व आ गये हैं, उन्हें मुझे कर्तव्य—बोध के साथ निभाने होंगे। इस कारण मेरा फर्ज नहीं है कि मैं मोजे मजे करूँ या गुलछरें उड़ाऊँ। मुझे तो अपने जीवन को साधना के बल पर सन्तुलित बनाना है तथा अहिंसा धर्म की पद्धति पर सारे नागरिक जीवन को ढालना है। इसके लिये मुझे कठिन परिश्रम करना होगा।

इस चिन्तन के साथ उसने राज्य की सुव्यवस्था की रूपरेखा बनाई और तदनुसार सारे प्रशासन का ढांचा जमाया। अहिंसा को प्रमुखता देने की दृष्टि में राजाज्ञा के द्वारा सारे राज्य में शिकार पर उसने प्रतिबन्ध लगा दिया। किसी शिकारी को राज्य में रहने की भी मनाही करा दी। लोगों से हिंसक कार्य प्रेमपूर्वक छुड़ाये गये तो आपसी भाईचारा बढ़ाने के लिये आपसी विवादों के भी सन्तोषजनक निर्णय किये गये। न्याय का कार्य आनन्दसेन ने अपने ही हाथ में रखा ताकि पारस्परिक वैर—वैमनस्य नागरिकों के बीच ना रहे। इन सारे प्रबन्धों का श्रेष्ठ परिणाम निकला। यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति सार्थक होने लगी। नागरिकों में भी वैसी ही सद्भावना, सहयोग तथा सौजन्य की झलक दिखाई देने लगी। आनन्दसेन एक अतीव लोकप्रिय शासक हो गया।

उत्तम भावना भवनाशिनी होती है, क्योंकि वह पाप का नाश करती है। अच्छी भावना के साथ सारा जीवन संवरता और सजता है। आनन्दसेन का आदर्श तो मनुष्यों के प्रति सद्भावना से ऊपर उठकर पशुओं का हितकारी भी हो गया था। इसी कारण तो उसने शिकार पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु वह केवल प्रतिबन्ध की आज्ञा प्रसारित करके ही शान्त नहीं बैठ गया बल्कि उसने राज्य की सीमाओं पर सिपाहियों की ऐसी मजबूत व्यवस्था भी कर दी ताकि उसके राज्य का कोई भी निवासी शिकार नहीं कर सके और बाहर का कोई शिकारी भी

उसकी राज्य सीमा में प्रविष्ट होकर शिकार न कर सके। यह पशुओं के प्रति भी उसकी सहृदयता का प्रमाण था। उसकी अच्छी भावना की सीमा न सिर्फ मनुष्य जाति बल्कि समस्त प्राणियों तक फैल गई थी। उसने सिपाहियों को यह आदेश भी दे रखा था कि अगर कोई शिकारी अपनी राज्य सीमा में घुस आवे तो उसको पकड़कर सीधे मेरे सामने प्रस्तुत किया जाये। आनन्दसेन की भावना यह थी कि बजाय दण्ड देने के उस शिकारी का अहिंसा-पालन की दृष्टि से हृदय परिवर्तित हो जाय तो वैसा प्रयास उसे स्वयं को करना चाहिये। इस प्रकार की उत्तम भावना उस राज्य में राजा से लेकर प्रजा तक प्रसारित हो रही थी।

महाराज चन्द्रसेन भी चम्पानगरी का राज्य चला रहे थे लेकिन विश्वसुन्दरी के उस प्रसव के बाद खिन्नता उनके मन में मिटी ही नहीं। वे सोचते रहते थे कि उन्होंने अपन मन में प्रकाश के कैसे-कैसे दीपक जलाये थे और कितनी उत्कृष्ट आशा रखी थी कि विश्वसुन्दरी की कौंख से अद्वितीय गुण सम्पन्न राजकुमार जन्म लेगा जो उसके राज्य का उत्तराधिकारी बन कर जनता की निष्ठापूर्वक सेवा करेगा और उसका यश बढ़ायेगा ? क्या सोचा था और हो क्या गया ? क्या विश्वसुन्दरी जैसी भव्य महिला की कौंख से कुतिया के पिल्लों को ही जन्म लेना था ? यह मेरी कैसी कर्मदशा प्रकट हुई ? मन में रह-रह कर यही विचार उठता कि उन्होंने पूर्व जन्म में कुछ क्रूर कर्म किये होंगे जिनके परिणाम स्वरूप यह सब घटित हो रहा है। इसलिये अब प्राणीरक्षा और जीवदया के कुछ ऐसे कार्य करें ताकि आगामी जन्म में इन कार्यों के पुण्य काम आवें। इसलिये उन्होंने अपने राज्य में क्रूर हिंसक कार्यों को रोकने तथा शिकार न करने के आदेश प्रसारित करवा दिये। महाराजा स्वयं शिकारी वेश में राज्य सीमाओं पर अपने इक्के-दुक्के साथियों के साथ घूमते ताकि अवैध शिकार करने वालों को खुद पकड़ सकें। इतनी कठोरता के साथ वे शिकार बन्दी का पालन करवाने लगे।

एक बार उन्हें सन्देश मिला कि सीमा पर कोई शिकारी चोरी छिपे शिकार कर रहे हैं तथा एक दस्यु दल राज्य की गायों का टोला लेकर भाग गया है। इस मामले में महाराजा जागरूक थे अतः हमेशा की तरह एक-दो साथियों को लेकर उनका पीछे करने के लिये अश्वारोही लेकर सीमा की तरफ चले गये। वहां पीछा करते-करते वे अपने साथियों से

अलग हो गये और अकेले ही बहुत दूर निकल गये। वे अपने राज्य की सीमा से बाहर आनन्दसेन के राज्य की सीमा से बाहर आनन्दसेन के राज्य की सीमा में पहुँच गये थे।

शिकारी की पोशाक में महाराजा चन्द्रसेन एकाकी होकर आनन्दनगर की सीमा में पहुँच गये। शिकारी की पोशाक होने के कारण आनन्दनगर के सिपाहियों ने तुरन्त उन्हें धर पकड़ा और जैसी कि उन्हें आज्ञा दी हुई थी, वे महाराजा चन्द्रसेन को पकड़ कर अपने महाराजा आनन्दसेन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये ले चले।

किसी भी व्यक्ति के वर्तमान जीवन में जब घटना चक्र विविध प्रकार के मोड़ लेता है और सम-विषम परिस्थितियाँ झेलनी पड़ती हैं, तब उन्हीं दृश्यों में पूर्वाजित कर्मों की झलक दिखाई देती हैं। महाराजा चन्द्रसेन के जीवन का घटनाक्रम भी ऐसा ही विचित्रता के साथ चल रहा था। पुत्र नहीं जन्मा तो एक के बाद एक विवाह किये, तरह-तरह की कामनाएँ कीं और उन्होंने पटरानी से सामायिक साधना की प्रेरणा ली। जन भावना से पसीज कर देवता का आह्वान किया—जैसा उसने बताया, यथाविधि वे सब कार्य उन्होंने पूरे किये। मणि भी मिली तो विश्वसुन्दरी से विवाह भी हो गया और हकीकत में उनकी चाहना—कल्पना से भी अधिक दिव्य सन्तानें उन्हें मिलीं, किन्तु वे अपने आपको निःसन्तान ही मानकर खिन्न होते रहे। हकीकत पर भी पर्दा डाल देता है यह कर्मों का पुंज और जब समय आता है, यही पर्दा उठा भी देता है।



15

कर्मों की ही विडम्बना देखिये कि पिता-पुत्र आमने-सामने खड़े थे, किन्तु कोई भी अपने सम्बन्ध को नहीं जान रहा था। पुत्र शासक और न्यायकर्ता के रूप में सिंहासन पर बैठा हुआ था तो पिता शासक होते हुए भी उस समय पुत्र के दरबार में एक अपराधी की हैसियत से खड़े हुए थे। तब भी चन्द्रसेन के दिल में यह दुःख पल रहा था कि सब कुछ करने के उपरान्त भी वे अभागे ही रहे, जो पुत्र और अपने राज्य का अपने जैसा उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं कर सके। आनन्दसेन के दिल के भी किसी कोने में यह व्यथा समाई हुई थी कि वह भले ही महाराजा हैं किन्तु अपने माता-पिता के प्यार से वह वंचित रहा है। दोनों के दिलों को अपना-अपना दुःख साल रहा था जब कि दोनों के दिलों के दुःखों के सुखद समाधान रूप दोनों आमने सामने थे। वास्तविकता सामने थी किन्तु दोनों वास्तविकता से अनभिज्ञ थे। इसे ही कहते हैं कर्मों की विडम्बना।

आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन ने प्रेम एवं सम्मानभरी दृष्टि से अपने सामने खड़े अपराधी को देखा तो उसने अनुभव किया कि इतना सदाशयी दिखाई देने वाला व्यक्ति न तो शिकारी हो सकता है और न ही अपराधी। इसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। सामने दिखाई दे रहे प्रभावशाली व्यक्ति को वह अपराधी कैसे मान लेता ? यह भी वह नहीं सोच सका कि उन्हें वह कोई उपदेशात्मक बात कहे, क्योंकि उसे वह गुरु गम्भीर एवं साधक व्यक्तित्व दिखाई दे रहा था। उसके हृदय में तो उन्हें देखकर एक नये ही चमत्कार ने जन्म लिया। अनायास ही वह सामने खड़े व्यक्ति के प्रति विनयावनत हो उठा। उसे ऐसी आनन्दानुभूति होने लगी कि जैसे वह वहाँ से उठकर उनके चरणों में गिर पड़े उसके मन में उग्र

अभिलाषा जगी कि वे उसे अपनी छाती से लगा लें और सम्पूर्ण हृदय से उसे प्यार करें। उसका अन्तःकरण इतना आल्हादित होने लगा कि वह सिंहासन पर बैठा-बैठा भी बुरी तरह से अस्थिर हो उठा। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है और वह इस समय में क्या करे ?

हृदय से हृदय का सम्बन्ध होता है तो हृदय से हृदय मिल जाता है और हृदयधारी स्वयं को कुछ भी समझ में नहीं आता। पुत्र के हृदय में जिस प्रकार आनन्द हिलोरें लेने लगा, पिता के हृदय में उन हिलोरों का वेग और भी ज्यादा तीव्र था। चन्द्रसेन मुग्ध भाव से सिंहासन पर बैठे हुए व्यक्ति को देख रहे थे और सम्पूर्ण मन से भाव विभोर हो रहे थे। उसे देखते-देखते उनकी दृष्टि इतनी केन्द्रीभूत हो गई कि उन्हें आनन्दसेन की भव्य आकृति के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। उनका दिल षट्पादकने लगा कि वे सब कुछ भूलकर उसे अपनी छाती से चिपका लें, गले लगा लें और अपने प्यार भरे आंसुओं से उसे नहला दें। प्रेम नदी की बाढ़ की तरह उमड़ रहा था, किन्तु वे समझ नहीं पा रहे थे कि इस तरुण को देखते ही उनके मन में ऐसा क्यों हो रहा है ?

पिता-पुत्र के हृदय परस्पर मिल लिये किन्तु उनके शरीर स्तब्ध बने अपने-अपने स्थान पर ही थे। आखिर आनन्दसेन शासक था, शान्ति भंग उसने ही की और कहा-आपके भव्य व्यक्तित्व को देखकर मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि आप अपराधी हो सकते हैं। शिकारी भी आप नहीं हो सकते क्योंकि आपकी आकृति पर असीम दया झलक रही है। मेरी उलझन यही है कि आप शिकारी के वेश में कैसे हैं ? और उसने मन ही मन सोचा कि सबसे बड़ी उलझन तो यह है कि इनके प्रति मेरा समग्र प्रेम क्यों आकर्षित हो रहा है ? उसे ध्यान आया कि यह तो वही व्यक्तित्व दिखाई दे रहा है जिनके हाथों वह मल्लयुद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद सम्मान पा चुका है। अचानक उसकी चेतना लौटी कि तब तो ये चम्पानगरी के महाराजा ही हैं। वह अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और उसने अनुरोध किया कि वे उसके पास लगे समकक्ष आसन पर बिराजें।

चन्द्रसेन बोले-आप शासक हैं और मैं एक अपराधी के रूप में आपके सामने हूँ, इसलिये एक बार मेरा स्पष्टीकरण तो सुन लीजिये। आपने ठीक ही अनुमान लगाया है कि मैं शिकारी नहीं हूँ। अपराध है तो

यही कि मैं अपने साथियों से अलग होकर भटक गया। और अनजाने में आपके राज्य की सीमा में चला आया। इसका दण्ड दिया जा सकता है।

चन्द्रसेन तो समता के साधक थे अतः अपने अपराध को स्वीकार कर लेने में उन्हें कोई हिचक नहीं हुई। उन्होंने कहा—मैं शिकारी के वेश में भी एक कारण से हूँ। मेरे राज्य में मैंने शिकार पर प्रतिबन्ध लगा रखा है इसलिये अवैध रूप से शिकार करने वालों को पकड़ने के लिये मैं स्वयं शिकारी के वेश में घूमता हूँ ताकि उनका अपराध मेरे सामने स्पष्ट हो जाये और मैं उसके हृदय को वहीं परिवर्तित करके सच्चा अहिंसक बना सकूँ। वे बोल ही रहे थे तब तक तो आनन्दसेन ने वहाँ पहुँचकर उनका स्वागत किया और निवेदन किया—आप तो चम्पानगरी के महाराजा दिखाई देते हैं। आप प्रौढ़ हैं और मेरे पूज्य हैं। आप पधारकर सिंहासन पर बिराजिये। आनन्दसेन उन्हें सम्मानपूर्वक तब वहाँ तक ले गया। स्वयं मैंने भी अपने राज्य में शिकार पर प्रतिबंध लगा रखा है तथा शिकारी वेश में मिलने वालों को पकड़ कर मेरे सामने प्रस्तुत करने के आदेश के पीछे आप जैसी ही मेरी भावना है।

आनन्दसेन के ऐसे शालीन व्यवहार से चन्द्रसेन हर्ष विभोर हो गये कि इतनी सी आयु में भी यह तरुण कितना विवेकपूर्ण और अहिंसक शासक है। वे सोचने लगे कि यह तो हर बात में मेरे ही समान लग रहा है—आकृति से भी, व्यवहार से भी और ज्ञान—विवेक से भी। इसके पास बैठकर जैसे मेरे तन—मन में शीतलता और शान्ति व्याप्त हो गई है। इस तरुण के जीवन में सद्गुणों का विकास जिस परिपक्व रूप में दिखाई दे रहा है, उससे तो यही सद्गुणी जन जीवन अपने माता—पिता के खून से भी मिला है। तभी तो जीवन का इतना सुन्दर स्वरूप दिखाई दे रहा है। सोच—सोच कर उनका हृदय अपूर्व रूप से प्रमुदित होने लगा। प्रमोद भाव से ही वे बोले—ठीक है, मैं चम्पानगरी का शासक हूँ तो आप भी आनन्द नगर के शासक हैं और इतनी अल्पायु में इतने सद्गुणी और सुयोग्य शासक है—यह निश्चय ही आपके पूर्वाजित कर्मों के सुफल का उदय है। एक मैं हूँ, शासक भी हूँ किन्तु आप नहीं जानते कि मैं कितनी बड़ी मानसिक पीड़ा को झेल कर चल रहा हूँ, किन्तु उसे भी मैं अपने पूर्वाजित कर्मों का ही फल मानता हूँ। अन्तर यही है कि आपके शुभ फल का उदय है और मेरे अशुभ फल का।

चन्द्रसेन कह रहे थे अपने मन की व्यथा की बात, किन्तु आनन्दसेन समझ नहीं पाया कि चम्पानगरी के इस प्रभावशाली महाराजा को भला ऐसी क्या मानसिक पीड़ा हो सकती है ? सभी तरह से सुखी राज्य है और वे एक सुखी महाराजा ही होने चाहिये। लेकिन सुख दुःख की तरंगें इस तरह चलती हैं जो महसूस की जा सकती हैं लेकिन उन्हें जान पाना कई बार कठिन सा दिखाई देता है। आनन्दसेन का हृदय सुख की तरंग से तरंगित हो रहा था लेकिन कारण ज्ञात नहीं था। हर्षावेग से उसने अपनी बहिन चम्पामाला को वहाँ बुलाया और बताया—आप चम्पानगरी के महाराजा हैं। भाई के बाद बहिन को देखकर तो चन्द्रसेन का हृदय आनन्दाभिभूत हो उठा। उन्हें लगने लगा—ऐसे सुन्दर और तेजस्वी तरुण और तरुणी भला उनके पुत्र और पुत्री क्यों न हुए ?

आनन्दसेन और चम्पकमाला ने महाराजा चन्द्रसेन का ऐसा भावभरा स्वागत किया कि स्नेहपूर्ण नया ही वातावरण बन गया। उस वातावरण में चन्द्रसेन को पता ही नहीं चला कि सबके शामिल रहते हुए कितने दिन बीत गये। जब भी चन्द्रसेन जाने का निश्चय करते, उनका मन उन्हें रोक देता और वे रुक जाते। इस तरह वहाँ रहते—रहते छः माह व्यतीत हो गये।

एक दिन चन्द्रसेन ने आनन्दसेन से पूछा—यह कौनसा महीना चल रहा है। आनन्दसेन ने महीना बताया तो उन्होंने हंसते हुए कहा—अरे, मुझे तो यहाँ रहते—रहते छः माह व्यतीत हो गये हैं और पता ही नहीं चला। अब तो मुझे प्रस्थान कर देना चाहिये। यहाँ अकेला ही मैं इतना रह गया हूँ—पता नहीं राज्य के क्या हालचाल चल रहे होंगे।

इधर महाराजा चन्द्रसेन आनन्दनगर में इतने लम्बे अर्से तक रुक गये और उधर चम्पानगरी में तहलका मचा हुआ था कि बीहड़ वन में महाराजा अकेले पड़ गये थे और अब तक भी नहीं लौटे सो न जाने उनके साथ क्या घटित हुआ होगा ? राज परिवार, दीवान, अधिकारी और नागरिक—सभी चिन्तातुर बने हुए थे। वहाँ किस को यह समाचार मिल सकता था कि महाराजा आनन्दपुर में रुके हुए हैं। चम्पानगरी की ऐसी ही परिस्थिति का विचार करते हुए अन्ततोगत्वा महाराजा ने अपने दिल को कड़ा करके आनन्दनगर से प्रस्थान करने का निश्चय किया।

उनके इस निश्चय को सुनकर दोनों भाई बहिन भाव-विह्वल हो उठे और मनुहार करने लगे कि वे कुछ दिन तो और बिराजें। उनका मन मान ही नहीं रहा था कि महाराजा उनसे कभी भी विलग हों। उनके अन्तःकरण की सच्ची अभिलाषा तो यह बन गई थी कि महाराजा सदा-सदा के लिये दोनों भाई-बहिन के साथ ही रहें। सम्बन्ध का बाह्यरूप भले ही प्रकट न हुआ हो किन्तु आन्तरिक स्वरूप तो दोनों के मन-मानस पर सम्पूर्णतया छा ही गया था। उन्होंने बहुत-बहुत अनुरोध किया किन्तु यह समझने को विवश हुए कि राज्य व्यवस्था की दृष्टि से महाराजा को जाना ही पड़ेगा। तब उन्होंने दुःखित मन से चन्द्रसेन को विदाई दी।

महाराजा चन्द्रसेन को आनन्दनगर से न सिर्फ महाराजा आनन्दसेन और उसकी बहिन चम्पामाला ने, बल्कि समग्र जनता ने भाव एवं सम्मानपूर्ण विदाई दी। विवशतावश चन्द्रसेन आगे बढ़ रहे थे लेकिन बड़े शिथिल चरणों से—जैसे कि उनका दिल तो उनसे छूट कर आनन्दनगर में ही रह गया हो। वे विचारने लगे कि मैं मुर्दा होकर चल रहा हूँ। मेरी आत्मा और मेरे प्राण तो आनन्दसेन और चम्पामाला से ही जुड़े हुए रह गये हैं। वियोग की पीड़ा को झेलते-झेलते वे चम्पानगरी पहुँचे।

महाराजा चन्द्रसेन अपनी राजधानी में पहुँचें और किन्हीं नागरिकों ने उनके दर्शन किये तो उनके आगमन का शुभ समाचार सारी नगरी में तुरन्त ही फैल गया। फिर तो सारा नगर उनका स्वागत करने के लिये उमड़ पड़ा। सबके हर्ष का पार नहीं था कि उनके प्यारे शासक सकुशल लौट आये हैं। सभी महाराजा के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये और पूछने लगे कि इतने दिनों तक कहाँ पर बिराजना हो गया ? क्या किन्हीं संकटों ने तो महाराजा को नहीं घेर लिया था ? तब महाराजा ने जन समूह को सम्बोधित करते हुए बताया—मैं शिकारियों और दस्युओं का पीछा करते हुए अकेला पड़ गया तथा निकट के राज्य आनन्दनगर की राजधानी में पहुँच गया। वहाँ के महाराजा इतने सौम्य, सुयोग्य और शिष्टाचारी हैं कि क्या कहूँ ? उनका नाम आनन्दसेन और उसकी बहिन का नाम चम्पकमाला है। दोनों ने मुझे इतना स्नेह और सम्मान दिया कि दीर्घकाल से खिन्न बना मेरा मन अतीव सन्तुष्ट और तृप्त हो गया। उन्होंने मेरी इतनी सेवा की कि मानो वे मेरे पुत्र और पुत्री ही हों। प्रेम के उस स्निग्ध वातावरण में इतने समय के बीत जाने का मुझे कुछ ख्याल ही नहीं हुआ। मेरा मन तो नहीं

चाहता था किन्तु आप लोगों की चिन्ता करते हुए मुझे उनसे अब तो विदाई लेनी ही पड़ी।.....मेरे जीवन में जिस तरह से घटनाएँ घटित होती रही हैं, उनको देखकर और उनके माध्यम से अपने कर्मों के चक्र को समझ कर इस संसार से मेरी आसक्ति हटती जा रही है। अब मैं अपने विचार और आचार में आध्यात्मिकता का अधिक से अधिक विकास करना चाहता हूँ। आनन्दसेन और चम्पकमाला की दिव्यता और स्नेहशालीनता मेरे अन्तःकरण में बस गई है।

महाराजा के वक्तव्य को सुनकर नागरिकों के मन में हलचल मच गई कि कहीं ऐसा न हो कि महाराजा विरक्त होकर उनको संरक्षण देना छोड़ दें। वे प्रसन्न थे कि उनके शासक कितने महान् हैं। ये बातें रनिवास में भी पहुँची। पटरानी की महाराजा में अटूट आस्था थी, वह परम प्रसन्न हुई। लेकिन बाकी की ग्यारह रानियाँ तो ममत्व भाव में डूबी हुई थीं, अपने शरीर स्वार्थों के कारण उन्हें महाराजा के विरक्ति-भाव से बड़ी निराशा महसूस हुई। असल निराशा तो इस तथ्य के प्रकटीकरण से हुई कि वे आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन के यहां ठहरे हुए थे। वे सोचने लगीं कि यह आनन्दसेन क्या वही आनन्दसेन तो नहीं है जिसका जीवन समाप्त कर देने के उनके पहले षड्यन्त्र के असफल हो जाने के बाद रचे गये दूसरे षड्यन्त्र को वे सफल मान रही थीं—वही आनन्दसेन जो नई महारानी विश्वसुन्दरी का पुत्र था और उनकी राह का सबसे बड़ा काँटा था ? उन रानियों का प्रतिशोध भाव फिर से भड़क उठा। उन्होंने निश्चय किया कि इस तथ्य का पूरी तरह से पता लगाया जाना चाहिये। मन्त्रणा करने के लिये उन्होंने सलखू नाइन को भी बुलवा लिया।

सभी बैठकर आपस में सोचने लगीं कि महाराजा ने अपने वक्तव्य में जिस आनन्दसेन का उल्लेख किया है, वह क्या वही आनन्दसेन पहलवान और विश्वसुन्दरी का ही पुत्र तो नहीं है ? एक रानी ने कहा—हमने जब आनन्दसेन पहलवान द्वारा रनिवास पर आक्रमण का नाटक रचकर महाराजा से शिकायत की थी तब महाराजा ने बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम पर सैनिकों से छापा डलवाया था, लेकिन वहाँ आनन्दसेन के न मिलने पर महाराजा ने आश्वासन दिया था कि खोज करवा कर इस अपराध के लिये उसको मृत्युदण्ड ने दिया जायेगा। हम सब तो यही सोच रही थीं कि उसका काम तमाम हो गया होगा। लेकिन लगता है कि उस समय

आनन्दसेन बच गया और वह किसी तरह आनन्दनगर का महाराजा बन गया। यदि ऐसा है तो खतरा फिर से हमारे ऊपर मण्डराने लगा है—ऐसा हमको समझना चाहिये। सलखू ने भी हाँ में हाँ भरी और कहा—मुझे भी ऐसा लगता है। यदि उस समय आनन्दसेन को मृत्युदण्ड दे दिया गया होता तो उसका कहीं न कहीं अन्तिम संस्कार तो किया जाता। हमने तो ऐसी कोई खबर सुनी नहीं। वे सभी आपस में सोच विचार कर रही थीं, तभी उन्हें सूचना मिली कि महाराजा उन्हीं की तरफ आ रहे हैं।

महाराजा वहाँ आये तो सभी के चेहरे कृत्रिम भावों से रंगे हुए थे। उन्होंने वियोग के दुःख का ऐसा जबरदस्त नाटक रचा कि वे महाराजा के पधार जाने के बाद से अपनी भूख प्यास सब कुछ भूली हुई हैं और निरन्तर उन्हीं की चिन्ता करती रही हैं। महाराजा तो भद्रिक स्वभाव के थे। उन्होंने सब की बातें सुनी और अपना सारा विवरण बताया। रानियों ने विवरण सुनकर पूछा—राजन्, उन महाराजा आनन्दसेन की आयु कितनी होगी ? महाराजा ने बताया कि वह बीस वर्ष करीब का तरुण होगा। रानियों को तो उसके जन्म के दिन और घण्टे तक मालुम थे। उन्हें निश्चय हो गया कि आयु, सुन्दरता और दूसरे सारे वर्णन से वही आनन्दसेन पहलवान ही होना चाहिये। महाराजा तो अपनी बात करके चले गये लेकिन वे रानियां नया षड्यन्त्र रचने में संलग्न हो गईं।

महाराजा चन्द्रसेन जिन्होंने वीतराग देव के कुछ सिद्धान्तों का रसास्वादन किया था, अपने जीवन को पवित्र बनाते हुए सांसारिकता के प्रति अपने आसक्ति भाव को घटा रहे थे। सन्तान नहीं होने की खिन्नता को भी वे कम करने लगे और आत्मिक ज्ञान को पुष्ट बनाकर अपने जीवन को सार्थक बनाने की शुभ प्रवृत्ति में तल्लीन होने लगे। फिर भी रह रहकर आनन्दनगर की स्मृतियाँ उनके विचारों को घेर लेती थी कि आनन्दसेन और चम्पकमाला ने बिना किसी स्वार्थ भाव के उनको कितना तरल स्नेह और सम्मान दिया था ? कितना विचक्षण और दिव्य था उन दोनों का स्वरूप ? कितने सरल और सहृदय लगते थे वे दोनों ? वे दोनों उनके मन को कितना भा गये थे कि जैसे वे उन्हीं की प्रतिकृतियाँ ही हों ? उन्होंने उनकी कितनी हार्दिकता से सेवा की थी ? उनके एक—एक व्यवहार और एक—एक कार्य में आत्मीयता भरी हुई थी। उन्हें देखकर ही सदा हृदय भर आता था और वे गद्गद् हो जाते थे। यही नहीं। आनन्दसेन इतनी छोटी

आयु में ही शासक बनकर भी मानवता की रक्षा एवं अहिंसा की पालना के प्रति कितना निष्ठावान था ? उस छोटे से जीवन में मैंने सद्गुणों का कितना विशाल संचय देखा कि मैं अपने आपको ही भूल गया। उन्हें इस बात का सन्तोष हुआ कि जब उन्होंने अपने वक्तव्य में सारा विवरण सुनाते हुए आनन्दसेन के प्रति आभार व्यक्त किया तो उसका समग्र जनता ने समर्थन किया। यही नहीं, उनकी रानियों ने भी उसका समर्थन किया। वे इन सुखद स्मृतियों के बीच साधना और धर्मारोधना में जुट गये।

उन ग्यारह रानियों का जीवन तो भौतिकता प्रधान था। उनके मन में ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की अग्नि फिर से जलने लगी। ईर्ष्या के पीछे जो आसक्ति होती है, वह मनुष्य को काली धार डुबोने वाली होती है। जिनके मन में ईर्ष्या को कोई स्थान नहीं होता है, वे यही सोचते हैं कि कोई कितना ही आगे बढ़े उससे उन्हें क्या मतलब ? वे तो यह भावना रखते हैं कि हम ऐसा कार्य करें जिससे हमारे जीवन की शोभा में चार चाँद लग जायें। लेकिन इन महारानियों का ढंग अलग था। महाराजा जब से विश्वसुन्दरी को विवाहित करके लाये तब से ईर्ष्या की आग लगी तो उसको गर्भवती जानकर वह आग और बढ़ गई। दो बार षड्यन्त्रों की जो उन्होंने रचना की, वह इसी ईर्ष्या का फल था। अब पुनः यह जानकर कि विश्वसुन्दरी के पुत्र-पुत्री जीवित हैं तथा आनन्दसेन शासक के पद पर प्रतिष्ठित हैं—उनकी यह आग फिर से प्रज्वलित हो उठी। महाराजा ने दोनों भाई बहिन की प्रशंसा में जो शब्द कहे, वे उनकी इस आग में घी बन गये। वे फिर बेचैन हो गईं कि अब क्या किया जाये ? उन्हें कुछ भी सूझ नहीं पड़ रहा था इसलिये मदद के लिये उन्होंने फिर से सलखू नाइन को बुलवा भेजा।

उन रानियों ने अपनी विश्वस्त दासी को रात्रिकाल में सलखू नाइन को बुलाने के लिये भेजा। दासी को देखकर सलखू एकदम चौंक गई कि यह फिर से बुलावा क्यों ? उसने पूछा—ऐसी क्या बात हो गई सो इतनी रात गये मुझे बुलाने के लिये आई हो ? दासी ने इतना ही कहा कि बुलाया है। इतना सोना ले रखा है तो उनकी सेवा करनी ही पड़ेगी—यह सोचकर सलखू उसके साथ चल दी। करीब अर्धरात्रि के समय वह रनिवास में पहुँची। पहुँचते ही पहले तो रानियों ने उस पर रोष जताया कि जन्मते ही नवजात शिशुओं को अपने हाथों से ही न मारकर उसने सारी समस्या को

अब अति जटिल बना दिया है। मुखिया रानी ने कड़वा उलाहना दिया—अरी सलखू हम नहीं जानती थीं कि इतनी धनराशि देने पर भी तू हमारे साथ विश्वासघात करेगी। हमने जब मारने की ही योजना बनाई थी तो उसे यथावत् पूरी नहीं करके तुमने विश्वासघात ही तो किया। उसका नतीजा यह हुआ कि आनन्दसेन पहलवान हो गया और अब आनन्दनगर का महाराजा बन गया है। महाराजा दोनों पुत्र—पुत्रियों के प्रति पूर्णतः आकृष्ट हो गये हैं तो हमारी समस्या तो ज्यों की त्यों ही खड़ी रही न ? सलखू दबती हुई बोली—महारानी जी, जो मैं कर सकती थी, वह मैंने अपनी पूरी हिम्मत से किया। आप बताइये कि अब क्या किया जाये ? रानियाँ कहने लगीं—सलखू महाराजा की प्रसन्नता को देखते हुए तो यह कहा जा सकता है कि वे अब उस आनन्दसेन को चम्पानगरी का भी उत्तराधिकारी बना देंगे। फिर सोच, हमारी क्या दुर्दशा हो सकती है ? सलखू ने तब समझाईश की—ये तो सब पुण्यवानी के खेल होते हैं। आदमी अपनी कोशिश करता है लेकिन वह कामयाब हो ही जाये—क्या यह जरूरी है ? यह आनन्दनगर का महाराजा कोई दूसरा ही आनन्द भी तो हो सकता है।

महारानियों ने उसे आगे बोलने से रोक दिया और कहा— महाराजा की प्रशंसा का साफ मतलब है कि उनके बीच में प्रबल आकर्षण पैदा हुआ है और ऐसा आकर्षण पिता—पुत्र का ही हो सकता है। हमारा विचार तो यही है कि यह आनन्दसेन वही आनन्दसेन है। अब तू बता कि तेरा क्या सहयोग हो सकता है ? वह बोली—मैंने आपसे इतनी धनराशि प्राप्त की है तो मैं कृतघ्न नहीं बनूँगी। अब भी मैं कोई ऐसा प्रयत्न कर सकती हूँ कि वह आनन्दसेन मृत्यु के मुख में पहुँच जाय।

नीतिकारों ने नायिन जाति को बड़ी चालाक बताया है सो उस सलखू नाइन ने चालाकी का बर्ताव करने की ही सोची—आप फिक्र न करें। मैं अब पूरी तरह से आपके साथ हूँ। यद्यपि अब मुझे बहुत ज्यादा परिश्रम करना पड़ेगा, अतः उसके लिये काफी धन राशि की जरूरत होगी। इसकी आप व्यवस्था कर दें। मैं पूरी वफादारी से आपका काम पूरा करूँगी। इतने बड़े शासक को मारने के लिये अब कई तरह की योजनाएँ बनानी पड़ेंगी। रानियों की मुखिया ने कहा—तू धनराशि की बिल्कुल चिन्ता मत कर। वह

जो चाहेगी, मिल जायेगा, लेकिन यह सोचले कि इस बार हर कीमत पर सफलता मिलनी चाहिये। लोभ के वश कोई अपना कितना अधःपतन कर सकता है तथा राक्षसी वृत्ति अपना सकता है। सलखू उन्हें पूरा आश्वासन देकर तथा धन राशि लेकर अपने घर चली गई।

आत्मा के इस प्रकार के अधःपतन पर सभी को गहराई से चिन्तन करना चाहिये। क्या इस तरह लोभ और स्वार्थ आज के मानवों को दानवता की दिशा में नहीं धकेल देते हैं ? जब कोई आत्मा निकृष्ट विचारों के साथ दानवी वृत्ति तक नीचे गिर जाती है तो वह उसका घोर पतन ही होता है। इस पतनावस्था में उसको इस बात का कोई भान नहीं रहता है कि क्या करणीय है और क्या अकरणीय ? आनन्दसेन तो दयालु प्रकृति का अति सौम्य तरुण था, किन्तु इन एक दर्जन आत्माओं की प्रवृत्ति किस घोर अधःपतन की ओर बढ़ रही थी ? इस दृष्टि से वीतराग वाणी की मूल बात याद रखनी चाहिये कि यह आत्मा जो तीन लोक की स्वामिनी कहलाती है, उसे इस तरह स्वार्थ एवं दुर्भावना के कीचड़ में डुबोकर कलंकित कर दी जाये—यह कितनी निकृष्ट स्थिति है ? किसी का दुष्ट प्रयत्न सफल बने या नहीं, किन्तु ऐसा प्रयत्न करने वाली आत्मा तो निकाचित कर्मों का बंध कर ही लेती है।



16

मात्र भौतिक दृष्टिकोण वाली आत्माएँ धन के लिये कैसा भी पाप कार्य करने के लिये उद्यत हो जाती हैं। वर्तमान समय में तो इस दृष्टिकोण की बहुलता दिखाई देगी। किन्तु जो बखान तो आध्यात्मिकता का करते हैं, और भीतर ही भीतर भौतिकता का अनुसरण करते हैं, आज के युग में ऐसे लोग भी मिल जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को दुहरा चरित्र अधिक घातक बनता है। ये लोग धन की लिप्सा में ऐसे फंसे हुए होते हैं कि धनार्जन को ही प्रधानता देकर अपने व्यक्तिगत चारित्र्य अथवा सामाजिक नैतिकता को भूल जाते हैं। गलत रास्तों से धन कमाने के पीछे अपने मन, वचन एवं कर्म को कितना विकृत बना लिया जाता है—उसका कोई हिसाब नहीं। फिर जो आध्यात्मिकता की दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढ़े हैं, उनकी धन लिप्सा तो हदबाहर होती है। पूर्व काल में भी ऐसे धन लिप्सु कोई—कोई मिल जाते थे जिनके उदाहरण के रूप में सलखू नाइन थी जो ग्यारह रानियों से धन प्राप्त करके आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन की कुटिलतापूर्वक हत्या कर देने के लिये तैयार हो गई।

तीसरी बार रचे गये षड्यन्त्र को सफल बनाने की जिम्मेदारी लेकर सलखू नाइन राजभवन से अपने घर पर पहुँची और आनन्द—नगर जाने के लिये आवश्यक साधन जुटाने लगी। दूर देश जाने के लिये रक्षा हेतु किन्हीं रक्षकों को भाड़े पर लिया तो अन्य आवश्यक सामग्री भी साथ में ले ली और आनन्दनगर के लिये रवाना हो गई।

जब वह आनन्दनगर के मुख्य द्वार पर पहुँची तब करीब अर्ध रात्रि का समय हो रहा था। नगर के बाहर ही उसने भाड़े के रक्षकों को छोड़ दिया और स्वयं नगर में प्रविष्ट हो गई। तब वह राजभवन पहुँची और

द्वारपाल से बोली—मुझे भीतर जाने दो। द्वारपाल ने पूछा—तुम कौन हो ? सलखू ने हाथ मटका कर कहा—मुझे पूछते हो कि मैं कौन हूँ ? मैं जगत्प्रसिद्ध बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन हूँ। तुम्हारे महाराजा इन्हीं बाबा के शिष्य हैं। मैं उनसे मिलने के लिये आई हूँ। तुम मुझे तुरन्त भीतर जाने दो। द्वारपाल ने कहा—तुम अगर महाराजा से मिलने आई हो तो रात्रिकाल में क्यों आई हो ? दिन में आना चाहिये। हम तुम्हें पहिचानते नहीं और बिना पहिचाने भीतर नहीं जाने देंगे। तुम न जाने कौन हो और महाराजा के लिये कोई खतरा पैदा कर दो तो यह हमारी जिम्मेदारी होती है। हम गलत काम नहीं कर सकते हैं। सलखू द्वारपाल से लड़ने लगी, डाँटने लगी, उसे बुरा भला कहने लगी। द्वारपाल ने उसे द्वार पर ही रोक दिया सो रोक ही दिया। उसे भीतर जाने की अनुमति नहीं दी।

जब सलखू की कुछ न चली तो उसने अपना नाइन चरित्तर शुरू कर दिया। वह जोर—जोर से रोने लगी। उसके रोने की आवाज चारों ओर फैलने लगी। निद्रा भी कई तरह की होती है। किन्हीं लोगों की नींद ऐसी होती है कि उनके पास जाकर ढोल पीटा जाये तब भी उनकी नींद नहीं खुलती है। दूसरे चमक निद्रा वाले होते हैं जो जरा से खटके पर ही जाग जाते हैं। पवित्र हृदय वालों की निद्रा अधिकतर चमक निद्रा होती है। उस रुदन से आनन्दसेन की निद्रा तुरन्त खुल गई और सोचने लगा कि अर्ध रात्रि के समय यह कौन महिला है जो राजभवन के बाहर इस तरह रो रही है ? कहीं किसी ने उस पर कोई अत्याचार तो नहीं किया ? उसने रक्षक को बुलाया और पूछा—यह कौन स्त्री है जो रो रही है और किस कारण से रो रही है ? रक्षक भागा हुआ बाहर गया और द्वारपाल से विवरण पूछ कर वापिस आगया। उसने महाराजा को उत्तर दिया—स्वामी, कोई एक स्त्री बाहर खड़ी रो रही है कि द्वारपाल उसको भीतर प्रवेश नहीं करने दे रहा है। वह अपने आप को बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन बता रही है। द्वारपाल या अन्य कोई व्यक्ति उसे पहिचानता नहीं, इस कारण उसे बाहर ही रोक रखा है। रात्रिकाल में किसी अजनबी को आप तक पहुँचे देना उचित नहीं है। कारण, कोई धोखा भी हो सकता है।

आनन्दसेन भी विचार में पड़ गया कि उसे बाबा की किसी बहिन का खयाल नहीं है। फिर समझलें कि बाबा की कोई बहिन आई ही है तो उसका सही पता लगाना आवश्यक है। मैं ठीक से एक नारी की पहिचान

नहीं कर पाऊंगा इसलिये बहिन चम्पकमाला को जगा दूँ ताकि नारी नारी को ठीक से पहचान सकेगी। यह सोचकर उसने चम्पकमाला को जगाया और कहा—नीचे कोई स्त्री आई है जो अपने आप को बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन बता रही है तो तुम पक्का पता लाओ कि वह बाबा की बहिन ही है। क्योंकि अगर बाबा की बहिन है तो हमारा कर्त्तव्य बन जाता है कि हम उसका यथोचित रीति से स्वागत करें। बाबा ब्रह्मानन्द तो हमारे लिये सब कुछ हैं। हमें माँ का दूध और पिता का संरक्षण नहीं मिला, लेकिन बाबा ने माता और पिता दोनों बनकर हमारा पालन पोषण किया है। अतः बाबा की बहिन हो तो उसे कोई कष्ट नहीं होना चाहिये।

वर्तमान युग में देखें तो गृहस्थाश्रम में रहते हुए अधिकांश व्यक्ति अपने माता—पिता की समुचित सेवा तो नहीं करते सो न सही किन्तु उनसे रात दिन लड़ाई झगड़ा करते रहते हैं और उनको असह्य कष्ट पहुँचाते रहते हैं—यह कितनी निकृष्टता की वस्तुस्थिति है ? वे लोग सद्गुणी नहीं कहला सकते। जो सद्गुणी होते हैं, वे इस जन्म के माता—पिता की तो सेवा करते ही हैं लेकिन अनन्त जन्मों में रहे हुए माता—पिताओं को कष्ट नहीं पहुँचाने की शुभ भावना से प्राणी मात्र पर भी दया भाव रखते हैं। इसी भावना के साथ आनन्दसेन ने चम्पकमाला को नीचे खड़ी स्त्री के रहस्य के बारे में पता लगाने की बात कही।

आनन्दसेन अपनी बहिन चम्पकमाला को साथ में लेकर नीचे पहुँचा और सलखू को कहा—आप कौन हैं, क्यों रो रही हैं ? बताइये कि आप को क्या दुःख है ? तब सलखू का क्या कहना ? उसने अपने नाइन चरित्तर को तेज कर दिया। वह और अधिक जोर से रोने लगी और तूफान मचाने लगी। आनन्दसेन ने बहुत कहा कि जो भी कष्ट होगा, दूर किया जायेगा लेकिन रोना बन्द करो। किन्तु सलखू का नकली रोना चलता ही रहा। तब आनन्दसेन ने चम्पकमाला से कहा कि तुम इन्हें चुप कराओ। चम्पकमाला ने उसके चेहरे पर हाथ फिराते हुए कहा—आप रोना बन्द करो। स्वयं महाराजा आपके सामने खड़े हैं। जो भी आपका दुःख हो, इन्हें बताओ। ये अवश्य उस दुःख को दूर करेंगे। तब सिसकियाँ भरते हुए सलखू बोली—मैं बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन हूँ। यहाँ इसलिये आई हूँ कि मेरा दुःख दूर होवे। मैंने सुना कि बाबा का शिष्य आनन्दसेन यहाँ का महाराजा है और बहुत दयालु व परोपकारी है। ब्रह्मानन्द तो साधु बना हुआ है सो

स्त्रियों को अपने आश्रम में स्थान नहीं देता है। अतः मैं यहाँ आश्रम पाने के लिये आई हूँ। जब राजभवन में जाने से द्वारपाल ने मुझे रोक दिया तो मुझे अपनी दुर्दशा पर रोना आ गया। आनन्दसेन ने कहा—यदि आप बाबा की बहिन हैं तो हमारी माता के समान हैं। आप हमारे साथ रहो। हम आपकी हर तरह से सेवा करेंगे। फिर क्या था—सलखू महाराजा आनन्दसेन और चम्पकमाला के साथ सम्मान और आनन्द से रहने लगी।

सलखू तो अपने षड्यन्त्र के प्रसंग से चल रही थी। आनन्दसेन भद्रिक स्वभावी था अतः बाबा की बहिन के प्रति अपना कर्तव्य समझ कर उसको आश्रय दिये हुए था। सलखू ने अपने चेहरे के दो रूप बना रखे थे। बाहर से वह स्नेह के दिखाऊ हाव-भाव किया करती और भीतर से ऐसे अवसर की टोह में रहती जब वह अपने षड्यन्त्र को सफल बना ले। दोगले चरित्र वाले व्यक्ति बड़े खतरनाक होते हैं। कुटिलतापूर्वक वे अपने भीतर के जहर को तनिक भी बाहर प्रकट नहीं होने देते हैं। और सलखू के ऊपर के व्यवहार को देखकर ही दोनों भाई बहिन ने उस पर पूरा विश्वास कर लिया। सलखू रक्षक के रूप में भक्षक बन कर राजभवन में रहने लगी।

जो व्यक्ति वास्तविक रूप से सेवा लेने नहीं आया है, वह अनूठी सेवा से भी प्रभावित कैसे हो सकता है ? सलखू तो रात दिन भाई-बहिन के खून की प्यासी होकर अपने काम को पूरा करने की घात में लगी हुई थी। मन ही मन इस दुष्ट उद्देश्य के लिये उसने एक योजना गढ़ी और उसे पूरी कर लेने के प्रयास में जुट गई।

एक दिन वह अच्छे गादी तकियों पर सोई हुई थी। सेवा में दासियाँ हाजिर थीं। चम्पकमाला भी उसको बार-बार संभालती रहती थी। उस समय सलखू अपनी योजना को कामयाब करने के लिए अचानक इतनी जोर से रोने लगी कि जैसे सारा राजभवन गूजने लगा। रोते-रोते वह कभी इधर गिरती तो कभी उधर पड़ती और इस तरह जोरदार नाटक करने लगी। उसके इस तरह के क्रन्दन-रुदन को सुनकर चम्पकमाला भी तुरन्त दौड़ी हुई आई तो आनन्दसेन भी भगा हुआ चला आया।

भाई आनन्दसेन और बहिन चम्पकमाला दोनों ने घबरा कर पूछा—माता, आप इस तरह क्रन्दन क्यों कर रही हैं ? अचानक आपको क्या कष्ट हो

गया है ? काफी देर तक दोनों पूछ-ताछ करते रहे और सलखू लगातार रोती रही। जब उसे अपने नाटक का अन्तिम अध्याय समाप्त करना था अतः नाटकीय हावभाव से ही वह आखिर बोली-तुम्हारे राज्य में न कोई मुझे कष्ट देने वाला है और न ही कोई मेरी अवहेलना करने वाला है। सेवा भी मेरी इतनी अच्छी हो रही है कि मानों मैं स्वर्ग में पहुँच गई होऊँ। मेरे रोने का कारण यही है कि अचानक मेरी आँखों में प्राणान्तक शूल पैदा हो गया है और यह मेरे वेदनीय कर्म का ही उदय है।

आनन्दसेन कहने लगा-यदि आपकी आँखों में ऐसा शूल पैदा हो गया है तो अभी राजवैद्य जी को बुलवाता हूँ और वे आपकी श्रेष्ठ चिकित्सा कर देंगे। आप रोओ मत और फिक्र न करो। ऐसी कौनसी कष्ट की बात है जिसका निवारण मेरे राज्य में संभव नहीं है ? तब सलखू बोली-एक बार ऐसा ही शूल मेरी आँखों में पहले भी पैदा हुई थी तब एक पहुँचे हुए पुरुष ने एक चिकित्सा बताई थी जिसके अनुसार कार्य करने से उस समय शूल शान्त हो गया था। तुम दोनों भाई-बहिन मेरी जो सेवा कर रहे हो उससे मैं पूरी तरह से सन्तुष्ट हूँ लेकिन आँखों की इस वेदना को दूर करने के लिये अब मैं अपने घर पर ही जाना चाहूँगी। आनन्दसेन ने इस पर अनुरोध किया-मां जी, घर पर तो आप बताती हैं कि आप का पुत्र आपकी आज्ञा नहीं मानता है तो फिर आपकी समुचित चिकित्सा कौन करायेगा ? आप तो यहीं रहिये। जिस तरह की भी चिकित्सा आप चाहेंगी, उसे मैं कराऊँगा। आपकी हर तरह से मैं सेवा करने को तैयार हूँ, किन्तु मैं आप को यहां से जाने नहीं दूँगा।

पूरी मान मनुहार कराने के बाद सलखू ने अपना तीर फेंका-अब तुम इतना आग्रह करते हो तो मैं यही रूक जाऊँगी, लेकिन मेरी औषधि से तुम संकट में पड़ जाओगे, इसलिये अभी भी यही कहती हूँ कि तुम घर पर ही जाने दो। आनन्दसेन ने कहा-आप किसी तरह का संकोच मत करो और वह उपाय बताओ जिसकी मदद से आप की आँखों का शूल शान्त हो जाये। मामले को पूरी ऊँचाई तक ले जाकर सलखू बोली-मेरी आँखों के शूल को मिटाने के लिये जो चीज चाहिये, मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि तुम कैसे ला पाओगे ? मुझे मेरी आँखों के लिये शेरनी का दूध चाहिये। तुम दयालु राजा हो और तुमने अपने राज्य भर में शिकार पर प्रतिबन्ध भी लगा रखा है, फिर तुम स्वयं शेरनी का शिकार करके दूध कैसे

प्राप्त कर सकते हो ? शेरनी को मार दोगे तो दूध नहीं मिलेगा और जिन्दा शेरनी का दूध लेने जाओगे तो वह तुम्हें मार देगी। इस कारण समस्या टेढ़ी ही है। मेरा कहना तो यही है कि तुम मुझे यहाँ रुकने के लिए हठ मत करो।

आनन्दसेन ने भाव भक्तिपूर्वक ही उत्तर दिया—माँ जी, आप चिन्ता न करें। मैं स्वयं शेरनी का दूध लाने के लिये जाता हूँ। यह कह कर आनन्दसेन वहाँ से चल दिया। उसने जानकारों को पूछा कि शेर-शेरनी किस दिशा में मिल सकेंगे ? जानकारों ने जब यह सुना कि शेरनी के दूध की आंख का शूल ठीक करने के लिए मांग की गई है तो यह सरासर धोखा है और यह आपके दुश्मन की चाल है क्योंकि शेरनी का दूध बिना अपनी जिन्दगी को जोखिम में डाले भला कैसे मिल सकता है ? इसलिये अगर आपको जाना ही हो तो पूरा बन्दोबस्त साथ में लेकर पधारें। आनन्दसेन ने उनकी सलाह सुनी और कुछ सैनिकों को साथ में लेकर जंगल की तरफ आगे बढ़ गया। लेकिन योग ऐसा बना कि सैनिक तो पीछे ही रह गये और आनन्दसेन घने जंगल में पहुँच गया।

उस घने जंगल में सिंह की गर्जनाएँ सुनाई दे रही थी। आनन्दसेन ने सोचा कि वाकई खतरा बहुत बड़ा है और वह एकाकी ही रह गया है। अतः क्या किया जाये ? सबसे पहले एक स्वच्छ स्थान पर वह ध्यानस्थ होकर णवकार मन्त्र का तन्मयपूर्वक जाप करने लगा। जाप करते-करते जब उसके मन में से भय पूरी तरह निकल गया तो वह सावधानीपूर्वक आगे बढ़ने लगा। थोड़ी दूर चलने के बाद उसने झाड़ियों के झुरमुट में दहाड़ती हुई एक सिंहनी को देखा। उसे महसूस हुआ कि जैसे वह किसी पीड़ा से कराह रही हो। उसके मन में निर्भीकता तो थी ही और तब करुणा-भाव भी जागृत हो गया। वह निःशंक होकर आगे बढ़ चला और सिंहनी के पास तक पहुँच गया। तब उसे दिखाई दिया कि शेरनी के पाँव में एक बड़ा सा कांटा चुभा हुआ है जिसके दर्द से वह बुरी तरह बैचेन हो रही थी। आनन्दसेन प्रसन्न मुख कहने लगा—अरे आप सिंहनी क्या हो—मेरी मामीजी हो। मैं आपकी पीड़ा को समझ गया हूँ और आपका कांटा निकालने के लिये ही आया हूँ।

शेर-शेरनी पंचेन्द्रिय प्राणी होते हैं और बहुत कुछ समझ लेते हैं।

एक अजनबी व्यक्ति सामने था फिर भी उसकी आकृति पर उभरे दयापूर्ण भावों से जैसे वह शेरनी प्रभावित हो गई और उसने आनन्दसेन के सामने अपना कांटा चुभा पांव आगे फैला दिया। प्रेम और परवाह से जब आनन्दसेन ने कांटे को निकाल दिया और शेरनी को तुरन्त राहत मिल गई तो वह अपना सिर उसके पांवों में झुकाकर जैसे उस उपकारी के प्रति अपना आभार प्रकट करने लगी। शेर शेरनी और अन्य जंगली जन्तु अपने ऊपर उपकार करने वाले के प्रति किसी भी संकेत से अपना आभार प्रकट करते हैं। वे उपकार करने वाले को अपनी ओर से कष्ट नहीं देते बल्कि जो हो सकता है उस प्रकार की सहायता भी समझ लेने के बाद करने से नहीं हिचकते।

आनन्दसेन अतीव हर्षित हुआ कि इस महामन्त्र का कैसा अपूर्व प्रभाव है। उस दृढ़ आस्था के साथ ही उसने संकेतपूर्वक शेरनी को यह समझाया कि उसको थोड़े दूध की जरूरत है। बच्चे दूध धा ही रहे थे कि वह शेरनी उठी खड़ी हुई कि वह चाहे जितना दूध ले ले। आनन्दसेन ने तुरन्त अपने साथ लाये सोने के पात्र में शेरनी का दूध झेल लिया और झुककर शेरनी के आभार को मानते हुए वह वापिस लौट चला।

पावकार मन्त्र का जाप करते हुए जब वह आगे बढ़ने लगा तभी एक चमत्कार हुआ। शेरनी का एक बच्चा आनन्दसेन के घोड़े के साथ-साथ भागने लगा। आनन्दसेन ने सोचा कि कहीं उसके द्वारा दूध लाने के कारण यह बच्चा असन्तुष्ट तो नहीं हो गया है ? फिर कहीं शेरनी भी कूपित नहीं हो जाये ? वह घोड़े से उतर कर बच्चे को वापिस शेरनी के पास ले जाने की चेष्टा करने लगा, लेकिन बच्चा तो एक इन्च भी पीछे नहीं खिसका। तब उसने शेरनी की तरफ देखा—उसे लगा कि वह उसे बच्चे को साथ ले जाने का संकेत दे रही थी। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और घोड़े पर चढ़कर अपनी राजधानी की तरफ आगे बढ़ गया।

जब आनन्दसेन राजधानी में पहुँचा तो सभी आश्चर्य चकित रह गये कि यह तरुण महाराजा कितना साहसी और शक्तिशाली है जो शेरनी का दूध लाने के साथ-साथ शेर के बच्चे को भी साथ ले आया है ? इस चमत्कार से सभी विस्मित हो गये और महाराजा की जय-जयकार करने लगे।

उधर सलखू नाइन की आंखों में असल में तो कोई पीड़ा थी नहीं—उसे तो इस बहाने आनन्दसेन के जीवन को समाप्त करवाना था अतः जब कोई देखता होता तो वेदना का नाटक कर लेती वरना मौज मस्ती से सोई रहती। जब स्वयं आनन्दसेन शेरनी का दूध लेकर उसके सामने पहुँचा तो वह हतप्रभ हो गई। यह क्या हो गया ? आनन्दसेन जीवित बच गया और तिस पर शेरनी का दूध भी ले आया। अब वह चम्पानगरी में जाकर ग्यारह रानियों को अपना मुँह कैसे दिखा सकेगी ? उसकी आंखों के आगे तब निराशा का असली अंधेरा छा गया कि यह तो उसका तीसरा षड्यंत्र भी विफल हो गया है। ऐसे भयंकर स्थान से भी बचकर आ गया है तो अब इसके जीवन को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाना सम्भव ही नहीं है। हताशा से उसका सम्पूर्ण तन—मन सन्न रह गया।

आनन्दसेन ने शेरनी के थोड़े दूध को एक सोने की कटोरी में लिवा कर सलखू के सामने प्रस्तुत किया कि वह उसे अपनी आंखों में आज ले। सलखू आखिर चालाकी में बड़ी आगे बढ़ी हुई थी। इतने से समय में उसने एक दूसरा ही उपाय सोच लिया। नकली घबराहट दिखाते हुए वह हड़बड़ा कर बोली—गजब हो गया। शूल के कष्ट के कारण मैं तुम्हें इस दूध के साथ उपयोग में ली जाने वाली एक दूसरी चीज तो कहना ही भूल गई। अब एक चीज तो आ गई लेकिन दूसरी चीज बाकी रह गई। चम्पकमाला ने कहा—कोई बात नहीं, जो चीज बाकी रह गई है उसको अब बता दो। मेरे भैया हर तरह की चीज लाने में पूर्णतया समर्थ हैं। वह ढोंगी नाइन बोली—इस दूध में मिलाने के लिये असली गरूड़ पक्षी की बीट भी चाहिये, लेकिन मैं अब तुम्हारे भैया को फिर से खतरे की जगह पर जाने के लिए नहीं कहूँगी। तब आनन्दसेन ने आगे बढ़ कर कहा—माँजी, आप चिन्ता न करें। आपके आराम के लिये मैं कैसा भी खतरा झेल लूँगा। आपके लिये गरूड़ की बीट भी लाकर रहूँगा।

तब पक्षियों की जानकारी रखने वाले लोगों को बुलाया गया और उनसे असली गरूड़ के निवास स्थान आदि की जानकारी ली गई। उन लोगों ने बताया कि असली गरूड़ बहुत ही घने जंगल में रहता है और वह इतना खूँखार होता है कि दूर तक भी किसी को फटकने नहीं देता। हमारा तो खयाल है कि उसके पास पहुँचकर किसी का जीवित बचना और वापिस लौटकर आना सम्भव नहीं है। उन लोगों से आनन्दसेन ने यही

कहा—आप लोगों की बात ठीक है किन्तु मुझे भी बीट लाना आवश्यक है अतः अपने जीवन को खतरे में डालकर भी वहाँ पर जाऊँगा। फिर आनन्दसेन उस जंगल के बारे में जानकार कई व्यक्तियों को साथ में लेकर बताये गये मार्ग से उस घने जंगल की तरफ चल दिया। चलते—चलते जंगल की एक ऐसी हद आ गई जहाँ से आगे चलने में साथ वाले शिकारियों ने अपनी असमर्थता जाहिर कर दी। फिर भी आनन्दसेन ने परवाह नहीं की और उन्हें वहीं छोड़कर वह अकेला ही आगे बढ़ गया।

आनन्दसेन की महामंत्र के प्रति अटूट आस्था थी अतः सबसे पहले उसने उसका अति अंतरंगता से जाप किया और नवकार मंत्र का शरण लिया। फिर वह निर्भीकता पूर्वक आगे बढ़ने लगा। चलते—चलते जब सूर्यास्त होने लगा तो उसने रात एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर बिताई और सूर्योदय होने पर लक्ष्य की ओर प्रस्थान कर दिया।

दुनिया में सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। वृक्ष की एक ही टहनी पर फूल भी होते हैं तो कांटें भी होते हैं। किन्तु फूल अपनी सुगन्ध फैला कर सबके मन को खुश करते हैं, वहाँ कांटे किसी के गड़ गये तो उसको कठोर वेदना से रूला देते हैं। इसी रूप में संसार का स्वरूप सबके सामने है। एक व्यक्ति प्रयास करे तो वह फूल के समान बनकर परोपकार के कार्य कर सकता है वरना कांटे की तरह अपने स्वार्थों के लिये दूसरों की पीड़ा पहुँचाकर कष्टकर होना तो लज्जाजनक है ही। सभी को चिन्तन करना चाहिये कि उसे फूल बनना चाहिये या कांटा। यदि फूल बनना है तो वर्तमान जीवन को त्याग एवं साधना के बल पर सम्भालना और संवारना होगा।

आनन्दसेन अपने आप में आन्तरिक सम्पन्नता का अनुभव कर रहा था। वहाँ रिक्तता नहीं थी। उसके स्वभाव में जोश था, होश था और थी निर्भयता, क्योंकि महामंत्र के प्रति अटूट निष्ठा होने के कारण उनके अन्तःकरण में एक प्रकार की शक्ति उभरी हुई थी। वह शक्ति भावना रूप थी कि मैं मानव हूँ तथा मानवता की भावना के साथ सबकुछ करने में सक्षम हूँ। इसी भावना को लेकर गरुड़ की बीट लाने के लिये जंगल की तरफ रवाना हो गया। जानकारों द्वारा बताये गये संकेतों के अनुसार वह आगे बढ़ने लगा। दूर से उसको एक ऐसा वृक्ष दिखाई दिया जिस पर बहुत

बड़ा घोंसला पड़ा हुआ था। जानकारों ने बताया उसके अनुसार चिह्न उस घोंसले पर दिखाई दे रहे थे। उसने सोचा कि यह घोंसला गरुड़ पक्षी का ही होना चाहिये।

अभय सूत्र को थामे हुए निर्भीकता के साथ वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। ज्यों ही वह उस वृक्ष के पास पहुँचा, उसने देखा कि एक काला सर्प वृक्ष के ऊपर चढ़ रहा था। उसका अनुमान पक्का हो गया कि सर्प ही गरुड़ के बच्चों को खाने के लिये चढ़ता है अतः यह अवश्य ही गरुड़ पक्षी का ही घोंसला है। उसने घोड़े को एक तरफ बांधा और सर्प को सिसकार कर वृक्ष से नीचे हटा दिया। नीचे गिरकर सर्प एक तरफ भाग गया। सर्प को हटा दिये जाने के कारण गरुड़ के बच्चों की रक्षा हो गई। वृक्ष की ऊपर की शाखा पर बैठा हुआ गरुड़ आनन्दसेन के इस कार्य को देख रहा था। वह मन ही मन उपकार मानने लगा कि इस व्यक्ति के प्रयास से उसके बच्चों की रक्षा हुई है।

गरुड़ पक्षियों का वह जोड़ा आनन्दसेन के उस रक्षा-कार्य से बहुत ही हर्षित हुआ। उस समय उसने ऐसी ध्वनि की जिससे आनन्दसेन को यह लगा कि वे उसका आभार मान रहे हैं। उस जोड़े का संकेत यह भी था कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ? आनन्दसेन ने उन पक्षियों के संकेत को समझ लिया और उचित अवसर देखकर बोला—यह तो मेरा कर्तव्य था सो मैंने किया। आपको यह कष्ट देना चाहता हूँ कि मैं आपकी कुछ बीट ले लूँ। प्रसन्न होकर उन पक्षियों ने ही अपने पैरों से बीट नीचे सरकानी शुरू कर दी तथा अपने एक बच्चे को भी भेंट में दिया कि यह बड़ा होकर काम आयेगा।

वह गरुड़ के बच्चे और बीट को लेकर घोड़े पर सवार हुआ तथा तेजी से चलता हुआ अपनी राजधानी पहुँच गया। जनता अपने महाराजा के इस दूसरे साहसिक कार्य को देखकर अतीव हर्षित हुई तथा जय-जयकार करने लगी। लेकिन अब सलखू नाइन अनजाने भय से बुरी तरह आतंकित हो उठी।

जो निष्कृतम स्वभाव का व्यक्ति होता है, वह अपने दुष्कृत्य पर भी लज्जा का अनुभव नहीं करता है, क्योंकि उसकी आत्मानुभूति मृत प्रायः हो जाती है। सलखू ने षड्यंत्र रचा और मान्य मेहमान बनकर अपने मेजबान

को मारने के दो-दो बार किये दुष्ट प्रयासों में विफल हो गई, फिर भी उसका हृदय परिवर्तित नहीं हुआ। यह विचार नहीं उठा कि उसकी नीचता सारी सीमाएँ लांघकर असफल हो गई हैं तो अब अपने मेजबान से माफी मांग लेनी चाहिये अथवा कम से कम मन में तो प्रायश्चित्त की भावना लानी चाहिये। जब आनन्दसेन गरुड़ की बीट लेकर सलखू के सामने पहुँचा तो वह भय से आतंकित होकर भीतर ही भीतर बुरी तरह कांप उठी, किन्तु जल्दी ही उसने अपने आप को सम्हाला और प्रकट रूप से आनन्दसेन के अपूर्व साहस की सराहना करने लगी। तब दिखाऊ रूप से उसने शेरनी के दूध में गरुड़ बीट घिसनी शुरू कर दी ताकि आनन्दसेन उसकी मांग को वास्तविक ही माने।

दुष्ट न छोड़े दुष्टता, सज्जन तजे न प्रीत। उस समय सलखू की दुष्टता इसी तरह निर्लज्ज होकर कार्यरत थी।

सलखू कुछ दिनों तक बिल्कुल चुपचाप रही और दवा को आंखों में डालने का बहाना करती रही। चम्पकमाला के समक्ष वह आनन्दसेन की खूब प्रशंसा करती रहती कि यदि वह इतने साहसभरे कार्य करके दूध और बीट नहीं लाता तो उसकी आंखें निश्चित ही खराब हो जाती। उन दिनों में ऊपर से तो वह प्रशंसा के गीत गाती रहती और भीतर ही भीतर कोई नया षड्यंत्र सोचने लगी क्योंकि वह असफल होकर चम्पानगरी लौटना नहीं चाहती थी। वहाँ ग्यारह रानियों से वह भरपूर धनराशि ले चुकी थी अतः खाली हाथ वहाँ जाना भी खतरे से खाली नहीं था। जुआरी जब लगातार भी हारता जाता है तब भी इस आशा के साथ वह जुआ खेलना नहीं छोड़ता कि अगली बार अवश्य ही उसकी जीत होगी। इस कारण वह बराबर दाव लगाता जाता है। जुआ खेलने की ऐसी खोटी लत है जिसमें गिरकर करोड़पतियों तक को बरबाद होते हुए देखा गया है। पांडवों व कौरवों का ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने है।

जब स्व. गुरुदेव का चातुर्मास दिल्ली में था तब मैं भी उनके साथ में था। एक दिन सुबह दूध लेने गया तो गृह स्वामी ने थोड़ा सा हलवा भी ले लेने का आग्रह किया। मैंने पूछा कि सुबह ही सुबह हलवा क्यों बनाया गया है तो उन्होंने कहा कि मुझे शूगर की बीमारी है सो सुबह ही डॉक्टर इन्जेक्शन के बाद हलवा खाने को कह रखा है, इसलिये मेरे वास्ते

रोजाना हलवा बनता है। मैंने उस समय कुछ नहीं कहा और चला आया। लेकिन बाद में सेठ साहब के हालात सुने तो मालूम हुआ कि वे जुए की लत में गिरकर करोड़ों रुपयों की अपनी सम्पत्ति बरबाद कर चुके हैं। आज भी कई लोग ऐसे मिल जायेंगे जो जुआ या सट्टा खेलते हैं। इस व्यसन के आप लोगों को त्याग ले लेने चाहिये।

बार-बार हारकर भी सलखू अपने दुष्ट विचार से पीछे नहीं हट रही थी। उसने फिर एक षड्यंत्र रचा।

एक दिन वह चम्पकमाला के पास बैठी हुई थी तथा इधर-उधर की बातें कर रही थी। पहले तो उसने राजभवन की शोभा की सराहना की, फिर कहा कि यहाँ रहते हुए वह कितनी अधिक आनन्दित हो रही है। इसी सन्दर्भ में उसने आनन्दसेन तथा चम्पकमाला की खूब प्रशंसा की कि दोनों भाई-बहिन उसकी बहुत अच्छी तरह सेवा कर रहे हैं। इस तरह मीठी-मीठी बातें बनाते हुए वह बोली-आप दोनों ने मेरे प्रति इतना प्रेम दिखाया है कि मैं फूली नहीं समाती हूँ। लेकिन इतना होने पर भी मेरे मन में एक बात बहुत ज्यादा खटक रही है जो मैं सोच रही हूँ कि तुम्हारे सामने उसे कहूँ या नहीं कहूँ। चम्पकमाला तो भद्रिक स्वभावी थी, कहने लगी-इसमें किसी तरह का संकोच मत करो-जो भी आपकी इच्छा हो खुलकर कह दो। तब सलखू बोली-इतने बड़े राजभवन में तरह-तरह की बाल लीलाएँ करते हुए बच्चे-बच्ची नहीं हो तो यह बड़ा अखरता है। यों कहना चाहिये कि राजभवन की शोभा इस तरह से अधूरी ही है। आनन्दसेन अब तरुणाई में पहुँच गया है लेकिन फिर भी विवाह नहीं कर रहा है-उचित नहीं है। वह विवाह करले तो राजभवन में महारानी भी आवे और धीरे-धीरे बाल-बच्चों की किलकारियाँ भी गूँजे। चम्पकमाला ने कहा-मेरे भैया बहुत ही धार्मिक वृत्ति वाले हैं तथा उनका अपने मन पर नियन्त्रण सधा हुआ है। वे अभी विवाह जैसी बात में पड़ना नहीं चाहते हैं ताकि जनता की पूरी शक्ति से सेवा कर सकें। फिर उनके योग्य कन्या भी अभी दृष्टि में नहीं है।

बस सलखू ने निशाना लगा दिया-आपने खोज पूरी नहीं की होगी। मेरी नजर में आनन्दसेन के लायक सुयोग्य एक कन्या है। उसका नाम शीलावती है तथा जैसा उसका नाम है वैसी ही वह सर्वगुण सम्पन्ना भी है।

बहुत से राजाओं ने उसके साथ विवाह करने के प्रयत्न किये लेकिन वह कन्या जो भी उसे वरने की इच्छा लेकर आता है उससे उसका जीवन-वृत्तान्त सुनती है। किसी के जीवन में किसी प्रकार का दुर्गुण दिखाई दे या उसके होने की आशंका भी हो जाय तो वह उस पात्र को अस्वीकार कर देती है। प्रयत्न अनेकानेक राजा लोग उसे प्राप्त करने के करते रहे हैं किन्तु अभी तक किसी को भी सफलता नहीं मिली है। मैं सोचती हूँ कि वह कन्या आनन्दसेन के लिये सर्वथा उपयुक्त है तथा अपने साहस से वह उसे प्राप्त भी कर सकता है।

चम्पकमाला की जिज्ञासा जाग उठी, उसने पूछा—वह कन्या किस राजा की राजकुमारी है तथा कहाँ पर रहती है ? सलखू ने कहा—वह अद्वितीय कन्या वर्तमान में यहाँ से सौ कोस दूर रहती है, जिस तक पहुँचने के लिये एक बियावान जंगल पार करना पड़ता है आनन्दसेन जब इतना साहसी है तो उसे वहाँ तक पहुँचने में कोई खास कठिनाई नहीं आवेगी। मैं तो सोचती हूँ कि वह कन्या अवश्य ही आनन्दसेन को वरण कर लेगी। जहाँ तक साहसिकता का प्रश्न था, चम्पकमाला को पूरा विश्वास था कि आनन्दसेन अवश्य ही सफल बनेगा। किन्तु सलखू ने सारा वर्णन इस चतुराई से किया कि चम्पकमाला के मस्तिष्क में यह बात अच्छी तरह बैठ गई।

ज्यों ही आनन्दसेन आया, चम्पकमाला ने यह प्रस्ताव उसके सामने रखा और कहा—भैया, यदि योग्य कन्या मिल रही है तो आपको भी विवाह के लिये तैयार हो जाना चाहिये। उसने उत्तर दिया—बहिन, तू बहुत ही भद्रिक है। राजाओं की यह परम्परा होती है कि उनका सबसे बड़ा पुत्र ही उस राज्य का उत्तराधिकारी बनता है, किन्तु मैं इस राज-परम्परा को समाप्त कर देना चाहता हूँ। मेरे हृदय में यह भावना है कि राजतंत्र की समाप्ति होकर उसके स्थान पर मैं जनतंत्रीय पद्धति लाऊँ। मैं सोचता हूँ कि नागरिकों में से ही जो सर्वाधिक सुयोग्य एवं सद्गुणी दिखाई दे, उसका राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में चुनाव करा लिया जाये। इस कारण मैं विवाह करने का इच्छुक ही नहीं हूँ।

चम्पकमाला ने समझाया—भैया, यह सलखू भुवाजी कहती है कि वह ऐसी अद्वितीय कन्या है जो कई राजाओं को अस्वीकार कर चुकी है, उसके

लिये तुम ही योग्य हो। जब तुम्हारा प्रभाव चारों ओर के राज्यों में इतना फैला हुआ कि वहाँ के राजा लोग तुम्हारे से भय खाते हैं तो ऐसे राज्य के प्रभाव को यथावत् रखने का ही प्रयास किया जाना चाहिये। तुम यदि उस कन्या का वरण करने का साहसिक कार्य पूरा कर लोगे तो तुम्हारा प्रभाव और अधिक बढ़ जायेगा। आनन्दसेन ने समझाया—बहिन, इस प्रभाव का लाभ राजपरिवार को ही नहीं, समस्त जनता को मिलना चाहिये और ऐसा तभी हो सकता है जब राजा का बेटा ही राजा न बने बल्कि जनता में से ही कोई सुयोग्य नागरिक इस पद को सुशोभित करे। चूँकि वह निर्वाचित होकर आयेगा, अतः वह अपना ध्यान जन सेवा की दिशा में ही प्रधान रूप से केन्द्रित करके रहेगा। सत्य तो यह है कि दृष्टि बदले तो सृष्टि बदल जाये। चाहे व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सामूहिक जीवन—नई दृष्टि नया परिवर्तन लाती ही है। यह मेरी नई दृष्टि है कि राजतंत्र के स्थान पर जनतंत्र लाया जाये तो तुम निश्चय मानों कि इस दृष्टि को कार्यान्वित कर देने पर नई सृष्टि अवश्य ही उभर कर आयेगी।

चम्पकमाला ने पुनः आग्रह किया—यह परिवर्तन की बात तुम जानो लेकिन इस कन्या का वरण करने में अपनी शक्ति का परिचय देने की जो बात है, उसमें तुम्हें पीछे नहीं रहना चाहिये। आनन्दसेन ने उत्साहित होकर कहा—अगर शक्ति का परिचय देने की ही मुख्य बात है तो मैं तैयार हूँ।



17

साहसी व्यक्ति दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की कामना करते हैं। वे साहस की परीक्षा से प्रसन्न होते हैं और कठिनाईयों की कसौटी पर अपने साहस को चढ़ाकर उसे सफल बना देते हैं। सलखू नाइन के मन में तो कठोर दुर्भावना बनी हुई थी कि किसी भी प्रकार से महाराजा आनन्दसेन के प्राणों का हरण हो जाये। उसी दुर्भावना से उसने चम्पकमाला को सुझाव दिया कि आप के भाई साहब के लिये शीलावती की जोड़ी ही श्रेष्ठ रहेगी जो अद्भूत सुन्दरी है। सारा विवरण सुनकर चम्पकमाला ने भी आनन्दसेन को आग्रह किया कि वह शीलावती को ही प्राप्त करके उसे अपनी महारानी बनावे। आनन्दसेन इस तथ्य से अधिक प्रभावित हुआ कि शीलावती दुर्लभ है इसलिये उसे प्राप्त करने में उसके साहस को कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ेगा। फिर सर्व गुण सम्पन्न पत्नि की प्राप्ति भी स्वयमेव में एक विशिष्ट उपलब्धि रहेगी।

शीलावती को प्राप्त करने का निश्चय करके महाराजा ने अपने जानकार मन्त्रियों आदि को बुलाया तथा उन्हें अपना उद्देश्य बताया। आनन्दसेन ने कहा—हमने यह निश्चय किया है कि हम शीलावती के साथ ही विवाह करेंगे और उसके लिये कल ही प्रस्थान कर देना है। मार्ग की विकट परिस्थितियों को देखते हुए हमें साथ में सेना भी ले जानी होगी।

आनन्दसेन का निश्चय सुनकर मन्त्री आश्चर्य में डूब गये और कहने लगे—महाराजा, जिस किसी ने आपको शीलावती से विवाह करने का सुझाव दिया है, वह अवश्य ही आपके प्राणों का शत्रु है। क्योंकि आज तक अनेक वीर उसे प्राप्त करने के लिये गये लेकिन कोई वापिस नहीं लौटा। वह बड़ी मन्त्रवादिनी है और अपने मन्त्र बल से सबको पराजित कर

देती है। इस कारण हमारा निवेदन है कि आप शीलावती का खयाल छोड़ दीजिये। उस से भी अधिक सुन्दर कन्याएँ हमारे ध्यान में हैं और उनमें से जिसे भी आप पसन्द करें, उसके साथ आपके विवाह की व्यवस्था का जिम्मा हम लेते हैं।

आनन्दसेन ने उत्तर दिया—विवाह अवश्य महत्त्वपूर्ण होता है किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि जिसे सामान्य लोग प्राप्त नहीं कर सकते, उसे एक साहसी व्यक्ति अपने साहस के सम्बल पर प्राप्त करके दिखावे। इस रूप में मैं भी अपने साहस की परीक्षा करना चाहता हूँ और जो काम आज तक अनेकानेक वीर पुरुष नहीं कर सके। उसे मैं अपने साहस को सफल बना करके पूरा कर दिखाना चाहता हूँ। कठिन कार्य को सम्पन्न करलें—इसी में साहसी व्यक्ति की सफलता मानी जाती है। इसलिये सारे संकटों के बावजूद कल मैं अवश्यमेव प्रस्थान करूंगा और शीलावती के साथ विवाह करके बता दूँगा कि मेरा साहस कहीं भी विफल होना नहीं जानता। अतः आप लोग प्रस्थान के लिये सारी तैयारियाँ जल्दी पूरी कर लीजिये।

यह तो महाराजा का आदेश था अतः मन्त्री गण विवश हो गये। तब मंत्रियों ने महाराजा को बताया—राजन्, शीलावती का निवास स्थान यहाँ से बहुत ही दूर है। हमें पूर्व दिशा में आगे से आगे बढ़ते रहना होगा। मार्ग में बहुत ही विकट अटवी पड़ती है, जिस में भांति—भांति के खतरे सामने उपस्थित होंगे। उसे पार कर लेने के बाद बड़ा ही रमणीय स्थान आवेगा—ऐसा रमणीय स्थान, जहाँ चारों ओर हरे—भरे वृक्ष, फूल वाली झाड़ियाँ और कल—कल करते हुए झरने दिखाई देंगे। वहाँ के वातावरण में फूलों की सुवास बिखरी हुई मिलेगी। सभी ऋतुओं में प्राप्त होने वाले फल वहाँ सदैव उपलब्ध रहेंगे। ऐसे रमणीय क्षेत्र के किनारे पर एक बहुत ही कलात्मक ढंग से बनी हुई बावड़ी दिखाई देगी। उस बावड़ी पर ही खड़े होकर शीलावती को आवाज लगानी होगी। अगर आवाज लगाने से वह बाहर आ जायेगी, तब तो अपना काम बन जायेगा लेकिन अगर तीन बार आवाजें लगाने के बाद भी वह बाहर नहीं आई तो बड़ी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा जिसका सामना करना शायद साहस से भी परे की बात हो।

सारी जानकारी लेने के बावजूद आनन्दसेन की इच्छा शक्ति कहीं से भी कमजोर नहीं हुई और उसने तैयारियाँ शीघ्र पूरी कर लेने पर ही बल दिया। अतन्तः मन्त्रियों के सामने कोई चारा नहीं रहा और उन्होंने सुरक्षा आदि की दृष्टि से सभी प्रकार की तैयारियाँ यथा समय पूरी कर ली।

दूसरे दिन दल-बल सहित आनन्दसेन अपने गन्तव्य की दिशा में रवाना हुआ। आनन्दसेन के मन में अपूर्व उत्साह था। उस के दो कारण थे। एक तो वह अपने अजेय साहस को आजमाना चाहता था और यह दिखा देना चाहता था कि उसका साहस सदा अजेय ही रहेगा। दूसरे, वह यह सोचता था कि विवाहोपरान्त पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात् यथा समय वह अपनी राज्य व्यवस्था का भार उसे सम्हलाकर आत्म कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। तब वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति साधु धर्म की साधना में लगा सकेगा। वैसे उस समय वह युवक था किन्तु फिर भी वासना के अन्धड़ उसके यौवन को परास्त नहीं कर पाये थे। वह सम्पूर्ण निष्ठा एवं श्रम से राज्य व्यवस्था में लगा रहता था और जनता को सर्वतः सुखी बनाने के उद्देश्य से विविध प्रवृत्तियाँ संचालित करता था। मन में रहे हुए अपने दोनों लक्ष्यों के कारण ही पूर्व दिशा में आगे से आगे बढ़ते हुए महाराजा आनन्दसेन का हृदय आन्तरिक आनन्द सरोवर में हिलोरे ले रहा था।

शीलावती की गुणसम्पन्नता का जो विवरण आनन्दसेन ने सुना था उससे भी उसका हृदय आनन्दित था कि यदि ऐसी पत्नि प्राप्त होती है तो उसके साथ से समग्र जीवन का भी यथोचित विकास हो सकेगा। कठिनाई उसे प्राप्त करने की है जिसे यदि वह जीत लेता है तो उसके बाद सब तरह से आनन्द ही आनन्द बरतेगा।

मार्ग में आने वाली विविध विपदाओं को सहन करते हुए आनन्दसेन और उसका दल निरन्तर आगे बढ़ता रहा। अटवी के खतरों को भी उसने झेला और रमणीय क्षेत्र में प्रवेश कर गया। वहाँ चलते हुए कुछ ही समय बाद उनकी नजर उस बावड़ी पर पड़ी। आनन्दसेन, मन्त्री और सभी सैनिक बावड़ी तक पहुँचे। सलखू नाइन द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसार आनन्दसेन ने अपने सैनिकों से कहा—आप सभी तैयार रहें, क्योंकि कोई खतरा सामने आवे तो उसका मुकाबला करना पड़ेगा। अब मैं बावड़ी की पाज पर चढ़कर शीलावती को आवाज लगाता हूँ। इतना कहकर आनन्दसेन उस बावड़ी की पाज पर चढ़ गया।

आनन्दसेन ने तब तेज आवाज लगाई—ओ शीलावती, तुम तुरन्त बार आ जाओ। मैं तुम से विवाह करने का निश्चय करके ही यहाँ पहुँचा हूँ।

शीलावती की मन्त्रवादिता यह थी कि ज्यों ही कोई वीर विवाह का प्रस्ताव लेकर इस बावड़ी तक पहुँचता और उसे बाहर निकल कर आने के लिये आवाज लगाता तो पहली आवाज के बाद ही वह और उसके सभी संगी साथी घुटनों तक पत्थर के हो जाते। और फिर जब दूसरी आवाज भी निष्फल चली जाती तब वे सभी कमर तक पत्थर के बन जाते। इसी प्रकार तीसरी आवाज के बाद भी शीलावती बाहर निकल कर नहीं आती तथा वे सभी आगत व्यक्ति कंठ तक पत्थर के हो जाते, जिससे सांस तक लेना उनके लिये कठिन हो जाता। किसी तरह के मुकाबिला करना तो उनके वश में रहता ही नहीं। तब उन्हें अपनी भूल मालूम होती और वे पछताते कि उन्होंने ऐसा दुस्साहस व्यर्थ ही किया।

आनन्दसेन की पहली आवाज निष्फल गई और वह अपने सभी साथियों सहित घुटनों तक पत्थर का हो गया। फिर भी उसने साहस को नहीं छोड़ा—आखिर अपने अदम्य साहस के बल पर ही तो वह वहाँ तक पहुँचा था। उसने कड़क कर दूसरी बार आवाज लगाई जिसका फल यह हुआ कि वे सभी कमर तक पत्थर के बन गये। फिर भी आनन्दसेन भयभीत नहीं हुआ और उसने तीसरी बार भी गर्जना करते हुए आवाज लगा ही दी। तब तो सभी कंठ तक पत्थर के हो गये। सांस तक रूकने लगी, तब आनन्दसेन के मन में पश्चाताप का विचार जगा कि उसने अपने मन्त्रियों की चेतावनी को क्यों नहीं मानी ? उसे यह भी अनुभव हुआ कि वास्तव में सलखू नाइन ने उसे समाप्त करने का ही षड्यन्त्र रचा है। यहाँ तो अब साहस के प्रयोग का ही अवसर कहां बचा है? अपनी प्रतिष्ठा तो धूल में मिलेगी सो मिलेगी ही, लेकिन अब तो प्राणों के भी लाले पड़ गये हैं। घातक विपत्ति के उस दौर में आनन्दसेन अपने गुरु का नाम स्मरण भी भूल गया।

उसी समय में अपने आश्रम में ब्रह्मानन्द योगी जो श्रेष्ठ श्रावक का जीवन व्यतीत करते थे, ध्यान मुद्रा में बैठे हुये थे। उनकी ध्यानमग्नता अचानक आनन्दसेन के उस कारुणिक दृश्य पर केन्द्रित हो गई। उन्होंने अपनी ज्ञान दृष्टि में जो कुछ देखा, वे स्तब्ध रह गये। उनका प्रिय शिष्य

संकट की घड़ियाँ गिन रहा है और निरुपाय खड़ा है। वे उस क्षण वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर आनन्दसेन के पास पहुँच गये लेकिन अदृश्य रहे। आनन्दसेन ने महसूस किया कि उसके गाल पर किसी ने जोरदार तमाचा लगाया है और फटकारती हुई आवाज आई कि नवकार मन्त्र का जाप कर तथा गुरु का नाम सुमर।

आनन्दसेन ने जब यह आवाज भी साफ-साफ सुनी कि पुकार शीलावती को यह कहकर कि गुरु का आदेश है, बाहर आजा, तब उसकी चेतना लौटी। गुरु की आवाज प्रत्यक्ष सुनकर उसका मन ग्लानि से भर उठा कि ऐसे संकट काल में वह अपने श्रद्धेय गुरु ब्रह्मानन्द योगी को कैसे भूल गया ? उसने उसके बाद एक पल भी बरबाद नहीं किया और नवकार मन्त्र तथा गुरु नाम का जाप करके जोर से आवाज दी—ओ शीलावती, गुरु का आदेश है कि बाहर आ जा।

इसी पहली आवाज के साथ भीतर बैठी शीलावती चौंक उठी। अरे यह भी उसी गुरु का शिष्य है जिसकी वह शिष्या है। उसका मन्त्र ढीला हो गया। तब पत्थरपने का असर आनन्दसेन सहित सभी लोगों के कंठ से उतर कर कमर तक आ गया। ज्योंही गुरु के आदेश की दूसरी आवाज आनन्दसेन ने लगाई कि कमर से घुटनों तक असर उतर आया और आनन्दसेन की तीसरी पुकार ने तो पत्थरपने के प्रभाव से सबको पूर्ण मुक्त कर दिया किन्तु दूसरी ओर शीलावती को भयाक्रान्त बना दिया कि उसका सारा मन्त्र-प्रभाव यों कैसे लुप्त हो गया है ? आनन्दसेन के आनन्द का पार नहीं था कि उसकी डूबती हुई किशती को गुरु ने बचा ली है।

कभी हार न मानने वाली शीलावती के सामने जब हार इस रूप में आकर खड़ी हो गई तो वह क्षुब्ध होकर अपने मन्त्र बल से ब्रह्मानन्द योगी के पास पहुँच गई और बोली—गुरुदेव, मैंने आपसे ही मन्त्र विद्या सीखी है और यह कौन युवक है जो मुझे इरादे से डिगाने की सफल कोशिश कर रहा है वह भी आपके ही नाम पर ? मैं महल से बाहर उस युवक के सामने नहीं जाना चाहती हूँ। आपके नाम प्रभाव से ही मेरा मन्त्र बल प्रभावहीन हो गया है, वरना मैं उस युवक को भी पहले आये वीरों की ही पंक्ति में खड़ा कर रही थी। अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ ?

ब्रह्मानन्द योगी ने समझाने के स्वर में कहा—शीलावती, मैंने तुझे

मन्त्र विद्या इसलिये सिखाई थी कि तुम दुनियाँ में लोगों की भलाई करती, किन्तु तुमने तो उल्टा काम कर लिया। उसी मन्त्र विद्या से तुम अभिमान की चोटी पर चढ़ गई और आने वाले वीर पुरुषों को पत्थर की मूर्ति बनाने लग गई। तुम भी मेरी शिष्या हो और अभी आया हुआ युवक आनन्दसेन भी मेरा शिष्य है। उसकी जीवन रक्षा मेरा कर्त्तव्य था तो तुम्हें अभिमान की बुराई से हटाना भी मेरा कर्त्तव्य है। तुम अपने स्थान को लौट जाओ और अपनी रीति नीति में सुधार कर लो। उस अभिमानिनी को उस समय गुरु को श्रेष्ठ उपदेश भी भाया नहीं और वह निराश सी अपने महल में लौट आई। महल में उसे ऐसा अनुभव हुआ कि बाहर खड़े युवक आनन्दसेन की उसको पुकारने की आवाज इस तरह गूँज रही है कि उसका वहाँ ठहर पाना संभव नहीं रहा।

क्रोध में पैर पटकती हुई शीलावती तब बाहर निकल आई और आनन्दसेन के सामने आकर खड़ी हो गई। उसने तीखी नजर से आनन्दसेन को देखा और बोली— बाहर निकल आने के लिये मुझे क्यों पुकार रहे हो ? मेरे से क्या कार्य है तुम्हारा ? समझते नहीं हो कि मेरे पास कितनी शक्ति है ? शक्ति का एक बार चमत्कार देखकर भी अपने जीवन के खतरे को क्या समझ नहीं पाये हो ? यह तुम्हारा व्यवहार न तो तुम्हारे जीवन हित में रहेगा, न ही सुखकारी। इसलिये अब भी चेत जाओ और वापिस लौट जाओ।

आनन्दसेन तो तब आनन्दित भाव में विचर रहा था, मुस्कुराते हुए कहने लगा—ओ, शीलावती, क्या अब भी तुम्हारा अभिमान समाप्त नहीं हुआ है ? मैंने तुम्हें पुकारा है तो मेरे गुरु ब्रह्मानन्द योगी की आज्ञा से और वे गुरु मेरे परम रक्षक हैं। उन्होंने ही मेरी प्रारम्भ में भी जीवन रक्षा की थी, मेरा पालन पोषण किया और उनकी ही आज्ञा से मैं महाराजा बना हूँ। क्या तुम मेरे गुरु की तेजस्विता को जानती नहीं हो ? वे चाहें, तो पल भर में तुम्हें ठिकाने लगा सकते हैं। किन्तु वे परम दयावान हैं। उनके नाम पर तुम्हें अपना जीवन सुधार लेना चाहिये। मैं भी तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ। तुम अपने अभिमान को छोड़ो और तब देखो कि तुम्हारा जीवन कितना सरल और सुखी बन सकता है ? यही अभिमान तुम्हारे जीवन को पूर्णतया नष्ट किये बिना छोड़ेगा नहीं, अतः इसी में तुम्हारा हित रहा हुआ है कि तुम्ही इस दुष्ट अभिमान को छोड़ दो।

मन्त्र विद्या की शक्तियों से तनी हुई शीलावती जब गुरु के उपदेश को भी तुरन्त पकड़ नहीं सकी तो भला वह आनन्दसेन की इन बातों को सहज भाव से कैसे ग्रहण कर लेती ? उसने कड़कती हुई आवाज में कहा—ओ युवक बढ़—बढ़ कर बातें करने की जरूरत नहीं। मेरी मन्त्र शक्ति का अभी तक तो तुमने एक ही चमत्कार देखा है लेकिन अब तुम्हें ऐसे चमत्कार दिखलाऊँगी तुम अपना यह सब उपदेश भूल जाओगे। लो, तो अब सावधान हो जाओ और मेरे से टकराने का फल भुगतो।

हंसते हुए आनन्दसेन ने इतना ही कहा शीलावती, अभी तुम्हारा अभिमान मरा नहीं है और न तुम उसे मारने की कोशिश करना चाहती हो लेकिन तुम मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकोगी। गुरु का नाम ही तुम्हें सबक सिखायेगा और तुम्हारे अभिमान को मारेगा। जो कुछ मन में हो, कर डालो और तुम्हीं गुरु के प्रभाव का अच्छी तरह अनुभव कर लो।

शीलावती पर इस कथन का भी कोई असर नहीं हुआ और वह एक के बाद दूसरे मन्त्र का प्रयोग आनन्दसेन पर करने लगी। आनन्दसेन तो मात्र गुरु के नाम का एकचित स्मरण करता रहा। शीलावती अपने सारे मन्त्रों का प्रयोग करते—करते थक गईं लेकिन किसी भी मन्त्र का कोई प्रभाव प्रकट नहीं हो रहा था। जब वह थक गई तो उसने अपनी हार मान ली। उसने हार मान ली याने कि उसके अभिमान ने हार मान ली। अभिमान टूटा तो उसकी भावना जुड़ गई एक ओर गुरु के प्रति उसकी आस्था बलवती बन गई तो दूसरी ओर उस आगत युवक के प्रति वह समर्पित सी हो गई जो गुरु प्रभाव से उस मन्त्रवादिनी के समक्ष अपराजेय बना खड़ा था।

आनन्दसेन ने अपने पैरों पर झुकी आई शीलावती को थाम लिया। शीलावती की आँखों से पश्चात्ताप के आंसू झर रहे थे और वह कहती जा रही थी—गुरु नाम सबसे बड़ा होता है। मंत्र बल के अभिमान में मैं उन गुरु को ही भूल गई जिन्होंने मुझे यह विद्या दी और उनकी ही मैं अवज्ञा कर बैठी। मैं आपको अपना उपकारी मानती हूँ कि आपने गुरु नाम स्मरण करके मेरे कुत्सित अभिमान पर चोट की और उसे तोड़ डाला। इस तरह आपने मेरा उद्धार करके मुझे नया जीवन दिया है। इस नये जीवन का स्वामी अब आपके सिवाय अन्य कौन हो सकता है ? किन्तु सबसे पहले आप मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। मैं लज्जित हूँ।

शीलावती का आश्वस्त करके आनन्दसेन बोला शीलावती, आखिर तुमने अपने अभिमान को मार दिया तो तुम जी उठी हो— इसकी मुझे बहुत खुशी है। तुम्हें मैं क्षमा करूँ—ऐसी कोई बात नहीं है। सच्ची क्षमा तो तुम्हें अपने दोनों के गुरुदेव ही प्रदान करेंगे। तत्काल तो मैं तुम्हें एक ही निवेदन करना चाहता हूँ कि चारों ओर ये जो पत्थर की मूर्तियाँ खड़ी हैं, इनमें पुनः जीवन भर दो क्योंकि ये सब तुम्हारे मिथ्या अभिमान के नाम पर कलंक रूप हैं। शीलावती ने तुरन्त अपने मंत्र बल से उन सभी पत्थर की मूर्तियों को यथारूप जीवित बना दी। वहाँ देखते—देखते हजारों की संख्या में वीर पुरुष और सैनिक चलने फिरने लगे। एक मेला सा मच गया और उस वीरान जंगल में आनन्दसेन के साहसिक प्रयोग से मंगल का वातावरण छा गया। चारों ओर जय—जयकार की आवाजें गूँजने लगी।

तब शीलावती को लगने लगा कि उसके मंत्रों का चमत्कार तो कुछ नहीं था, आनन्दसेन के व्यक्तित्व का चमत्कार तो अनुपम है। उसे समझ में आने लगा कि चमत्कार वह नहीं होता जो मनुष्यों को कष्टों में धकेल दे बल्कि सही चमत्कार वह होता है जो मनुष्यों को उनके कष्टों से उबार दे। चमत्कार वह नहीं था कि उसने जीते—जागते इन्सानों को पत्थर बना दिये। वास्तव में चमत्कार यह है कि पत्थर की मूर्तियाँ पुनः हंसती खेलती सजीव प्रतिमाएँ बन गई हैं। गुरुदेव ने ठीक ही कहा था कि मंत्र विद्या का सत्प्रयोग मनुष्यों के हित में ही होना चाहिये। एक तरह से उसने अपनी मंत्र विद्या का दुरुपयोग किया, जिसके लिये उसने अपने आपको लज्जित और ग्लानिग्रस्त अनुभव किया। लज्जा और ग्लानि के इसी अंधकार में उसे आनन्दसेन का व्यक्तित्व एक चमकता हुआ प्रकाश स्तम्भ दिखाई दिया। इस दृष्टि ने उस समय उसके मन में एक आकांक्षा को जन्म दिया कि काश, यह प्रकाश स्तम्भ सदा सदा के लिये उसके जीवन को आलोकित करता रहे—उसे आत्म विकास का मार्ग दिखाता रहे।

शीलावती के माता—पिता को जब ज्ञात हुआ कि शीलावती और आनन्दसेन परस्पर विवाह सूत्र में बंधने को इच्छुक हैं तो उन्होंने अतीव हर्ष के साथ अपनी अनुमति दे दी। वे तो हर्ष और गौरव से अभिभूत हो गये कि उनकी हठी बेटी सुधर गई है और उन्हें आनन्दपुर के महाराजा आनन्दसेन जैसा वीर पुरुष जमाता के रूप में प्राप्त हो रहा है। तभी शुभ मुहुर्त में दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न करा दिया गया। पत्थर की

मूर्तियों से पुनः जीवन पाये हजारों व्यक्ति इस विवाह संस्कार में सच्ची खुशी के साथ सम्मिलित हुए।

उधर आनन्दपुर में जब यह उड़ती हुई खबर पहुँची कि आनन्दसेन और शीलावती का विवाह सम्पन्न हो गया है तो सलखू नाइन के पैरों तले की जमीन खिसक गई। उसका दुष्ट इरादा तो पूरा नहीं हुआ किन्तु अब तो उसकी जीवन रक्षा की सम्भावना ही नहीं रही थी। वह यह सोचकर ही कांप उठी। दूसरों का अहित करने में दुष्टों की हिम्मत बहुत होती है लेकिन अपने अहित की जब आशंका खड़ी हो जाती है तब उनकी हिम्मत पूरी तरह से छूट जाती है। सलखू को तब यही चिन्ता लग गई कि वह अपनी जिन्दगी किस तरह बचावे ? आखिर उसने आनन्दपुर से चुपचाप भाग जाने का ही तय किया। वह रातों-रात वहाँ से भाग कर चम्पानगरी पहुँच गई।

इधर नव दम्पति हजारों लोगों की जय जयकार के साथ आनन्दपुर पहुँचे। आनन्दपुर के सभी नर नारी हार्दिक प्रसन्नता से परिपूरित हो गये कि अब उनको अपने वीर महाराजा के साथ सर्वगुणसम्पन्ना महारानी भी प्राप्त हो गई है। सम्पूर्ण नगर में मनाये जाने वाले उत्सवों का अवलोकन करते हुए जब महाराजा आनन्दसेन और महारानी शीलावती राजमहल में पहुँचे तो आनन्दसेन ने सबसे पहले अपनी पत्नी से अपनी बहिन चम्पकमाला का परिचय कराया और उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया। शीलावती भी प्रेमपूर्वक चम्पकमाला से गले मिली और उसके आशीर्वाद की कामना की।

आनन्दसेन को तब सलखू का ध्यान आया और उसने अनुचरों से पूछा कि उसके गुरुदेव की बहिन सलखू नहीं दिखाई दे रही है। गुरुदेव की बहिन का उल्लेख सुनकर शीलावती चौंकी, क्योंकि वह जानती थी कि योगी ब्रह्मानन्द के कोई बहिन नहीं थी। तब शीलावती ने कहा—स्वामी, अपने गुरुदेव के तो कोई बहिन नहीं है। यह सलखू का आप जो उल्लेख कर रहे हैं, वह वास्तव में कोई शत्रु नारी होनी चाहिये जो आपके जीवन के विरुद्ध षड्यंत्र करने के दुष्ट निश्चय से यहाँ आई होगी, उससे अब आप सावधान ही रहें। तभी अनुचर पता लगा कर आये और बोले—राजन्, सलखू तो अपने स्थान पर नहीं मिली है। सैनिकों का अनुमान है कि वह

रातोंरात शायद यहाँ से भाग निकली है। यह सुनकर सबने राहत की सांस ली।

शीलावती ने उस समय अपने पतिदेव से निवेदन किया— स्वामी, आपकी जीवन रक्षा की बात सर्वोपरि है। मेरी मंत्र शक्ति उसके लिये सदा तत्पर रहेगी। कृपा करके आप मुझे बिना बताये न तो कहीं भी भोजन ग्रहण करें तथा न किसी अपरिचित स्थान पर पधारें। इतनी गम्भीर बात सुनकर भी आनन्दसेन हंस पड़ा और विनोदी स्वर में बोला—शीलावती, मैं तुम्हारा पति हूँ। क्या मैं तुम्हारा अनुचर बनकर रहूँगा ? तुम निश्चिन्त रहो, मुझे अपने साहस पर पूरा-पूरा भरोसा है। मंत्र विफल हो सकता है, साहस नहीं। मेरी जीवन रक्षा की क्या, तुम अपनी जीवन रक्षा की चिन्ता भी मुझ पर ही छोड़ दो। गुरुदेव ने मुझे भी आत्म विकास की कई विद्याएँ सिखाई हैं और उनके बल पर मैं अपने कर्तव्यों का शुभ भावों के साथ पूर्णतया निर्वाह करने में सक्षम हूँ। तब शीलावती अपने पति के समक्ष नतमस्तक हो गई।

इस प्रकार आनन्दपुर के राज परिवार में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। शीलावती ने अपने सदगुणमय व्यवहार से न सिर्फ पति के मन को ही जीत लिया, बल्कि चम्पकमाला भी पूरी तरह से अपनी भाभी पर रीझ गई। यही नहीं, सारे नगर तथा राज्य में भी गुणसम्पन्न राजपरिवार की प्रशंसा होने लगी। आनन्दसेन पहले की तरह ही राज्य व्यवस्था तथा जनहित के कार्यों में डूबा रहता था, लेकिन शीलावती भी उसे कभी उसके कर्तव्यों से विलग नहीं करती थी बल्कि उसे अधिक प्रोत्साहन देती थी। उनका विवाह जनहित में किसी प्रकार से बाधक नहीं बना, फिर भी दोनों अपने वैवाहिक जीवन को अतीव आनन्द के साथ व्यतीत करने लगे।



18

दो बातें एक साथ घटीं। इधर तो सलखू नाइन आनन्दपुर से भागकर चम्पानगरी पहुंच गई तो उधर महाराजा चन्द्रसेन को जब आनन्दसेन की याद बहुत सताने लगी तब वे उससे मिलने चम्पानगरी से आनन्दपुर की तरफ चल पड़े।

सलखू नाइन ने चम्पानगरी पहुंचकर सबसे पहले रानियों से मुलाकात की और उन्हें आनन्दसेन के अजेय साहस का परिचय दिया। वह कहने लगी— मैंने आनन्दसेन की जीवन लीला समाप्त करने के अनेक उपाय किये। उसे सिंह के मुंह में धकेला और भयानक गरुड़ के घोंसले पर भेज दिया लेकिन वह अपने अपूर्व साहस से सकुशल लौट ही नहीं आया बल्कि मेरे द्वारा मांगी गई वस्तुएँ भी ले आया। मैंने अन्तिम उपाय उसके मन में शीलावती से विवाह करने की इच्छा जगा कर किया और सोचा कि अब उसका जीवनान्त होकर ही रहेगा क्योंकि कोई भी वीर अब तक वहां से जीवित नहीं लौटा है। किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब मैंने सुना कि उसने शीलावती को भी जीत कर उसके साथ विवाह कर लिया है। तब तो मैं एक पल के लिये भी वहां नहीं ठहर सकी क्योंकि तब मेरा जीवनान्त निश्चित था। अब मैं वहां से भागकर यहां आ गई हूं और आप सभी से निवेदन करना चाहती हूं कि अब आप ही जो चाहें करें— यह काम किसी भी तरह मेरे वश का नहीं है। यह कहकर सलखू जब अपने घर चली गई तो रानियों ने सोचा कि अब आनन्दसेन को समाप्त करने के लिये उन्हें ही कुछ उपाय करना पड़ेगा। उन्होंने परस्पर राय मिलाई कि अभी महाराजा चन्द्रसेन कहीं बाहर पधारे हैं सो वहां से जब लौट आवें तो उन्हें ही प्रेम दिखाकर आनन्दसेन को चम्पानगरी बुलाने का

आग्रह करेंगी और फिर उसके यहां आने पर कुछ कारगर उपाय काम में लेंगी।

उधर जब महाराजा चन्द्रसेन चम्पानगरी से आनन्दपुर पहुंचे तो आनन्दसेन तथा चम्पकमाला से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु उनकी प्रसन्नता तब कई गुनी बढ़ गई जब उन्हें आनन्दसेन के विवाह की बात बालूम हुई और वे गुणसम्पन्ना सुन्दरी शीलावती से मिले। शीलावती ने महाराजा चन्द्रसेन को देखा तो उसने उन्हें झुक कर नमस्कार किया। इस पर चन्द्रसेन ने भी उसे खुले दिल से आशीर्वाद दिया और उसके सुखद व दीर्घ जीवन की कामना की।

महारानी शीलावती बड़ी विचक्षण थी। उसने पहली दृष्टि में ही अनुमान लगा लिया कि ये महानुभाव जिन्हें चम्पानगरी का महाराजा बताया जा रहा है, निश्चित रूप से आनन्दसेन के पिता श्री हैं। यह निष्कर्ष उसने दोनों की आकृतियों तथा गुणों का मन ही मन सूक्ष्म मिलान करके निकाला था। इस विचार से उसने महाराजा चन्द्रसेन की बहुत ही भक्तिभाव से सेवा की। शीलावती के ऐसे सद्व्यवहार ने चन्द्रसेन के मन में आनन्दसेन तथा चम्पकमाला से भी ऊंचा स्थान दे दिया। वे मन ही मन आनन्दसेन को सौभाग्यशाली समझने लगे जो ऐसी सुरूपा गुणसम्पन्ना पत्नि प्राप्त करके भी अपने जनहित सम्बन्धी कर्तव्यों पर पूरी निष्ठा एवं सजगता से डटा हुआ है।

महाराजा चन्द्रसेन को आनन्दपुर में रहते हुए ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वे अपने ही परिवार में रह रहे हों और उनके स्नेह से इस तरह भीजे हुए हो कि उनसे विलग होना ही नहीं चाहते। क्योंकि उस समय तक ही उनकी जानकारी तो यही थी कि आनन्दसेन उनके पड़ोसी राज्य का युवा शासक है और उनके प्रति उनका ही नहीं, उसकी बहिन तथा अब उसकी पत्नी का पूर्ण आदर भाव है। उनका वश चलता तो वे सदा के लिए आनन्दपुर रह जाते किन्तु बहुत दिन रह जाने के बाद जब चम्पानगरी के राज्य कर्तव्यों का उन्हें स्मरण हो आता तो उन्हें वहां से प्रस्थान करने का निश्चय करना ही पड़ता। इस बार तो आनन्दपुर छोड़ना उनके हृदय के लिए बड़ा बठिन हो रहा था फिर भी एक दिन वे भारी मन से वहां से प्रस्थान कर ही गये।

किन्तु चम्पानगरी पहुंच कर महाराजा चन्द्रसेन के मन को उस समय बड़ा सुख मिला जब ग्यारह रानियों ने मिल कर महाराजा से यह आग्रह भरा अनुरोध किया कि वे आनन्दपुर के महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार चम्पानगरी में बुलावें और हमें उनके दर्शन पाने का अवसर प्रदान करें। जब आप हमेशा उनके व्यवहार की सराहना करते रहते हैं तो हम भी उनके स्नेह से आभारी होना चाहती हैं। अब तक आप ही वहां पधारते रहे हैं, किन्तु जब उन्हें भी यहां आमंत्रित करेंगे तो यह स्नेह की धारा अधिक प्रगाढ़ बन सकेगी। उन रानियों के इस अनुरोध से चन्द्रसेन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उत्तर दिया— मैं स्वयं महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार अपनी राजधानी में आमंत्रित करने की इच्छा कर रहा था किन्तु अब तुम्हारे अनुरोध से तो शीघ्र ही इस इच्छा की मैं पूर्ति करना चाहूंगा। किन्तु एक बात जरूर कह देना चाहता हूं कि आनन्दसेन का सम्मान यहां पर सुरक्षित रहना चाहिए। कोई ऐसी प्रिय घटना न घटने पाए कि जिससे मेरी प्रतिष्ठा को धक्का लगे। इस पर तो उन रानियों ने मन में कपट और बाहर हर्ष दिखा कर एक स्वर से कह दिया कि वे निश्चिन्त रहें— उनकी ओर से महाराजा आनन्दसेन का भव्य स्वागत किया जायेगा। तब महाराजा ने आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार अपने यहां आमन्त्रित करेंगे।

राज—काज से समय निकाल कर महाराजा चन्द्रसेन यथासाध्य शीघ्र इस हेतु आनन्दपुर पहुंचे। उन्होंने आनन्दसेन को सपरिवार चम्पानगरी आने का निमन्त्रण दिया और आग्रह किया कि सबकी इच्छा को मान देते हुए वह अपने भ्रमण का कार्यक्रम बनावें। निमन्त्रण स्वीकार करने से पहले आनन्दसेन ने इस कार्यक्रम के लिए चम्पकमाला और शीलावती से भी विचार विमर्श किया जिन्होंने गम्भीर दृष्टि से सोच कर उस समय चम्पानगरी नहीं जाने की सलाह दी क्योंकि उनका अनुमान था कि वहां किन्हीं दुष्ट व्यक्तियों द्वारा उसके प्राणों के विरुद्ध कोई षड़यन्त्र हो सकता है। किन्तु आनन्दसेन का उत्तर यह था कि मैंने महाराजा को वचन दे दिया है। अतः जाना अनिवार्य है। इस पर शीलावती ने सुझाव दिया कि फिर आनन्दसेन अकेले ही जाना स्वीकार करें, सबको साथ न ले जायें क्योंकि यही कार्यक्रम हितकारी रहेगा। इस पर आनन्दसेन ने अपने चलने की बात कह कर महाराजा चन्द्रसेन से निवेदन किया कि चम्पकमाला एवं

शीलावती स्वयं ही आपके दर्शन करने के लिए यहीं आ रही हैं। तभी चम्पकमाला और शीलावती ने कक्ष में प्रवेश किया तथा महाराजा को प्रणाम कर उनका सत्कार किया। चन्द्रसेन ने भी आशीर्वाद देकर उनकी कुशल क्षेम पूछी। फिर चम्पानगरी के निमन्त्रण की बात चली तो दोनों ने नम्रतापूर्वक कहा— आप तो हमारे लिये पिता तुल्य हैं। आपके वहां चल कर हमें बहुत ही प्रसन्नता होती किन्तु इस समय हम यहां चलने की स्थिति में नहीं हैं अतः आप हमें क्षमा करें। महाराजा ने उनकी असमर्थता पर खेद व्यक्त किया।

महाराजा चन्द्रसेन के साथ तब केवल आनन्दसेन के ही जाने का कार्यक्रम बना। प्रस्थान से पूर्व शीलावती ने आनन्दसेन से कहा कि आप यहां से जब भी रवाना हों मुझे निश्चित समय बता दीजियेगा तथा चम्पानगरी पहुंचने के अनुमानित समय का भी संकेत दे दीजियेगा। आप कब और कैसा भोजन करेंगे इसकी जानकारी भी मुझे चाहियेगी और आप वहां एक दिन से अधिक न रुकें। आनन्दसेन ने यह बात सुनी, लेकिन उस पर खास ध्यान नहीं दिया। जब आनन्दपुरी से रवाना हुआ तो वह समय भी शीलावती को सूचित करवाना भूल गया। उसने तो गरुड़ और शेर बच्चे को साथ में लिया तथा महाराजा चन्द्रसेन के साथ हो लिया।

चम्पानगरी पहुंचने पर वहां के नागरिकों ने महाराजा आनन्दसेन का हार्दिक स्वागत किया। सारे नगर में आनन्द छा गया और स्थान-स्थान पर उत्सव आयोजित किये जाने लगे। इसी बीच आनन्दसेन को याद आया कि उसने शीलावती के निर्देश का कोई पालन नहीं किया है। इससे उसे चिन्ता हो आई कि उसके निर्देशों का कुछ न कुछ महत्त्व अवश्य रहा होगा। तब उसने द्रुतगामी गरुड़ पक्षी के गले में सन्देश लगाकर उसे शीलावती के पास भेजा। वह तेजी से उड़ता हुआ कुछ ही समय में शीलावती के पास पहुंच गया। शीलावती ने उस संदेश को सावधानी से पढ़ा और अपनी सूचना लिखकर गरुड़ पक्षी को वापिस चम्पानगरी रवाना कर दिया।

आनन्दसेन के स्वागत में भोज की तैयारी होने लगी। दोनों महाराजा अपने संगी साथियों के साथ भोजन करने के लिए बैठे। भोजन रनिवास में उन ग्यारह रानियों की देख-रेख में बनाया गया था तथा वहीं

से भोजन प्रत्येक व्यक्ति के लिये थालों में परोस कर बाहर भेजा जाने लगा। प्रत्येक थाल में चार-चार लड्डू रखे हुए थे। लड्डू दीखने में भी इतने आकर्षक थे कि सबकी नजरें उन लड्डूओं पर टिक गई थीं।

जैसे ही सब भोजन करने को तत्पर हुए ठीक उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी। आकाश मार्ग से बहुत ही तेज गति से उड़ता हुआ एक पक्षी (चील) वहां आया और सबके देखते-देखते वह आनन्दसेन के थाल के चारों लड्डू उठा कर वापिस उड़ गया। देचाने वाले दांतों तले अंगुली दबा कर देखते रहे कि कैसे यह पक्षी राजमहल के भीतरी कक्ष में आ पहुंचा और किस कारण केवल आनन्दसेन के थाल के ही लड्डू उठा कर तुरन्त वापिस उड़ गया ? सामान्य दर्शन तो इस घटना पर आश्चर्य ही करते रहे, किन्तु ग्यारह रानियों ने घोर निराशा से अपने सिर पीट लिये। क्योंकि आनन्दसेन की जीवन लीला समाप्त करने का जो घातक उपाय उन्होंने आजमाया था, वह यों निष्फल हो गया।

आनन्दसेन भी इस घटना को नहीं समझ पाया। शीलावती ने भलामण दी थीं कि वह चम्पानगरी में एक दिन से अधिक नहीं रुके, अतः वह लौटने के लिये तैयार हो गया। तब महाराजा चन्द्रसेन बहुत ही भाव विह्वल हो गये और वे भी आनन्दसेन को पहुँचाने के बहाने पुनः साथ-साथ आनन्दपुर पहुँच गये। वहां पहुँचने पर चम्पकमाला तथा शीलावती ने दोनों का स्वागत किया एवं चम्पानगरी का वृत्तान्त पूछा। आनन्दसेन ने अपनी यात्रा का विवरण सुनाया किन्तु पक्षी द्वारा उसके थाल के चारों मोदक ले जाने वाले घटना के रहस्य से उसने अपनी नाजानकारी जाहिर की। यही बात महाराजा चन्द्रसेन ने भी बताई। किन्तु जब वे ही चारों लड्डू शीलावती लेकर उनके सामने आईं तो उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वे देखते ही रह गये कि वे ही लड्डू यहां कैसे पहुँच गये और इनमें क्या रहस्य छिपा हुआ है ? वे शीलावती से उन लड्डूओं का रहस्य जानने के लिये आतुर हो उठे।

महाराजा चन्द्रसेन एवं आनन्दसेन की आतुरता पर शीलावती को मन ही मन हंसी भी आ रही थी। और चन्द्रसेन की दशा पर दुःख भी हो रहा था। पर उसने अपने मन को दृढ़ करके महाराज चन्द्रसेन से निवेदन किया। अभी आप विश्राम करें। समय आने पर सारा रहस्य आपको ज्ञात हो सकेगा।

महाराजा चन्द्रसेन विश्राम करने विशेष अतिथि गृह जो कि राजमहल के अन्तर्गत ही था, चले जाते हैं। आत्मीय भावना एवं शिष्टता के तौर पर आनन्दसेन भी उनको पहुँचाने वहाँ तक साथ-साथ जाता है। वहाँ उन्हें पहुँचाकर शीघ्र शीलावती के पास पहुँचा। और कहने लगा तुम भी कैसी औरत हो कि हमारे को नये-नये आश्चर्य में डालती रहती हो। तुम लड्डूओं का रहस्य बताने के लिये महाराजा चन्द्रसेन को टाल सकती हो। पर मुझको नहीं— मैं तो तुम्हारे से वह रहस्य आज जानकर ही रहूँगा।

शीलावती ने स्तिमित मुस्कान के साथ कहा—स्वामी ! आपसे मैं कोई बात छिपाना नहीं चाहती। मैं आपको पूरा रहस्य बताऊँगी पर अभी नहीं क्योंकि अभी समय का परिपक्व नहीं हुआ है। अभी तो आप इतना ही पर्याप्त समझें कि जिन बाबा ब्रह्मानन्द के आप शिष्य हैं मैं भी उन्हीं की शिष्या हूँ। यह सब उन्हीं की कृपा का सुफल है।

शीलावती ने आगे कहा—पतिदेव, मेरी एक अभिलाषा है—इतना कहकर शीलावती चुप हो, आनन्दसेन की तरफ देखने लगी। आनन्दसेन ने शीलावती को चुप देखकर कहा— प्रिय ! तुम चुप क्यों रह गयी ? क्या तुझे मुझ पर विश्वास नहीं हो रहा है। जो तुम अपनी अभिलाषा व्यक्त करने में संकोच कर रही हो। तुम निश्चिन्त होकर अपनी भावना व्यक्त करो। मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने का हर सम्भव प्रयास करूँगा।

आनन्दसेन से इस प्रकार उत्तर पाकर शीलावती पुलकित हो उठी। वह कहने लगी—नाथ, मैं धन्या हूँ, कृत्य पुण्या हूँ जो आपको पति रूप में प्राप्त कर सकी हूँ। आप पर मुझे किंचित् मात्र भी अविश्वास नहीं है। पर मैंने सोचा कहीं आप मेरी इच्छा को विनोद की संज्ञा न दे दें। इसलिए मैं अपनी अभिलाषा व्यक्त करते-करते रुक गयी। पर जब आपने मुझे आश्वस्त किया है, तो मैं निर्भयता पूर्वक आपसे निवेदन करती हूँ कि चम्पानगरी की समस्त प्रजा आबाल गोपाल सहित महाराज चन्द्रसेन को एक भोज दिया जाय। यही मेरी चाहना है।

शीलावती की अचिन्त्य मांग को सुनकर आनन्दसेन आवाक् हो उसको निहारने लगा। सहसा उसके मुँह से कोई शब्द ही नहीं निकले। तब शीलावती ने ही पुनः बोलना प्रारम्भ किया और कहा—नाथ ! आप विचार मग्न क्यों हो गये। क्या मेरी यह मांग आपको उचित नहीं लगी ?

आनन्दसेन ने मौन भंग करते हुए—प्रिय ! रजाई जितनी लम्बी हो उतने ही पैर पसारने चाहिये। तुम्हारी भावना का समादर करता हूँ। पर सम्पूर्ण चम्पानगरी के नागरिकों सहित महाराजा चन्द्रसेन को भोज देना कोई मामूली बात नहीं है। उसके लिये पर्याप्त समय एवं साधन सामग्री की आवश्यकता होगी। आनन्दपुर अभी उतना सुविशाल राज्य कहाँ है, जो वह इस प्रकार का आयोजन कर सके ? शीलावती ने व्यवस्था सम्बन्धी सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए कहा—व्यवस्था सम्बन्धी आप किसी प्रकार का विचार नहीं करें। वह सारी जवाबदारी मैं अपने ऊपर लेती हूँ। साथ ही आपको यह विश्वास भी दिलाती हूँ कि आपके यश में कहीं भी न्यूनता नहीं आने दूंगी। आप से तो मेरा मात्र इतना ही निवेदन है कि आप इसके लिये महाराज चन्द्रसेन को तैयार कर दीजिये। आप उनसे आग्रह पूर्व कहेंगे तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे आपके आग्रह को कभी नहीं टालेंगे।

आनन्दसेन शीलावती के मुंह से निकलने वाले एक—एक शब्द की गहराई को मापता हुआ सुन रहा था। साथ ही उसने शीलावती की आंखों में झाँककर देखा तो वहाँ पूर्ण आत्म विश्वास की झलक दृष्टिगत हुई अतः शीलावती की भावनानुसार महाराज चन्द्रसेन को भोज देने में आनन्दसेन भी सहमत हो गया।

आनन्दसेन वहाँ से उठकर जाने को तैयार हुआ ही था कि इतने में चम्पकमाला भी वहाँ पहुँच गयी। वह कहने लगी क्या बात है भैया ? क्या मेरा आना उचित नहीं रहा, जो आप जाने लगे। आनन्दसेन ने चुटकी लेते हुए कहा कि जाऊँ नहीं तो क्या करूँ। नीतिकारों ने तिरिया हठ को जबरदस्त बताया है। पहले तुम एक थी। पर अब शीलावती के आ जाने से दो हो गयी हो। पहले भी तुम्हारी हठ के कारण मुझे इससे विवाह करना पड़ा और अब.....।

इतना कहकर आनन्दसेन तीक्ष्ण दृष्टि से शीलावती की ओर देखने लगा तब शीलावती ने अवशेष वाक्य पूर्ण करते हुए कहा अब मेरे आग्रह से इनको महाराजा को भोज देना पड़ेगा।

चम्पकमाला कब चुप रहने वाली थी ? वह भी चहक कर बोली, नहीं ! मैं इससे सहमत नहीं हूँ। बार—बार चन्द्रसेन महाराज को ही केवल

भोज देना कहां तक उचित है ? यदि महाराज चन्द्रसेन को भोज ही देना हो तो उनको राज परिवार सहित आमंत्रित कीजिये। अन्यथा भोज देने में कोई मजा नहीं आयेगा।

आनन्दसेन जो अब तक ननद-भाभी की बात सुन रहा था बोला-अरे केवल महाराज चन्द्रसेन को ही भोज देने की बात होती अथवा उनके परिवार तक की मांग होती, तब तो कोई बात ही नहीं थी पर तुम्हारी भाभी की मांग तो यह है कि चम्पानगरी के समस्त नागरिक आबाल गोपाल सहित महाराज चन्द्रसेन को भोज दिया जाय ? आनन्दसेन की बात पूर्ण होते ही चम्पकमाला ने जोर देते हुए कहा-भाभी ने यह मांग आपके सामने पहली बार की है। आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि भाभी की मांग को आप तत्काल स्वीकार करें। मैं भी भाभी को मांग से सहमत हूँ।

स्वीकार करने के अलावा और चारा ही क्या है ? कहते हुए आनन्दसेन ने कहा इसलिए ही तो मैं कह रहा था कि अब तुम दो हो गयी हो। इतना कहकर महाराज आनन्दसेन विशेष अतिथि गृह की ओर प्रस्थान कर गये। वहाँ चन्द्रसेन उनकी बड़ी बेताबी से इन्तजार कर रहा था।

आनन्दसेन ने विशेष अतिथि गृह में प्रवेश करते ही महाराज के कुशल मंगल की पृच्छा की ओर राज्य व्यवस्था एवं राजनीति सम्बन्धी बातों में मशगूल हो गये।

दूसरे दिन महाराज चन्द्रसेन आनन्दसेन आदि भोजन कर रहे थे। बीच-बीच में बातचीत का दौर भी चल रहा था। बात ही बात में आनन्दसेन ने महाराज चन्द्रसेन को संबोधन कर कहा-राजन् ! शीलावती एवं चम्पकमाला की हार्दिक अभिलाषा है कि वे आपको चम्पानगरी के समस्त नागरिकों आबाल गोपाल सहित स्नेह भोज दे। उसमें आपकी स्वीकृति चाहती है। अतः आप उनको इसकी स्वीकृति देकर अनुगृहीत करें। महाराज चन्द्रसेन ने गम्भीर होते हुए कहना प्रारम्भ किया, निश्चय ही शीलावती एवं चम्पकमाला की भावना स्तुत्य है। पर आप स्वयं अनुभव करें। यह कार्य अव्यवहार्य एवं असम्भव सा है। क्योंकि राज्य को एक दम सूना करना सुरक्षा की दृष्टि से कैसे उपयुक्त रह सकता है तथा राज्य के सारे नागरिक पहुँच भी कैसे सकते हैं ? मुझे भोज देने की इनकी भावना तो समय-समय पर फलित होती ही रहती है। मैं एक बार नहीं कई बार

यहाँ आ चुका हूँ। अतः चम्पानगरी के समस्त नागरिकों सहित भोज का आमंत्रण स्वीकार करना गम्य नहीं लगता।

“नगर की सुरक्षा की आप तनिक भी चिन्ता न करें उसका उत्तरदायित्व मैं लेता हूँ।” आनन्दसेन ने जैसे यह कहा शीलावती ने कहा, “चम्पानगरी के व्यक्तियों को यहाँ तक लाने की सुविधा आप मेरे पर छोड़ दें।”

महाराज विचार मग्न हो गये। अब आनन्दसेन ने कहा—आप किसी तरह का विचार न करें। आपके यश गौरव में कहीं भी आंच नहीं आवेगी। चम्पानगरी के एक—एक बच्चे की सुविधा का पूरा ध्यान रखा जायेगा।

महाराज ने कहा, यह कार्य बड़ा दुरूह है। अतः इस विषय में मैं अपने मंत्रियों से परामर्श करके ही आपको कुछ जवाब दे सकता हूँ। यद्यपि आप मेरे परम हितैषी हैं। फिर भी राज्य मर्यादानुसार इस विषय में मुझे मंत्रियों से परामर्श करना योग्य रहता है।

“आपका कथन न्याय संगत है। अतः हम आपको यह आग्रह नहीं करेंगे कि आप यहीं स्वीकृति दे दें। पर हाँ आप जब भी यहाँ से प्रस्थान करेंगे। तब हमारा प्रतिनिधि आपके साथ रहेगा। वहाँ पहुँचकर उस प्रतिनिधि के माध्यम से आप स्वीकृति एवं अनुकूल तिथि का संकेत भेजने का अवश्य ही अनुग्रह करें। यह हमारा बार—बार आग्रह है। क्यों सही है न शीलावती”, कहकर आनन्दसेन चुप हुआ। तो शीलावती ने कहना प्रारम्भ किया, “आपका कथन अक्षरशः सत्य है हम तो इन्हें पूज्य पिताजी के रूप में मानते हैं। इसलिए हमारी छोटी सी मांग उनको स्वीकार करनी ही है। मैं तो इनकी तरफ से आज ही स्वीकृति मान रही हूँ। राजनीति के अनुसार औपचारिकता की पूर्ति भले बाद में हो।”

शीलावती के इस कथन से महाराज चन्द्रसेन कहने लगे, यह तो पुत्र वधू से भी अधिक अधिकार जमाने लग गयी है।

चम्पकमाला जो अब तक चुप थी महाराज के चुप होने पर कहने लगी। आपने हमको मुंह जो लगा रखा है। इस पर सभी के चेहरे पर मधुर मुस्कान बिखर गयी। भोजनोपरान्त विश्राम करके महाराज चन्द्रसेन चम्पानगरी जाने की तैयारी करने लगे। महीप आनन्दसेन ने अपना विशेष प्रतिनिधि भी उनके साथ कर दिया।

भूधर चन्द्रसेन ने चम्पानगरी पहुँचकर विशिष्ट व्यक्तियों की एक गुप्त मीटिंग बुलायी। उसमें आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण पर विचार विमर्श चलने लगा।

एक सभासद ने शंकित हृदय से अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—राजन् ! राजनीति के दायरे में यदि चिंतन करें तो पड़ौसी राजा आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण के सन्दर्भ में कई प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं। जैसे कि—महाराज आनन्दसेन द्वारा भोज देने का उद्देश्य क्या है ? चम्पा के समस्त नागरिकों को भोजन क्यों देना चाह रहे हैं। क्या इसके पीछे कहीं कूटनीति तो काम नहीं कर रही है। चम्पानगरी के नागरिक भोजन के निमित्त आनन्दपुर पहुँचे तो आनन्दपुर के राजा को चम्पा पर अधिकार जमाने का अच्छा मौका मिल जाय ? आदि

सभासद द्वारा उपस्थित प्रश्नों पर सभी गहराई से चिंतन करने लगे। कई उनका समर्थन भी करने लगे। तो कई यों भी कहने लगे—धराधीश ! महाराजा आनन्दसेन कहीं आपकी हंसी करवाना तो नहीं चाहते ? क्योंकि आनन्दपुर अभी नया—नया बसा है। उसमें इतने साधन नहीं हैं कि वे चम्पा के समस्त नागरिकों के भोजन की व्यवस्था कर सकें। अतः इसमें गम्भीर चिंतन की आवश्यकता है। महीधर चन्द्रसेन सबकी बात को बड़े ध्यान से सुन रहे थे एवं प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर आने वाले उतार चढ़ाव का निरीक्षण भी कर रहे थे। इसके साथ—साथ वे आनन्दसेन की भावना एवं राजनीति का तुलनात्मक समीक्षण भी कर रहे थे।

अवनिपति ने प्रधान आमात्य की ओर निहारा तो पाया वे गम्भीरता के साथ अपने आसन पर जमे हुए हैं। महाराज ने उनको सम्बोधन कर कहा—महामात्य आप चुपचाप क्यों बैठे हैं। आप भी अपने विचारों से सभा को लाभान्वित कीजिये।

महामंत्री ने कर युगल को शिर पर लगाते हुए विनम्र शब्दों में निवेदन करना प्रारम्भ किया। नरनाथ ! अनेक महानुभाव अपने विशिष्ट भावों को सभा में प्रस्तुत कर ही रहे हैं। मैं भी उन भावों को श्रवण कर ही रहा था। श्रवण के साथ—साथ चिन्तन भी तीव्र गति से चल रहा था। एक तरफ इन सभी महानुभावों की भावोक्ति से इनका राष्ट्र प्रेम राष्ट्र भक्ति पर गौरव हो रहा था तो दूसरी ओर महाराज आनन्दसेन द्वारा दिये गये

आमन्त्रण पर चिन्तन चल रहा था। यद्यपि राजनीति के धरातल पर चिन्तन किया जाय तो उनके द्वारा दिया गया आमन्त्रण कई शंकायें पैदा कर देता है। तथापि व्यक्तिगत जीवन के आधार पर जब मैं चिन्तन करता हूँ तो मुझे मुछ ओर ही सूझता है।

महाराज ! आप स्वयं एक बार नहीं वरन् कई बार उनके मेहमान बन चुके हैं। उनकी पुण्य प्रभा से भी आप भलीभांति परिचित हैं। वे विस्तारवादी नीति के राजा नहीं हैं। बल्कि जहाँ तक उनके विषय में सुना समझा है वे बड़े मिलनसार व्यक्ति हैं। एवं प्रभु महावीर का उद्घोष जीओ और जीने दो को जीवन में लेकर चलते हैं। ऐसे व्यक्ति एकाएक आक्रामक नहीं हो सकते। हाँ, आक्रांता का प्रतिकार कर सकते हैं। किन्तु अपनी तरफ से हिंसक प्रवृत्ति को बढ़ावा ऐसा दें नहीं लगता।

यदि उनको चम्पानगरी के प्रति ही लगाव होता तो वे यदि चम्पा को हड़पना ही चाहते तो वे कभी के इसमें सफलता प्राप्त कर सकते थे। आपको याद होगा। जब आप शिकारी की पोशाक में आनन्दपुर के आरक्षक दल द्वारा पकड़े गये थे तो उस समय वे आपको बन्दी बना सकते थे और चम्पा को भी हथिया सकते थे। लेकिन उन्होंने वैसा नहीं किया। बल्कि आपके प्रति बड़े उदार दिल से पेश आये थे। इतना ही नहीं वे आपको अपना पूज्य मानकर चल रहे थे। अतः मेरा जहाँ तक निजी विचार है। मैं यह मानता हूँ कि उनके द्वारा दिया गया निमन्त्रण अवश्य ही कुछ शुभ सन्देश के रूप में साबित हो सकता है।

आनन्दपुर में इतने व्यक्तियों की व्यवस्था के विषय में जो आशंका की जा रही है उसे भी वहाँ के सीमित साधनों के आधार पर नकारा नहीं जा सकता है। पर दूसरी तरफ जब उनके द्वारा घटित अनहोनी घटनाओं को सुनते हैं तो वह आशंका भी निर्मूल हो जाती है। अतः इस दृष्टि से उनके आमन्त्रण को स्वीकारने में मुझे कोई अनौचित्य प्रतीत नहीं होता।

इतना कहकर महामात्य अपने आसनारूढ़ हो गये। सबकी निगाह अब महाराज की ओर लगी हुई थी। महीप ने गम्भीर स्वर में अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। सभासदों, मैं आप सभी महानुभावों के भावों को श्रवण कर रहा था। आप सबकी निष्ठा देश के लिये ही हितकर है। प्रत्येक विषय में तुलनात्मक दृष्टिकोण से चिन्तन करना चाहिये। कई प्रसंग ऐसे होते हैं।

जिन पर केवल राजनीति से चिन्तन करना कभी-कभी नुकसानदेह साबित हो जाता है। इसलिए ऐसे प्रसंगों पर सर्वांगीण चिन्तन अपेक्षित रहता है।

अभी आप सब ने महामात्य के विचारों को भी सुना है। उन्होंने अपने चिन्तन में राजनीति एवं व्यावहारिक दृष्टि का समन्वय किया है। उन्होंने महाराजा आनन्दसेन के विषय में जो कुछ भी कहा है वह अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं, यथार्थ है। मैंने स्वयं उनको निकट से परखा है। यद्यपि बाह्य बन्धन से उन्होंने मेरे को बन्दी नहीं बनवाया तथापि मैं यह मानता हूँ कि भावात्मक दृष्टि से मैं उनके बन्धन में हूँ। उनमें सरलता, सौम्यता, सद्-व्यवहारिकता आदि ऐसे गुण हैं कि उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। मुझे आज तक उनमें विस्तारवादी नीति की 'बू' नजर नहीं आयी। अतः उनके द्वारा दिया गया सस्नेह आमन्त्रण टुकराना उचित प्रतीत नहीं होता।

समागत आनन्दपुर के प्रतिनिधि को आमन्त्रण की स्वीकृति के साथ अनुकूल तिथि का संकेत भी दे दिया गया। प्रतिनिधि ने जय विजय करते हुए महाराजा चन्द्रसेन का आभार व्यक्त किया।

जय हो, विजय हो, महाराजा आनन्दसेन की जय हो, विजय हो की ध्वनि के साथ चम्पानगरी से लौटा प्रतिनिधि राजसभा में प्रवेश करता है। महाराजा आनन्दसेन उसके प्रफुल्लित वंदन को देख कर ही समझ गये कि वह कार्य में सफलता प्राप्त करके आया है। क्योंकि वे जानते थे। व्यक्ति जब साधारण कार्य में भी सफलता पा लेता है तो वह हर्षित हो जाता है। वही यदि दुरुह कार्य में सफलता प्राप्त कर ले तो उसकी खुशी का कहना ही क्या ?

प्रतिनिधि ने महाराजा का अभिवादन कर चन्द्रसेन राजा का संदेश सुनाया। यह संदेश सुनकर सभा स्थित सभासद अवाक् रह गये। क्योंकि उन्हें इस आमन्त्रण की जानकारी नहीं थी। तब महीप आनन्दसेन ने सभासदों को कहा कि हमने ही यहाँ से महाराजा को आमन्त्रित किया था। पर महाराजा यहाँ हँ या ना कहने की स्थिति में नहीं थे, अतः अपना प्रतिनिधि उनके साथ भेजा गया था ताकि वह वहाँ का संदेश शीघ्र यहाँ ला सके।

सभासदों में से एक ने कहा, कृपानाथ ! संदेश में चम्पानगरी के नरेश ने जो तिथि का संकेत दिया है वह तो बहुत नजदीक है। इतने कम समय में इतने व्यक्तियों के भोजन की व्यवस्था कैसे बन सकेगी ?

आपका कथन उचित है पर इस विषयक व्यवस्था का सारा भार महारानी शीलावती ने अपने ऊपर ले रखा है। अतः अपने कोई विशेष चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं रही। कहते हुए आनन्दसेन ने उस बात को वहीं समाप्त कर दी। शीलावती ने व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है। यह जानकर सभी सभासद आश्चस्त हुए क्योंकि वे शीलावती की शक्ति से भली-भांति परिचित थे।

महाराजा आपने जो आज्ञा दी तदनुसार मैं आनन्दपुर की हल-चल पर निगाह रखकर आया हूँ। आपको दिये जाने वाले भोज की तिथि अत्यन्त समीप होते हुए भी वहां तद्विषयक अभी तक कोई तैयारियाँ दृष्टिगत नहीं हो पाई है।

महाराजा चन्द्रसेन द्वारा भेजे गये पत्र जासूस विभाग के व्यक्ति ने आकर उपर्युक्त रिपोर्ट दी। उसकी रिपोर्ट सुनकर महीधीश ने अपने प्रधान आमात्य को तत्काल बुलाया और आनन्दपुर की रिपोर्ट से अवगत कराया। वे दोनों परस्पर में चिन्तन कर ही रहे थे कि द्वार रक्षक ने आकर सूचना दी कि आनन्दपुर से एक दूत आया है। वह नरनाथ की सेवा में उपस्थित होना चाहता है।

उसे सादर यहीं लिवा लाओ नरेश ने आदेश दिया। दूत ने नरेश का अभिवादन कर आनन्दपुर नरेश का सन्देश सुनाया कि आपका वे वेताबी से इन्तजार कर रहे हैं। भोज का समय भी सन्निकट आ रहा है। अतः आप अब यहाँ से शीघ्र ही प्रस्थान की तैयारियाँ करावें।

महाराजा चन्द्रसेन दूत के आगमन को सुन कर विचार कर रहे थे कि शायद भोज स्थगित करने की सूचना लाया होगा। पर दूत द्वारा शीघ्र प्रस्थान की बात सुनकर वे कुछ विचार में पड़ गये। उन्होंने दूत से पूछा भाई तुम हमें शीघ्र प्रस्थान के लिये संदेश दे रहे हो पर कुछ विश्वस्त सूत्रों से ऐसा भी संदेश मिला है कि आनन्दपुर में भोज की कोई तैयारी नहीं है।

दूत ने कहा, धराधीश आपका फरमाना काफी अंश में यथार्थ है। पर इस विषय में आपको किसी तरह की शंका करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हमारे स्वामी विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न हैं। उन्हें व्यवस्था करने में ज्यादा समय की आवश्यकता नहीं है। आप जब भी पधारेंगे आपको पूर्णतया व्यवस्था मिलेगी।

सुनो ! सुनो ! सुनो ! चम्पानगरी के निवासियों, महाराजा चन्द्रसेन के आदेश को सुनो ! नरेश का आदेश है कि नगर के सारे निवासी अपने बाल बच्चों सहित तैयार हो जायें। कल सवेरे महाराजा चन्द्रसेन के साथ उन्हें आनन्दपुर नरेश के यहां भोज में सम्मिलित होना है। छोटा बच्चा भी घर में नहीं रहना चाहिये। चल अचल सम्पत्ति का पूरा बन्दो-बस्त रहेगा। अतः नरेश की आज्ञा सबको ध्यान में रखनी है।.....बड़े ठाट बाट के साथ चतुर्गिणी सेना परिवृत एवं नगर निवासियों वेस्टित महीधर चन्द्रसेन चम्पानगरी से प्रस्थान करते ही महाराजा को शुभ शकुन होने लगे। महाराजा एवं प्रधान आमात्य शुभ शकुनों को देख प्रमुदित होने लगे।

चम्पानगरी के नरेश ने चम्पा से प्रस्थान कर दिया है, यह जानकर आनन्दसेन को बड़ी चिंता हुई। वह तत्काल शीलावती के पास पहुँचा और शीलावती से कहने लगा, तुम अब भी निश्चिंत बैठी हो। उसने कहा महाराजा-आप कहना क्या चाह रहे हैं ? मैं समझी नहीं। आनन्दसेन कुछ खीज सा गया और कहने लगा-अरे तुम समझी नहीं। तुम्हें याद है या नहीं कि तुमने महाराजा चन्द्रसेन को चम्पा के समग्र निवासियों के साथ भोज के लिये आमन्त्रित किया है ? तुमको यह भी ज्ञात होना चाहिये कि वे वहाँ से प्रस्थान भी कर चुके हैं। उनके आवास-निवास एवं भोजन व्यवस्था का उत्तरदायित्व तुमने अपने ऊपर लिया था। यह तुमको स्मृति में होगा ही पर अभी तक तुमने कोई भी व्यवस्था नहीं की। यह चिन्ता का विषय नहीं तो और क्या है ?

शीलावती ने हंस कर कहा-ओ हो यह बात है क्या ? मेरे कारण आपको इतना मानसिक कष्ट हुआ इसके लिये क्षमा चाहती हूँ। अब आप निश्चिंत हो जाइये। कल सवेरे सारी व्यवस्था हो जायेगी। दूसरे दिन की सुबह वस्तुतः सबके लिये आश्चर्यकारी था। क्योंकि कल तक जहां खण्डहर थे वहां आज अट्टालिकाएं खड़ी हैं। सारे आनन्दपुर में मधुर पकवानों की महक फैल रही है। रातों-रात यह कार्य किसने किया और कैसे किया ? यह सबके जिज्ञासा का कारण बना हुआ था।

ठीक समय पर चम्पा नरेश निवासियों के साथ आनन्दपुर पहुँच गये। उन्होंने वहां की आवास व्यवस्था देखी तो वे भी आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रह सके।

आनन्दसेन ने आनन्दपुरी की जनता को संदेश प्रसारण करवाया कि आनन्दपुर के सारे निवासियों का भोजन आज चम्पा के निवासियों के साथ होगा। अतः ठीक समय वे वहाँ पहुँच जाय।

आनन्दपुर की जनता भी ठीक समय भोज मण्डल में पहुँच गयी। शीलावती आदि भी महाराजा चन्द्रसेन के स्वागतार्थ उपस्थित हुईं। उसने जब महाराजा के साथ बारह महारानियों को देखा तो उसने निवेदन किया कि पूज्यवर, क्या चम्पा के सारे निवासी आ चुके हैं। तब चन्द्रसेन ने कहा, हाँ। शीलावती तुम्हारी भावनानुसार चम्पा के सारे निवासी आ गये। आदरणीय आपके साथ मैं ग्यारह ही महारानियों के दर्शन कर पा रही हूँ, पर मैंने सुन रखा है कि आपके महारानियां बारह हैं। तो एक महारानी के दर्शनों से मुझे वंचित क्यों रहना पड़ रहा है। महाराज ने दुःख भरी निःश्वास छोड़ते हुए कहा, शीलावती, तुम उसका नाम भी मत लो। मैं उस कलंकिनी का मुँह देखना तो दूर, नाम भी सुनना नहीं चाहता। कहते-कहते महाराजा के आंखों से दो मोती लुढ़क पड़े।

पूज्यवर, मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहती थी। पर मैं अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पायी। इसलिये ही कह बैठी। आपको दुःख हो वैसा मैं नहीं करना चाहती। पर क्या आप ऐसा चाहेंगे कि मेरे मन में शल्य बना रहे। यदि एक महारानी जी के मैं दर्शन नहीं कर पायी तो मेरे मन में सदा के लिए खटक रह जायेगी। मैंने चम्पानिवासियों को भी आपके साथ आमन्त्रित किया है। आप उन्हें महारानी की हैसियत से नहीं तो कम से कम चम्पा निवासी की हैसियत से तो बुला ही सकते हैं। आशा है, मेरी मनोव्यथा को आप समझकर उचित आदेश देंगे।

यद्यपि महाराजा चन्द्रसेन विश्वसुन्दरी को बुलाना नहीं चाहते थे, पर शीलावती के तर्कपूर्ण आग्रह को वे टाल नहीं पा रहे थे। फिर भी उन्होंने बात को टालने की दृष्टि से कहा, शीलावती ! तुम्हारी भावना देख कर मैं उसको बुला भी लेता पर अब इतना समय नहीं रहा कि वह चम्पा से यहाँ तक पहुँच सके। अतः अब उसको बुलाने के लिए स्वीकृति देने न देने का कोई औचित्य नहीं रहा।

शीलावती जो मंत्र विद्या में निपूण थी वह इस छोटी सी बात में कहां मानने वाली थी। उसने तपाक से उत्तर दिया कि राजन् ! अवज्ञा के लिए

क्षमा करें। यदि आप अनुमति दें तो मैं इतने स्वल्प समय में भी विश्वसुन्दरी को यहां बुलाने का प्रयास कर सकती हूँ। इतना कह कर शीलावती महाराजा चन्द्रसेन के अनुमति सूचक शब्दों को सुनने के लिए चुप हो गयी।

“यदि तुम्हारा इतना ही आग्रह है और तुम इस स्वल्प समय में भी उसे यहां बुलाने का आग्रह कर रही हो तो तुम अपना प्रयास कर सकती हो।” निश्वास छोड़ते हुए चन्द्रसेन ने उत्तर दिया।

शीलावती ने तत्काल अपनी मन्त्र शक्ति के माध्यम से महारानी विश्वसुन्दरी को चम्पा से आनन्दपुर बुला लिया।

सहसा महारानी विश्वसुन्दरी का वहां पहुंचना सब के लिए आश्चर्य था। पर ग्यारह महारानियां अन्दर ही अन्दर घबराने लगीं। उस अवस्था से उनके मुंह से बोल ही नहीं निकल रहे थे। वे मन ही मन विचार करने लगीं यहां कहीं हमारा भण्डाफोड़ नहीं हो जाय ?

बन्धुओं कुकृत्य कर लेना सरल हो सकता है। पर कुकृत्य करने के पश्चात् अपने आपको सुस्थिर रख पाना बड़ा कठिन होता है। चोर का मन कच्चा होता है। यद्यपि वह साहस करके बड़ी-बड़ी चोरियाँ भी कर लेता है फिर भी उसके मन के किसी कोने में भय छिपा रहता है। इसलिए चोर को पहचानने के लिए कहावत चरितार्थ है कि ‘चोर की दाढ़ी में तिनका’। इसी तरह अन्यान्य कुकृत्य करने वालों के विषय में भी समझना चाहिये। उन ग्यारह ही महारानियों का कुकृत्य आज उनके सामने भयावह रूप से चित्रपट की भांति उभर रहा था। फिर भी वे संभल कर चल रही थीं कि कहीं उनका कुकृत्य प्रकट न हो जाय।

विश्वसुन्दरी भी स्वयं में संकोच करती हुई एक कोने में दुबककर बैठी थी।

शीलावती ने अपने विद्यागुरु बाबा ब्रह्मानन्द का स्मरण किया जिससे बाबा ब्रह्मानन्द भी दूर से आते हुए दृष्टिगोचर हुए। सबने उठकर बाबा का स्वागत किया। बाबा के आ जाने पर भोज प्रारम्भ हुआ। चम्पा एवं आनन्दपुर की जनता आनन्द के साथ विभिन्न तरह के व्यञ्जनों का आस्वादन करती हुई उन व्यञ्जनों की सराहना कर रही थी कि ऐसे व्यञ्जन तो हमने पूर्व में कभी भी नहीं खाये। और तो क्या स्वयं महाराजा

चन्द्रसेन भी आश्चर्यचकित थे। वे विचार कर रहे थे कि ऐसा सुस्वादु भोजन शीलावती ने कैसे क्या निष्पादित किया। आज तक ऐसा भोजन पूर्व में कभी नहीं किया था। यद्यपि मैं शीलावती के हाथ का भोजन पूर्व में भी कर चुका हूँ। पर आज का भोजन तो उससे अलग ढंग का ही है। इस प्रकार विचार करते हुए राजा, राजमन्त्री आदि सभी मंत्र मुग्ध से भोजन कर रहे थे।

भोजन सम्पूर्ण हो जाने पर वह भवन सभा भवन के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

“शीलावती ! आज अब तुमको उन लड्डुओं का रहस्य अवश्य बताना होगा। तुमने उस दिन कहा था कि समय आने पर आपको इनका रहस्य भी ज्ञात हो सकता है।” चन्द्रसेन ने कहा। पूज्यवर, आपकी जिज्ञासा मैं अवश्य पूर्ण करूंगी। उसका संकेत मिलते ही दासियां उन चार मोदकों को जो सुरक्षित रखे हुए थे ले आयीं। उन मोदकों को देखते ही ग्यारह रानियों के तो होसले पस्त हो गये। वे एक दूसरी के सामने देखने लगीं। एक दूसरी के सामने देखती नहीं तो और क्या करती। व्यक्ति यह जानता है कि मिर्च खाने से मुंह जलेगा फिर भी जिह्वा-लोलुपता के कारण मिर्च खा लेता है। जब वह मिर्च खा लेता है तो उसका नतीजा भी उसी को भुगतना ही पड़ेगा। व्यक्ति चाहे कि मैं धूप में खड़ा भी रहूँ और पसीना भी न बहे तो क्या यह शक्य है। नहीं। वैसे ही कोई व्यक्ति चाहे कि मैं पाप कार्य तो करता ही रहूँ पर उसका फल मुझे न मिले, ऐसा कभी सम्भव हो सकता है ? आप कहेंगे नहीं हो सकता। बन्धुओं विचार करिये आप और हम अथवा अन्य साधारण व्यक्तियों का तो कहना ही क्या ? पर जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाते हैं उनको भी कर्मों का फल भोग तो करना ही पड़ता है। कर्म का फल भोगे बिना उनको भी मुक्ति नहीं होती।

दुरात्मा पाप करती हुई हर्षित होती है। कुछ समय तक मिली सफलता में फूली नहीं समाती, पर जब पाप का घड़ा फूटने लगता है तो उनके पैर जमीन में धंसने लगते हैं। उनकी आंखों के सामने अंधेरा छाने लगता है। उनकी बुद्धि उस समय इतनी कुण्ठित हो जाती है कि उनको अपने बचाव का कोई उपाय नहीं सूझता। यही दशा उन ग्यारह महारानियों की बन रही थी। इतने समय तक तो वे अपनी योजना बना-बनाकर मुग्ध

हो रही थीं। पर अब जब उनके पाप का पर्दा फास होने वाला था, तो उनकी दशा देखते ही बनती थी।

मोदकों के आ जाने पर शीलावती ने बाबा ब्रह्मानन्द को प्रणति पूर्वक निवेदन किया कि—‘गुरुदेव इन मोदकों पर आप ही कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।’ तब बाबा ब्रह्मानन्द ने महाराजा चन्द्रसेन को सम्बोधित कर कहा कि महाराजा ! पत्नी का धर्म होता है कि वह पति की सुरक्षा का, पति के रहन सहन का पूरा-पूरा ध्यान रखे। शीलावती ने उसी कर्तव्य पालन की भावना से कुछ चिन्तन किया। जब आनन्दपुर के महाराजा के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ तो उसके मन में विचार आया कि “मेरे विषय में इनको जानकारी कैसी मिली ?” उसे जब यह ज्ञात हुआ कि मेरे साथ विवाह करने की प्रेरणा बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन ने दी है, तो उसे इसमें कुछ दाल में काला नजर आया। तब वह विचारने लगी कि मैं बाबा ब्रह्मानन्द को अच्छी तरह से जानती हूँ। वे मेरे शिक्षा गुरु हैं। उनके कोई भी बहन न थी, और न है। फिर उनकी बहन यहां आनन्दपुर में कैसे आयी ? क्या कुछ षड्यन्त्र है ? उसका मस्तिष्क उस षड्यन्त्र की खोज करने की कल्पना में खो गया। उसने आनन्दसेन से भी निवेदन कर दिया कि आप कहीं भी पधारे तो उसकी सूचना उसे अवश्य दे दें ताकि कोई अनहोनी घटना हो तो वहां कुछ उपाय कर सकें। उसने इसके लिए कई अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्तियों को भी इधर-उधर भेजा। उनसे कुछ अस्पष्ट सूत्र मिला कि स्वयं को बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन बताकर आनन्दपुर में रहने वाली औरत चम्पानगर में रहती है। इससे वह और भी सतर्क हो गयी।

महाराज जब आपने आनन्दसेन के साथ उनको भी चम्पानगरी के लिए आमंत्रित किया तो आपके सस्नेह आमंत्रण को टालने का भी यह एक मुख्य कारण था कि वे तीनों एक साथ वहां नहीं जावें क्योंकि चम्पा में आनन्दसेन के प्रति षड्यन्त्र करने वालों का कुछ सूत्र जो मिल चुका था।

जब आनन्दसेन को साथ लेकर आप चम्पा के लिए प्रस्थान कर गये और इसकी सूचना जब उसे मिली तो उसने वहां की रिपोर्ट जानने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया। उससे मिली जानकारी से वह बड़ी व्यग्र हो गयी। क्योंकि चम्पा में बड़ा भारी षड्यन्त्र रचा गया था। उस षड्यन्त्र

से महाराज आनन्दसेन का जीवन खतरे से खाली नहीं था। अतः रूप परिवर्तनीय विद्या से रूप परिवर्तन कर वह आनन्दसेन की सुरक्षा के लिए तत्पर हुई। चम्पा में भोजन के लिए थाल परोसे गये और जैसे ही भूपाल आनन्दसेन भोजन के लिए तत्परित हुए कि शीलावती जो चील के रूप में थी उन मोदकों को लेकर उड़ गयी। यह दृश्य आप सबने प्रत्यक्ष देखा ही था। उन्हीं मोदकों को आप अभी यहाँ देखकर इतना तो जान ही गये कि चील के रूप में शीलावती ही थी।

बाबाजी यहाँ तक तो ठीक है कि यह मोदक वही होने से यह समझा जा सकता है कि चील के रूप में शीलावती ही थी। पर शीलावती ने ऐसा किया क्यों ? महाराज चन्द्रसेन ने पूछा।

महाराज मुख्य रहस्य की बात तो यही है। आप जब जानना ही चाहते हैं तो वह रहस्य भी अब रहस्य नहीं रह पायेगा। कहकर बाबा ने पानी लाने का संकेत किया। दासियाँ तत्काल पानी के भरे दो बर्तन ले आयी। बाबा के आदेश से उन लड्डुओं में से एक लड्डु को पानी में घोलने का आदेश दिया। पानी में मोदक को घोलते ही वह पानी एकदम हरा हो गया। उस पानी को महाराज चन्द्रसेन को दिखाते हुए बाबा ने कहा—महाराज ! इससे इतना तीव्र विष (जहर) मिलाया गया है कि जो व्यक्ति इन मोदकों का एक नवाला भी खाले तो उसकी जीवन लीला तत्काल समाप्त हो जाय। इसी तरह इन चारों मोदकों में भयंकर विष (Poison) मिलाया हुआ है।

मोदकों का रहस्य जानकर महाराजा चन्द्रसेन एकदम से कुपित हो गये। उस कोप मुद्रा में उन्होंने ग्यारह महारानियों की तरफ देखा। वे एकदम सहम गयीं। इतने में पुनः बाबा ने कहना प्रारम्भ किया। महाराज ! थोड़ी बात और सुनिये, उसके पश्चात् ही कुछ निर्णय लेना योग्य रहेगा।

महाराज पुनः बाबा की बात सुनने में तल्लीन हो गये। बाबा ने कहा, महाराज आपको भी यह तो ज्ञात हो ही गया कि—आनन्दसेन के माता—पिता का अभी तक कोई पता नहीं लग पाया है। इस आनन्दसेन का बाल्यकाल मेरे पास बीता। इनका लालन—पालन भी करुणा के वशीभूत होकर मैंने ही किया। पर इनको मारने का षड्यन्त्र जब राज परिवार से सम्बन्ध रखता है। इसके पीछे कोई भारी राज होने का संकेत मिलता है।

कुछ क्षण रुककर बाबा पुनः कहने लगे—राजन् ऐसे कई प्रबल प्रमाणों से यह भली भांति सिद्ध होता है कि यहां आनन्दसेन और चम्पकमाला चम्पा नरेश चन्द्रसेन की सन्तान एवं महारानी विश्वसुन्दरी के अंग जात हैं।

महाराजा चन्द्रसेन गम्भीर मुद्रा में बोले—बाबाजी ! आप गृहत्यागी हैं, आपको झूठ सांच करने की आवश्यकता भी नहीं है। यह मैं जानता हूँ। आपकी शक्ति से अपरिचित नहीं हूँ। पर आप जो कह रहे हैं काश ! ऐसा ही होता ? मेरी कहां नसीब कि ऐसी सन्तानों का मैं पिता कहलाऊँ।

महाराज, अब जैसे—जैसे परतें खुलती जायेंगी, वैसे—वैसे बात भी स्पष्ट होती जायेगी। सर्व प्रथम तो यह 'बाल' शिशु के रूप में मुझे एक जीर्ण कूप में रोते हुए मिले थे। यह जिस दिन मुझे मिले थे, वे कुछ घण्टों पूर्व ही जन्में हुए थे। उसी दिन महारानी विश्वसुन्दरी द्वारा कुतिया के पिल्ले जन्म देने की बात सुनने को मिली थी। यद्यपि मुझे उसी समय की स्थिति को देखकर मैं उस समय मौन रहा। मेरे पास रहते हुए इन्हें सोलह वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार चम्पा के वार्षिकोत्सव में मल्ल युद्ध में भाग लेने इसका मन मचल उठा। मैंने रोका भी सही पर इसकी बलवती भावना से मुझे अनुमति देनी पड़ी। उस समय भी ग्यारह महारानियों द्वारा इस पर झूठा आरोप लगाया गया। उससे मेरा विश्वास और पुष्ट हो गया।

खांसकर गला साफ कर पुनः बात को आगे बढ़ाते हुए बाबा बोले—उसके पश्चात् का सारा घटना क्रम आपके ध्यान में ही है। आप दोनों के पारस्परिक प्रीति सद्भाव—वात्सल्य आदि भी पिता—पुत्र होने में साधक प्रमाण हैं। इसके उपरान्त अभी जो इन मोदकों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इससे यह भलीभांति सिद्ध है कि महारानी विश्वसुन्दरी ने आनन्दसेन एवं चम्पकमाला को ही जन्म दिया था। पर भयंकर षड्यंत्र से इनकी हर परिस्थिति में मारने का प्रयास किया गया। यह तो उनका एवं चम्पा नगरी का अखण्ड सौभाग्य है कि ये उस षड्यन्त्र से बाल—बाल बचते रहे। अतः इन दोनों के पिता होने का गौरव आपको ही है। इसमें कतई संशय का अवकाश नहीं।

महाराज ने जो अब तक बाबा ब्रह्मानन्द को सुन रहे थे, गम्भीरता के साथ कहा—बाबा जी आपका कथन सत्य के अत्यन्त निकट है। पर इसमें आपने यह नहीं बताया कि इस षड्यन्त्र में किसका हाथ है ?

महाराज ! यह सामान्य बात है। महारानी विश्वसुन्दरी के प्रसव के समय आपने जिस नाइन को भार सौंपा सारी जानकारी उससे ज्ञात हो सकती है।

महाराज ने तत्काल सलखू नाइन को पकड़ने का आदेश दिया। सलखू नाइन भागने की कोशिश कर रही थी पर शीलावती के संकेत से उसके अनुचरों ने उसे भाग निकलने में सफल नहीं होने दिया। महाराज चन्द्रसेन का आदेश पा उनके सैनिकों ने तत्काल उसे बन्दी बनाकर महाराज के सन्मुख उपस्थित किया।

महाराज का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। महाराज ने गरजते हुए सलखू नाइन से कहा, सलखू अभी तुमने बाबा का वक्तव्य सुना होगा ? तुम यदि सत्य-सत्य बात बतला दोगी तो तुझे अभयदान दिया जा सकता है अन्यथा मृत्यु दण्ड के अलावा और कोई चारा नहीं है।

सलखू महाराज के भय से थर-थर कांप रही थी। महाराज द्वारा सत्य बात बतलाने पर अभयदान की बात सुनकर थोड़ी आश्वस्त हुई उसने बड़ी कठिनाई से शक्ति बटोर कर हकीकत से महाराज को अवगत कराया।

नाइन द्वारा हकीकत सुनकर महाराज ने तत्काल आदेश जारी किया कि ग्यारह ही महारानियों को बन्दी बनाकर उपस्थित किया जाय ?

महारानियां जो कभी पर्दे की आड़ में रहती थीं, अनेक दास-दासियाँ जिनकी सेवा में हाथ बांधे खड़े रहते थे आज उनको सहयोग देने वाला उस सभा में कोई नहीं था। महाराजा के भय से उनके शरीर थर-थर धूज रहे थे। वे स्वयं में असहाय महसूस कर रही थीं।

“सलखू नाइन ने जो बात कही क्या वह सत्य है। तुम सबको मंजूर है।” महाराजा ने गर्जते हुए कहा ?

महारानियों के पास नामंजूर करने का कोई उपाय ही नहीं था। उन्होंने सिर झुकाकर अपना दोष स्वीकार कर लिया। महाराजा ने दूध का दूध और पानी का पानी रूप न्याय करते हुए कहा।

ग्यारह महारानियों एवं सलखू नाइन इन बारहों का अपराध भयंकर एवं अक्षम्य है। किन्तु सलखू नाइन को हमने सत्य बात बताने के लिए

अभयदान दे दिया था। अतः ग्यारह महारानियों को मृत्यु दण्ड एवं सलखू नाइन को देश (निकाला) की सीमा को तत्काल छोड़ने का आदेश दिया जा रहा है।

यह आदेश देकर महाराजा अपने सिंहासन से उठे और एक तरफ बैठी विश्वसुन्दरी के पास पहुँचकर कहने लगे—प्रिय, मेरा अपराध माफ करना। मेरे अविवेक से तुम्हें जो कष्ट हुआ उसका मुझे भारी खेद है।

स्वामी, आप यह क्या कह रहे हैं। आपका इसमें कोई दोष नहीं, दोष एक मात्र मेरे कर्मों का ही है। अतः आपको क्षमा मांगने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। कहते हुए विश्वसुन्दरी महाराजा के पैर छूने नीची झुकी कि महाराजा ने उसे अपने सीने से लगाते हुए कहा—प्रिय ! पुत्र, पुत्र वधु एवं पुत्री इन तीनों को आशीर्वाद दो। तुम्हारी जैसी तपस्विनी सती सुन्दरी का आशीर्वाद उनके लिए अवश्य अखण्ड सौभाग्य कारक होगा।

स्वामी ! यह क्या कह रहे हैं। मैं तो श्री चरणों की दासी हूँ। मेरे में इतना सामर्थ्य कहां फिर भी आपकी पुण्य प्रभा से उनके सौभाग्य की शहनाई युगों—युगों तक बजती रहेगी।

दोनों उठकर सभा के बीच पहुँचे। आनन्दसेन एवं चम्पकमाला ने अपनी—जननी को आज पहली बार देखा था। उनका हृदय बांसों उछलने लगा। वे अपने जनक एवं जननी के निकट पहुँच कर उनके चरण स्पर्श करने लगे कि माता—पिता ने उनको गले लगा लिया। शीलावती भी कहां पीछे रहने वाली थी वह भी चरण स्पर्श करने पहुँची कि उसे भी विश्वसुन्दरी ने गले लगा लिया। यद्यपि महाराजा चन्द्रसेन पहले भी आनन्दसेन आदि से कई बार मिले थे पर आज के मिलने में उनको जो आनन्द आ रहा था वैसा पहले कभी नहीं आया।

विश्वसुन्दरी के आनन्द का तो पारावार ही नहीं था। अन्धे को आँखें मिलने से शायद उतनी खुशी नहीं होगी, जितनी अभी विश्वसुन्दरी को हो रही थी। उसका मातृ हृदय उनको अपने से अलग ही नहीं करना चाह रहा था। वह बार—बार उनके चेहरे को देखती, उनके माथे को सूंगती। उसको इतना हर्ष हुआ कि उसकी चर्म चक्षुएं उस हर्ष को सहन नहीं कर पा रही थी जिससे मोती बरसने शुरू हो गये।

सबके सामान्य होने पर महाराजा चन्द्रसेन ने आनन्दसेन को अपने साथ अर्ध सिंहासन पर बिठाया। पिता-पुत्र सूर्य, चन्द्र की भांति सुशोभित हो रहे थे। उपस्थित सारी जनता दोनों के जय-जयकार करने लगी।

महाराजा के आदेश से 11 महारानियों एवं सलखू नाइन को वहां ले जाया जाने लगा। इतने में विश्वसुन्दरी ने खड़े होकर महाराजा से निवेदन किया, स्वामी ! हमारे लिए आनन्दसेन एवं चम्पकमाला का जन्म आज ही हुआ है। इसलिए क्या यही अच्छा हो कि जन्मोत्सव की खुशियां आज होगी हों।

हां-हां तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। हम अभी आदेश देते हैं कि याचकों को मुंहमांगा दान दिया जाय, बन्दियों को केद से मुक्त कर दिया जाय आदि। महाराजा के मुंह से ये शब्द निकलते ही विश्वसुन्दरी बोली-पतिदेव ! आज मैं धन्य-धन्य हो गयी। अब कृपा कर मेरी ग्यारह बहनों एवं सलखू नाइन को भी बन्धन मुक्ति का आदेश फरमावें। क्योंकि आपने बन्दियों को मुक्त करने का आदेश फरमाया ही है। विश्वसुन्दरी जैसे ही चुप हुई कि आनन्दसेन कहने लगा-पिताश्री, माताजी की मांग वस्तुतः सत्य है।

महाराजा चन्द्रसेन कहने लगे-तुम लोग क्या कह रहे हो ? जो राजकुल को ही समाप्त करने को तुली हों, क्या उनका अपराध क्षमा करने योग्य है ?

पिताश्री उसमें उनका क्या अपराध, अपराध प्रत्येक व्यक्ति के स्वार्जित कर्मों का है। वे माताएं तो केवल निमित्त मात्र हैं। दूसरी बात यदि पुत्र के जन्मते ही माता मर जाती है तो उस पुत्र का जन्म इतना मंगलकारी कैसे हो सकता है ? अतः जब आपश्री मेरा जन्मोत्सव मना रहे हो तो क्या इस खुशी में मेरी उन माताओं को सम्मिलित नहीं रहना चाहिये। मेरे जन्म (प्रकट होने से) से यदि माताओं पर संकट आता है तो मेरा यह जन्म मंगलकारी नहीं मानता।

महाराजा विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन की ऐसी विशुद्ध भावना देखकर गद्गद् हो उठे। वे विचार करने लगे-कहां तो उन ग्यारह रानियों के विचार और कहां इनके विचार। आखिर विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन के विचारों को सम्मान देते हुए महाराजा ने ग्यारह महारानियों से कहा-यद्यपि तुम लोगों का अपराध भयंकर है जिसे माफ करना न्याय के अन्तर्गत नहीं

है तथापि न्याय व्यक्ति को सुधारना चाहता है। अतः तुम लोग यदि विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन आदि से अपनी गलती की क्षमा याचना कर लेती हो और वे तुम लोगों को क्षमा कर दें तो मृत्यु दण्ड को देश निष्कासन में परिवर्तित किया जा सकता है।

महाराज के न्याय पुरस्सर वचन सुनकर ग्यारहों महारानियां विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन के पास पहुँच उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगीं। पर विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन ने उनको बीच में ही सम्भाल लिया और कहने लगे आप यह क्या कर रही हैं। मैं तो आपकी लघु भगिनी हूँ। मैं तो आपका पुत्र हूँ आपके लिए यह शोभा नहीं देता।

रुदन करती हुई सी ग्यारहों महारानियां बोल पड़ी—हमें अब और लज्जित न करें। हमने उच्चकुल में जन्म अवश्य लिया है पर संस्कारों की दृष्टि से हम एक दम निकृष्ट हैं। आप हमारे अपराधों को क्षमा कर दें जिससे हमारे मन को कुछ सन्तुष्टि मिल सकेगी।

विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन कहने लगे कि आप ऐसे हीन विचार अपने मन में मत लाइये, आप महाराज चन्द्रसेन की महारानियाँ हो, आपके मन में बड़प्पन एवं गौरव रहना चाहिये। कभी—कभी ऐसा होता है कि चलता हुआ व्यक्ति भी गिर जाता है। पर वह यदि गिरकर पुनः सम्भल जाता है तो वह गिरा हुआ नहीं कहा जाता। अतः अब आपको किसी तरह का मन में खेद नहीं रखना चाहिये।

महारानी विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन द्वारा आश्वस्त करने पर उन महारानियों का मन काफी हल्का हो गया।

महारानी विश्वसुन्दरी एवं आनन्दसेन ने महाराजा चन्द्रसेन से काफी आग्रह किया कि इनके देश निष्कासन दण्डादेश को निरस्त कर दिया जाय। पर महाराजा चन्द्रसेन ने वह निवेदन अस्वीकार करते हुए कहा—नहीं यह दण्डादेश अब निरस्त नहीं हो सकता। भविष्य में ऐसी गलती कोई नहीं करे इसलिए यह दण्ड तो उन्हें भुगतना ही पड़ेगा।

महाराजा के वचनों को सुनकर आनन्दसेन आनन्दसेन ने घोषणा की कि मेरी ग्यारहों माताओं को महाराजा ने देश निकाला देने का आदेश दिया है, वह दण्डादेश भारी मन से हमें भी स्वीकार करना ही होगा ? पर मैं मेरी ग्यारहों माताओं से कर बद्ध निवेदन करूंगा कि वे चम्पा नगरी की

सीमा से अलग बसे उस आनन्दपुर के राजमहलों में सानन्द पधारें और वहीं पर बिराजें जिससे महाराज की आज्ञा का भी पालन हो जायेगा और मेरी भावना भी पूर्ण हो जायेगी।

ग्यारहों महारानियों ने कहा—आनन्दसेन तुम्हारी भावना उच्च है पर हमारे पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए हमको इधर—उधर की खाक छानना ही योग्य है।

आनन्दसेन ने इसका तीव्र विरोध करते हुए कहा—नहीं ऐसा कदापि नहीं होगा, आपको यहां रहना ही होगा ? क्या मां अपने लड़के के घर रहना नहीं चाहेगी ? क्या मैं इतने वर्षों के बाद भी अपनी इतनी माताओं के स्नेह से वंचित रहूंगा ?

दृश्य बड़ा करुणाप्रद था। सारी जनमेदनी की आंखों में मोती छलक रहे थे। चम्पा एवं आनन्दपुर की जनता आनन्दसेन के विराट व्यक्तित्व पर मुग्ध थी, और स्वयं को गौरवान्वित मान रही थी।

बाबा ब्रह्मानन्द भी उस दृश्य से द्रवित हो उठे। वे विचार करने लगे—अहो ! यह संसार क्या है ? इसका कहीं ओर छोर भी है या नहीं ? कुछ समय पहले जो एक के प्राण हरने की कलुषित भावना संजोये थी उन्हीं के हृदय में अब वात्सल्य का झरना निर्झर रहा है। इस तरह वे इस संसार की मोहमाया आदि के स्वरूप का चिन्तन कर ही रहे थे कि इतने में उद्यान रक्षक द्वारा दी सूचना उनके कर्ण में पड़ी। उद्यान रक्षक महाराजा चन्द्रसेन से निवेदन कर रहा था कि जय हो, विजय हो, महाराजा चन्द्रसेन की जय हो। स्वामी तरण तारण की जहाज, मन के उद्वेगों से शांत, इन्द्रियों का बमन करने वाले, सागर के समान गम्भीर, निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र के आराधक, तप से तेजस्वी, भव्य प्राणियों के आधार गुणों के भण्डार आर्य जिन सेन का शिष्य मण्डली सहित उद्यान में पर्दापण हुआ है।

उद्यान रक्षक द्वारा दी गयी जानकारी से महाराज चन्द्रसेन आनन्दसेन एवं अन्य सभी लोग बड़े प्रमुदित हुए। महाराज ने अपने सिंहासन से उठकर जिस दिशा में आर्य जिनसेन बिराज रहे थे उस दिशा में भाव वन्दन किया। जनता ने भी महाराज का अनुकरण किया। इसके पश्चात् महाराजा ने कहा—ऐसे वीतरागता के साधक संत महात्माओं के दर्शन बड़े

पुण्योदय से ही प्राप्त होते हैं। दर्शन तो क्या ऐसे संत महात्माओं का नाम गौत्र श्रवण भी आनन्ददायक होता है। इतना कहकर महाराजा ने उद्यान रक्षक को भरपूर पुरस्कार दिया।

फिर महाराजा ने मुनि दर्शन जाने की घोषणा की। सारी जनता भी मुनि दर्शन को लालायित थी। महाराजा चन्द्रसेन एवं आनन्दसेन चतुर्गिणी सेना सजाकर आर्य जिनसेन के दर्शनार्थ जाने लगे।

बन्धुओं, आप लोग विचार कर रहे होंगे कि महाराजा को मुनि दर्शन के लिए ही जाना था तो इस प्रकार आडम्बर की क्या आवश्यकता थी? क्या लोगों को यह देखना था कि महाराजा मुनि दर्शन को जा रहे हैं? आप सोचते हो न, सोचते हो पर आज के कई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं, कई प्रश्न भी करते हैं कि महाराज बाहर से इतने दर्शनार्थी आते हैं। वे सब आपके दर्शन के निमित्त आते हैं तो क्या उनका आवागमन से होने वाला पाप आपको नहीं लगेगा? मैं उनको उत्तर भी देता हूँ। आज मैं आप से पूछ रहा हूँ कि क्या आपको मैंने बुलाया या आप लोग अपने से आये?

सभासद—अपने मन से।

तो बन्धुओं विचार कीजिये आपके आने जाने का पाप हमको क्यों लगेगा। भगवान महावीर के दर्शनार्थ भी हजारों हजार मानव जाते थे। देव भी देवलोक से हजारों योजन पार कर भगवान की सभा में उपस्थित होते थे। उनके आवागमन से हिंसा होना सुनिश्चित था। ज्ञाता धर्म में उल्लेख भी आया है। महाराजा श्रेणिक जब भगवान के दर्शनार्थ जा रहा था तो एक घोड़े के टाप से नन्दन मणिहार का जीव जो उस समय मेंढक के रूप में था, समाप्त हो गया। इस प्रकार की हिंसा जानते हुए भी भगवान ने किसी को ऐसा नहीं कहा कि मेरे दर्शन करने क्यों आते हो अथवा नहीं आना चाहिये।

भगवान महावीर ने सूत्रकृतांग सूत्र में स्पष्ट फरमाया है कि जिस कार्य में पुण्य पाप दोनों होते हों ऐसे कार्य में साधु को मौन रहना चाहिये। क्योंकि ना करने से व्यक्तियों के पुण्य में अन्तराय आती है। हां कहने से आरम्भ समारम्भ का अनुमोदन लगता है। अतः ऐसे कार्य जिसमें पुण्य भी होता हो, और पाप भी हो, साधु को हां या ना नहीं कहना चाहिये।

बन्धुओं, यह विषय काफी लम्बा है। अधिक विस्तार में जाना उचित नहीं समझता फिर भी महाराज चन्द्रसेन अथवा अन्य राजा महाराजा संत दर्शन जाते समय जो सेना सजाकर जाते थे उसके पीछे उनका उद्देश्य जिनशासन की प्रभावना का भी रहा हुआ था।

महाराजा चन्द्रसेन एवं आनन्दसेन के साथ उपस्थित जनता भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी। उद्यान के निकट पहुँचने पर महाराजा आदि सवारी से नीचे उतरे और पांच अभिगमन को ध्यान में लेकर आर्य जिनसेन की सेवा में पहुँचे। उस विशाल परिषद् को आर्य जिनसेन ने धर्म का उपदेश दिया।

आर्य जिनसेन बतला रहे थे हे कि भव्य प्राणियों, यह संसार क्षण भंगुर है, क्षण भंगुर का तात्पर्य—संसार के भौतिक सुखों से है जिसके पीछे मानव रात-दिन पड़ा रहता है। वे सुख वस्तुतः सुख नहीं— सुखाभास मात्र है। उनसे कभी शाश्वत सुख मिल नहीं सकता। यदि किसी को सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो वीतराग मार्ग का अवलम्बन लेना श्रेयस्कर है।

आर्य जिनसेन ने यह भी फरमाया कि संसार का मूल क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि हैं। इन्हीं के कारण यह जीव पुनःपुनः जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। इसलिए व्यक्ति को प्रत्येक क्रिया के पहले सोचना चाहिये कि कौनसी क्रिया पुण्योपार्जन कराने वाली है और किस क्रिया से पाप की वृद्धि होने वाली है। क्योंकि बतलाया गया है कि जो भी शुभाशुभ क्रिया की जाती है, वह फलदायिनी होती है। जो व्यक्ति दूसरे के प्रति द्वेष भाव रखता है तो उससे कभी-कभी वैरानुबन्धी वैर कर्मों का भी उपार्जन कर लेता है। और जब तक उन पूर्वाजित कर्मों का क्षय नहीं हो जाता तब तक आत्मा शाश्वत शांति को वर नहीं सकती।



19

प्रवचन सभा में एक जिज्ञासु खड़ा हुआ और विनयपूर्वक पूछने लगा—महाज्ञानी गुरुदेव, आपने फरमाया सो परम सत्य है कि संसार में घटित होने वाले घटनाचक्रों में प्राणियों के पूर्वाजित कर्मों का फल भोग ही अधिकांशतः दृष्टिगत होता है। किन्तु मेरी जिज्ञासा है कि चन्द्रसेन—आनन्दसेन के घटना चक्र में ग्यारह रानियों तथा सलखू नाइन के कार्यों में प्रतिशोध की आग क्यों जलती रही तथा वे निरन्तर आनन्दसेन की हत्या करने का षड्यंत्र क्यों रचती रहीं ? कृपा करके इस तथ्य का स्पष्टीकरण फरमावें ताकि व्यक्तियों के प्रत्यक्ष आचरण का रहस्य समझ में आ सके।

भद्रजनों, जिज्ञासु ने जो प्रश्न किया है, वह जीवन के रहस्यों को समझने की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह सब एक प्रकार से कर्मों का ही चक्र है। सामान्य जन तो जो कुछ भी बाहरी वातावरणमें घटित होता है, उसे ही अपनी स्थूल दृष्टि से देखता है लेकिन ज्ञानी जन उन घटनाओं की आन्तरिकता में अपनी ज्ञान दृष्टि फैलाते हैं, उनके मूल कारणों को समझते हैं तथा जीवन विकास की समीक्षा करके आत्मोत्थान की प्रक्रिया उपदेशित करते हैं। चन्द्रसेन आनन्दसेन के इस घटना चक्र को इसी दृष्टि से समझाने के लिये हम आपको सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के पूर्व का भव का विवरण सुना रहे हैं।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में तिलकपुर नाम से एक शहर था जहाँ के राजा का नाम संमती था। उसके एक राजकुमार था। जिसका नाम राघव था। राघव राजपुत्र था और युवावस्था में कुसंगति में पड़ गया जिसके कारण वह अतीव दुराचारी एवं उद्वण्ड हो गया। उसके बारह पत्नियां थीं किन्तु उनके बावजूद वह पर—स्त्रियों को ताकता रहता था तथा अपनी

वासना पूर्ति के हेतु उनके पीछे भटकता रहता था।

तिलकपुर में ही एक सेठ रहते थे जिनका नाम सुदत्त था। इन सेठ की पत्नि अत्यन्त सुन्दरी तथा रूपवती थी। उसका नाम गुणसुन्दरी था। एक बार राजकुमार राघव ने गुणसुन्दरी को देख लिया और देखते ही उसके रूप पर वह मोहित हो उठा। तब मुग्ध भाव से वह गुणसुन्दरी को प्राप्त करने की कल्पना करने लगा। एक दिन मौका पाकर वह गुणसुन्दरी के पास पहुँचा और प्रणय याचना करने लगा। इस पर गुणसुन्दरी ने समझाने की दृष्टि से कहा। किन्तु उस की वाणी में शील रक्षा की दृढ़ता भरी हुई थी कि वे राजकुमार हैं, राजवंश की गरिमा को जानते हुए उन्हें ऐसा निकृष्ट व्यवहार नहीं करना चाहिये। राघव तो अपनी वासना में अन्धा हो रहा था, उसने बलात्कार करने की कुचेष्टा की। इस पर सतीत्व का तेज प्रस्फुटित हो गया और गुणसुन्दरी ने ऐसी ललकार लगाई कि राघव को वहाँ से भागते ही बना। वह भाग तो गया किन्तु उसकी वासना ने उसको अधिक क्रूर बना दिया। वह किसी भी तरह गुणसुन्दरी को अपने अधीन करने के उपाय सोचने लगा।

उधर गुणसुन्दरी ने सारी घटना अपने पति सुदत्त सेठ को बताई और यह सुझाव दिया कि उस उद्वण्ड राजकुमार का हम सामना नहीं कर सकेंगे और वह इस सम्बन्ध में फिर कोई मुसीबत खड़ी कर सकता है, इसलिये हमको यह नगर छोड़कर कहीं अन्यत्र जा बसना चाहिये। लेकिन सुदत्त सेठ को यह सुझाव अच्छा नहीं लगा क्योंकि उसने इस तरह भाग जाने को कायरतापूर्ण माना। उसने स्वयं ने नवकार मंत्र का जाप आरम्भ कर दिया तथा गुणसुन्दरी को भी वैसा ही करने की सलाह दी। दोनों एक चित्त से महामंत्र का जाप करने लगे।

ठीक उसी समय राजकुमार राघव रात के घने अंधकार में चमचमाती नंगी तलवार थामे सुदत्त सेठ की हवेली पर जा पहुँचा और द्वार खटखटाने लगा। सुदत्त सेठ और गुणसुन्दरी ने जब यह देखा कि राजकुमार राघव क्रूर बनकर अपने मलिन उद्देश्य को पूरा करने के लिये आ ही पहुँचा है तो उन्हें उस समय उससे बचाव करने का यही उपाय समझ में आया कि हवेली के सभी दरवाजों को भीतर से अच्छी तरह बंद कर लिया जाय और वे दोनों तलघर में जाकर छिप जाय। उन्होंने ऐसा ही किया। हवेली के

सभी दरवाजे तथा खिड़कियाँ बन्द हो जाने के कारण राजकुमार हवेली में प्रवेश नहीं कर पाया और हवेली के चारों ओर रात भर चक्कर लगाता रहा। सुबह होते-होते निराश होकर राजकुमार महलों को लौट गया।

सुदत्त सेठ ने प्रातःकाल विचार किया कि राघव राजकुमार को उसके कुकृत्य की उचित शिक्षा देना चाहिये। इस विचार से उसने स्त्री का सुन्दर वेश धारण किया और वह उसी अन्दाज में महल में पहुँचकर राजकुमार राघव से मिला। वहाँ औरतों सी झीणी बोली बनाकर सेठ इस तरह बोला जैसे कि घूँघट में मुँह छुपाए गुणसुन्दरी ही उससे बोल रही हो—राजकुमार, मैं जानती हूँ कि मैं भी आपसे प्रेम करती हूँ लेकिन जिस तरीके से आप आए उससे भारी लोकनिन्दा का भय जानकर मैंने आपको डांटा फटकारा। आप मुझे उसके लिये माफ करें। आज रात को उचित अवसर देखकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगी। यह कहकर प्रसन्न मन स्त्री वेशधारी सुदत्त सेठ अपने घर लौट आया तो राजकुमार राघव भी प्रसन्नता से फूल उठा कि अब तो गुणसुन्दरी उसे प्राप्त हो जायगी।

सुदत्त सेठ ने घर पहुँचकर अपना वेश बदला। अब उसने इत्र बेचने वाले की पोशाक पहन ली। फिर इत्रों से भरी पेटी लेकर वह पुनः राजकुमार के अन्तःपुर में पहुँच गया। उसने राजकुमार की सभी रानियों को ऐसे मनमोहन इत्र की शिशीयाँ भेंट कीं कि जिसकी सुगन्ध से वे मदमस्त हो गईं। फिर सेठ भी परम स्वरूपवान था सो उसके प्रति वे आसक्त भी बन गईं। रानियों ने कहा—इतना मस्त इत्र तो हमने पहली बार सूँघा है, इसकी क्या कीमत होगी ? गंधी का रूप धरे सुदत्त ने अपनी मस्ती बिखेरते हुए जवाब दिया—मूल्य की कोई बात नहीं। इससे भी बढ़िया इत्रों का मजा लूटना हो तो आप सब आज रात में उद्यान में पहुँच जावें। उस समय हम सब आनन्द रस में गोते लगा सकेंगे।

राजकुमार राघव जैसे चरित्र का था, वैसे ही चरित्र की उसकी रानियाँ भी थीं। जैसा वे देखती थीं, वैसे ही चरित्र उन्होंने अपना भी बना लिया था। गंधी पर वे आसक्त तो हो ही चुकी थीं, अब उसके प्रेम—निमन्त्रण पर तो वे निहाल हो गईं और उन्होंने रात समय उद्यान में पहुँच जाने का वादा कर लिया।

उधर रात होने पर सुदत्त सेठ ने पुनः स्त्री वेश धारण किया और महल में राजकुमार राघव के पास पहुँच गया। वह अपने साथ तेज नशे वाली मदिरा ले गया था जो सुगन्ध से भरपूर थी। सेठ ने वह मदिरा राजकुमार को अतिशय मात्रा में पिला दी जिसका राजकुमार पर ऐसा नशा छाया कि वह गहरी बेहोशी में डूब गया। तब सुदत्त ने उसे रस्सियों से बांधकर अपनी पीठ पर उठाया और अंधरे-अंधरे घर ले आया। वहाँ पहुँचकर उसने राजकुमार को अपने तलघर में बन्द कर दिया।

तब सेठ ने पुनः गंधी का वेश धारण किया और उद्यान में पहुँच गया। बारहों रानियाँ विषय भाव से गंधी का इन्तजार कर रही थी अतः उसके वहाँ पहुँचते ही वे खुशी से नाच उठीं। वे सब गंधी से प्रणय निवेदन करने लगीं तब उसने साफ-साफ कह दिया कि वह परस्त्री को माँ बहिन मानता है इसलिये अपने चरित्र का पतन वह कतई नहीं करेगा। जैसी कि उन्होंने मांग रखी थी यदि उन्हें बढ़िया इत्र की चाहना हो तो वे उसके घर पर चली चलें सो वह उन्हें उससे भी बढ़िया किस्म के भांति-भांति के इत्र भेंट करेगा। वासनाग्रस्त रानियों ने उसकी बात मंजूर कर ली यह सोचकर कि गंधी अपने मकान पर ले जाकर उनकी इच्छा पूरी कर देगा। हवेली पर सब रानियों को ले जाकर सुदत्त ने उन्हें भी राजकुमार के साथ ही तलघर में बन्दी बना ली। अट्टारह माह तक वे सेठ के तलघर में बन्दी बने रहे। राजा ने राजकुमार व उसकी रानियों की चारों ओर खूब खोज कराई किन्तु उनका जब अता-पता नहीं चला तो राजा यह समझकर चुप बैठ गया कि उनका दुष्चरित्र राजकुमार न जाने किसी प्रलोभन में किसी दूरस्थ राज्य में सपरिवार बस गया है।

अट्टारह माह बाद केवलज्ञानी भगवान् तिलकपुर में पधारे। वहाँ उन्होंने अपनी देशना में कर्म विपाक पर प्रकाश डालते हुए फरमाया कि अज्ञानवश जीव हंसते-हंसते पाप कर्मों का बंध करते हैं लेकिन उन्हें फिर रोते-रोते उनका फल भोगना पड़ता है। अतः कर्मों को बांधते समय उनके कटु फल भोग की कल्पना करके अशुभ कर्म बंधन से भव्य जीवों को बचना चाहिये। यह देशना सुनकर सुदत्त सेठ तथा गुणसुन्दरी को अपने कृत्य पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने राजकुमार राघव तथा उसकी बारहों रानियों को तत्काल बंधन से छोड़ देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि इस प्रकार से बांधे गये कर्मों को क्षय करने के लिये

वे साधु धर्म भी ग्रहण कर लेंगे। तब वे अपनी हवेली पर पहुँचे और तलघर में जाकर राजकुमार राघव से बोले—आपके राक्षसी कृत्यों से आपको सावधान बनाने के लिये हमने यह व्यवहार किया जिसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप भविष्य में ऐसे कृत्य नहीं करेंगे—यदि आप ऐसा हमें आश्वासन दें तो हम आपको बन्धन मुक्त कर देंगे। उनसे प्रतिज्ञा कराकर सेठ ने सबको छोड़ दिया।

राजकुमार राघव तथा उसकी बारह रानियाँ वहाँ से उद्यान में पहुँचे तथा महाराजा को खबर करवाई कि वे विदेशों में भ्रमण करने चले गये थे सो लौट आये हैं। संयती ने सबका स्वागत किया और बिना पूछे जाने के लिये उलाहना दिया। तब सभी राजमहल में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

सुदत्त सेठ और गुणसुन्दरी ने संयम अंगीकार करने के बाद कठोर तपाराधना की और आत्म विकास के पथ पर अग्रगामी बन गये। विहार करते—करते वर्षों बाद उनका तिलकपुर में आगमन हुआ। तब संयती की मृत्यु के बाद राघव राजा बन चुका था। दोनों के नगर में आने पर राघव राजा भलीभाँति पहिचान गया कि उनको बन्दी बनाने वाले सेठ दम्पति ये ही हैं। इससे उसके हृदय में वैर भावना जाग उठी जिसके फलस्वरूप उसने मुनिजी महाराज एवं महासतीजी को जहर डालकर तैयार किये गये लड्डु बहराये। उन्होंने समभाव से उन लड्डुओं को आहार किया और मृत्यु प्राप्त कर देवलोक में उत्पन्न हुए।

देवलोक की आयु समाप्त करके वे ही सुदत्त व गुणसुन्दरी के जीव यहाँ आनन्दसेन तथा चम्पकमाला के रूप में उत्पन्न हुए हैं। राजकुमार राघव को सलखू नाइन का जन्म मिला है तो उसकी रानियाँ महाराजा चन्द्रसेन की रानियाँ बनी हैं। पूर्वभव के वैर के कारण ही इस भव में इन सब सम्बन्धियों द्वारा यह ज्ञात घटना चक्र उपस्थित हुआ है। महाराजा चन्द्रसेन की पहली महारानी सत्संग का संयोग मिलने से समता भाव की आराधना में तत्पर रही। योगी ब्रह्मानन्द और शीलावती के जीव पूर्वभव में सुदत्त सेठ के मित्र थे अतः इस भव में भी उन्होंने आनन्दसेन की भलाई की और विपदाओं के समय सहायता पहुँचाई।

अतः भव्य जीवों, यह सब कर्मों का ही खेल है किन्तु इस खेल को तोड़ने की क्षमता भी इसी आत्मा में है। जब वह कर्मों के जोर पर नाचती

रहने की बजाय कर्मों की लगाम अपने हाथ में थाम लेती है और उनसे अपने को मुक्त बना लेती है तो वह स्वयंभू हो जाती है। कर्मों के इस खेल के रहस्य को बहुत गहराई से समझने की जरूरत है जिससे आत्मा उन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर अपनी वृत्तियों को समता के सम्बल से संचालित कर सके। मूल रूप से कर्मों पर आत्मा का नियन्त्रण समता की साधना से सम्भव होता है अन्यथा विषमता की दुर्भावनाओं में जकड़कर आत्मा बेभान बनी कर्मों के हाथों में नाचती रहती है। इसलिये विषमता को त्याग कर भव्य जीवों को समता की साधना की ओर अग्रसर बनना चाहिये।

बाबा ब्रह्मानन्द ने जो संसार के घटना चक्र को सुनकर द्रवित हुए जा रहे थे, खड़े होकर कहा—पूज्य, गुरुदेव वैसे मैं देशतः संसार से हटकर साधना मार्ग में लगा हूँ। किन्तु उसमें भी कुछ मात्रा में तेरा मेरा रह ही जाता है। इसलिए अब से आपश्री के चरणों में सर्व विरति चारित्र अंगीकार करना चाहता हूँ।

आर्य जिनसेन ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—वैसे आप बाबा ब्रह्मानन्द को अन्य लिंग में देखकर अन्य कुछ कल्पना कर रहे होंगे पर इन्होंने अन्य लिंग में रहते हुए अणुव्रत आदि श्रावक धर्म स्वीकार कर रखा है। जैसा कि प्रभु महावीर के समय अम्बड़ संन्यासी ने देशचारित्र स्वीकार कर रखा था। इन्होंने देशव्रत की आराधना करते हुए अपने जीवन को साधना मार्ग पर आरूढ़ कर रखा है। इनकी साधना से चम्पानगरी एवं आस-पास के राज्य अच्छे खासे प्रभावित हैं। अब सर्वविरति चारित्र को स्वीकार करने को तत्परित हैं।

महाराजा एवं उपस्थित जन समुदाय से अनुमति प्राप्त हो जाने पर आर्य जिनसेन ने बाबा ब्रह्मानन्द को अणुगार धर्म में प्रव्रजित किया।

महाराजा चन्द्रसेन ने जिनके हृदय से वैराग्य की लहरें हिलोरे ले रही थीं आर्य जिनसेन से निवेदन किया—भंत्ते ! मैं भी इस संसार से उबरना चाहता हूँ। ये बाबा ब्रह्मानन्द जी तो स्वतन्त्र थे इसलिए इन्होंने तत्काल प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। पर मुझे तो अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन भी करना पड़ेगा। अतः मेरा सानुरोध निवेदन है कि मैं राज्य की समुचित

व्यवस्था कर शीघ्र ही आपके श्री चरणों में उपस्थित होने की मेरी भावना है। इसलिए आप चम्पानगरी को भी पावन करने की महत्ती कृपा करें।

महाराजा चन्द्रसेन अपनी पहली महारानी, आनन्दसेन, विश्वसुन्दरी, चम्पकमाला, शीलावती आदि सभी के साथ चम्पानगरी के लिए प्रस्थान करते हैं। स्वयं के पहुँचने के पूर्व जनता को पहुँचने के आदेश देते हैं। साथ ही चम्पा को नई हवेली की तरह सजाने की आज्ञा भी प्रसारित करते हैं। तदनुसार चम्पा को सजाया संवारा गया।

महाराजा के पहुँचने पर भव्य समारोह के साथ चम्पा में प्रवेश करवाया।

महाराजा ने राजसभा में प्रवेश कर सिंहासन पर आरूढ़ होते ही आनन्दसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की। साथ ही शीघ्र राज्याभिषेक कर स्वयं के दीक्षित होने की भावना भी व्यक्त की।

चम्पानगरी में आज सौभाग्य की शहनाईयाँ बज रही हैं। चारों तरफ मनुष्यों में खुशहाली नजर आ रही थी। मानों घर-घर में मंगल कार्य हो रहा हो। वस्तुतः प्रत्येक के लिए मंगल कार्य होने जा रहे थे। वह यह है कि—आज महाराजा चन्द्रसेन का स्थान युवराज आनन्दसेन ग्रहण कर रहे थे। यानी आज युवराज का राज्याभिषेक होने जा रहा था। अतः घर-घर मंगल वाद्य एवं गीत लहरियाँ गूँज रही थीं। बड़े उल्लासमय वातावरण के अन्दर शुभ मुहूर्त में आनन्दसेन को चम्पानगरी का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। महाराजा चन्द्रसेन की वैराग्य भावना अब द्रुतगति से हिलौरें ले रही थी। वे संत महात्माओं का इन्तजार कर रहे थे।

एकदा वे धर्म जागरण करते हुए पिछली रात्रि के समय चिन्तन करने लगे व वह नगर, पुर पाटन धन्य है जहां सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहंत अथवा भावितात्मा अणगार भगवन्तों का विचरण हो रहा हो। वे राजा, मन्त्री, सेठ, साहूकार, तलवर मांडविक धन्य हैं जो वीतराग वाणी को श्रवण करते हों, तथा वे तो धन्य-धन्य हैं ही जो उस वीतराग वाणी को अपने जीवन में साकार रूप देते हों। यदि अर्हंत महाप्रभु या उनके आज्ञानुवर्ती अणगार भगवन्तों का यहां पर्दापण हो जाय तो मैं भी संसार से उपरत हो, उनकी चरण शरण कर वीतराग मार्ग का अनुशरण करूँ।

सूर्योदय के पश्चात् वे दैनिक कार्य से निवृत्त हुए ही थे कि उद्यान रक्षक द्वारा आर्य जिनसेन का सपरिवार चम्पानगरी के उद्यान में पर्दापण के समाचार मिले। महाराजा को अत्यन्त आल्हाद हुआ।

महाराजा सपरिवार आर्य जिनसेन के दर्शनार्थ पहुँचें। नव अभिषिक्त महाराजा आनन्दसेन भी आर्य जिनसेन के चरणों में सभक्ति पहुँच पर्युपासना करने लगे।

आर्य जिनसेन ने मानव जीवन को क्षण भंगुर बतलाते हुए कहा—हे भव्य प्राणियों, यह मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभता से मिलता है। अनन्त—अनन्त पुण्य कर्मों के संयोग से प्राप्त यह मानव का चोला भी कुछ अवधि के लिए ही है। जैसे ओस का बिन्दु कुशाग्र पर कुछ समय का ही मेहमान होता है, वैसे ही यह मानव जीवन सावधि तक ही टिकने वाला है। समय रहते जो सावधान हो जाता है, विषय भोगों से उपरत हो जाता है उसी का जीवन धन्य—धन्य होता है। अन्यथा यह आत्मा इस संसार समुद्र में पुनः निमज्जित हो जाती है। अतः भव्य प्राणियों को पानी के पहले पाल बांधने की उक्ति को चरितार्थ कर बुद्धिमानी का परिचय देना चाहिये आदि।

आर्य जिनसेन का उद्बोधन क्या था मानों महाराजा चन्द्रसेन की भावना का ही प्रवाह चल रहा हों। प्रवचन की परिसमाप्ति के साथ ही महाराजा उठ खड़े हुए, और कहने लगे—भगवान् ! 'मैं' इस संसार सागर की विषयरूपी आग से झुलसता रहा हूँ। मैं इस आग से बचने के लिए वीतराग वाणी रूपी सलील का आश्रय चाहता हूँ। इसलिए मुझे अपनी शरण में लेकर कृतार्थ करें।

महाराजा के साथ तेरहों महारानियों एवं राजकुमारी चम्पकमाला एवं अन्य कई मन्त्री, सेठ, सभासद आदि जैन भागवती प्रव्रज्या ग्रहण करने को तत्परित हुए।

महाराजा आनन्दसेन ने सबका भव्य निष्क्रमण महोत्सव मनाया। हजारों हजार मानवों से परिवृत हो, महाराजा चन्द्रसेन आदि मुमुक्षु आत्माएं आर्य जिनसेन ने यथाविधि सबको सर्व विरति चारित्र स्वीकार करवाया। नवदीक्षित श्रमणियों को महाश्रमणी सोमवती ने अणगार धर्म की शिक्षा दी।

चारित्र स्वीकार कर गुरुचरणों में रहकर उसका यथा विधि पालन

222 / नानेशवाणी-44

कर महाराजा चन्द्रसेन आदि ने जीवन का श्रेष्ठ विकास सम्पादित किया। महाराजा आनन्दसेन ने श्रावक व्रतों को स्वीकार करते हुए पूछा-भंते ! मैं श्रमण जीवन स्वीकार कर पाऊंगा या नहीं ?

हे अखण्ड सोभागी ! तुम इस जीवन में चारित्र धर्म स्वीकार करोगे पर अभी तुम्हारे कुछ भोगावली कर्मों का उदय भाव चल रहा है अतः वे जब क्षय हो जायेंगे तो शीलावती की कुक्षी से जन्म लेने वाले कुमार रत्नों का यथा योग्य लालन-पालन कर उनका राज्याभिषेक कर तुम दोनों वीतरागता की ओर कदम बढ़ाओगे और यथा समय अपने जीवन में चरम लक्ष्य प्राप्त करोगे।

